[विवाहित स्त्री-पुरुषोंके लिये अपूर्व पुस्तक]
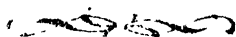
लेखक—

श्रीयुत पं० देवनारायण द्विवेदी

—०—

[संशोधित और परिवर्धित द्वितीय संस्करण]

[जनवरी १९३५ ई०] [मूल्य सजिल्द १॥)

भूमिका

संसारमें सन्तानोत्पत्तिकी विधि, सन्तान-पालनकी रीति, गर्भाशय तथा गर्भाधान आदिका ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है, प्राचीन कालमें आर्य-वंशज इस विद्याके पण्डित थे; किन्तु इधर समयके फेरसे इतने प्रयोजनीय विषयकी अभिज्ञतासे लोग वंचित हो गये हैं। हर्ष है कि अब इस विषयपर हिन्दीमें पुस्तकें निकलने लगी हैं, और जनता इस ओर ध्यान देने लगी है।

यद्यपि इस विषयपर पुस्तकें तो दर्जनों निकल चुकी हैं, पर दुःखके साथ लिखना पड़ता है कि 'मानव-सन्तति-शास्त्र' आदि दो-तीन पुस्तकोंके अतिरिक्त सब पुस्तकें बहुत अश्लील हैं और वे सभी नकल की हुई हैं—कोई भी विशेषता नहीं रखतीं। यही सोचकर हमने भी इस महत्त्वपूर्ण विषयपर लेखनी उठायी कि अपना अनुभव और अध्ययन तथा मित्रोंका अनुभव हिन्दी संसार के समक्ष अश्लीलतारहित भाषामें रक्खें, अवश्य ही इसमें नवीनता होगी। ईश्वरकी कृपासे आज वह अभिलाषा पूर्ण हुई। प्रस्तुत पुस्तकमें एतद्विषयक कोई भी बात छूटने नहीं पायी है। आशा है कि यह पुस्तक पाठक-पाठिकाओंको यथेष्ट लाभ पहुँचावेगी।

साहित्याश्रम
पो० कछवा (मिर्जापुर)
विजयादशमी १९८७

देवनारायण द्विवेदी

द्वितीय संस्करण

प्रस्तुत पुस्तकका द्वितीय संस्करण प्रकाशक महोदयने सुन्दरताके साथ निकाला है। इसमें बहुतसी बातें स्थल-स्थलपर बढ़ा भी दी गयी हैं। प्रारम्भमें मनस्तत्त्ववेत्ताओंके लिए पर्याप्त सामग्री भी अबकी बार दे दी गयी है। आशा है हिन्दी संसार इसे और भी प्रेमके साथ अपनावेगा।

—लेखक

विषय सूची

—०—

प्रथम समुल्लास

द्वितीय समुल्लास

तृतीय समुल्लास

चतुर्थ समुल्लास

पञ्चम समुल्लास

षष्ठम समुल्लास

सप्तम समुल्लास

प्रथम समुल्लास

उपक्रम

इस प्रश्नका हल करना बड़ा ही कठिन काम है कि यह संसार सुख-प्रधान है अथवा दुःख-प्रधान। एक पक्षका कहना है कि, जीवनमें सुख अधिक है और इस बातका प्रमाण है,—जीवनका अस्तित्व। जीवनमें सुखकी मात्रा अधिक न होनेसे मनुष्य जीवित रहना कदापि पसन्द नहीं कर सकता। किन्तु आजकल जो लोग धर्म-शास्त्रको नवीन भित्तिपर स्थापित करनेकी चेष्टा कर रहे हैं, वे दुःखके अस्तित्वको भी लोप नहीं कर सकते। जो भी हो, मनुष्य-जीवनकी और मनुष्य-समाजकी उन्नति क्रमशः हो रही है, यदि इतिहास इसका समर्थन करे तो यह कहना पड़ेगा कि सुखकी मात्रा और उत्कर्षकी क्रमशः वृद्धि हो रही है। चाहे यह पूर्ण कभी भी न हो, पर इसकी गति पूर्णताकी

ओर ही है। इससे स्पष्ट है कि दुःखसे सुखकी मात्रा अधिक है; नहीं तो संसारमें जीवन-वर्द्धनकी चेष्टा न की जाकर जीवन-लोपकी चेष्टा ही की जाती; धर्म-नीति कुचल उठती। बस, सुखवादका केवल यही एक ऐसा पुष्ट और सार्थक प्रमाण है जिससे यह प्रमाणित किया जाता है कि संसारमें दुःखकी अपेक्षा सुख अधिक अवश्य है, पर उस अधिकताकी मात्रा कितनी है, इसके लिये न तो कोई विश्वसनीय परिमापक यंत्र है और न यह तर्कद्वारा किसी प्रकार स्थिर ही किया जा सकता है।

किन्तु डार्विन प्रदर्शित चित्रोंको देखनेसे जीवनके सुखमयत्वपर विश्वास करना बड़े ही दुःसाहसका काम है। क्योंकि जहाँ हिंसा और रक्तपात ही उन्नतिका प्रधान उपाय है, वहाँ सुख कहाँ ? रक्तपात करनेसे घातकके मनमें थोड़ी-बहुत क्षणिक शान्ति उत्पन्न हो सकती है; किन्तु उसमें स्थायित्व कहाँ ? कारण यह कि जठरज्वालारूपी महादुःखके निवारणके लिए ही जीव-हत्याका व्यवसाय है, एवं आहार करनेके बाद ही कुछ देरमें फिर जठराग्नि प्रज्वलित हो जाती है।

इस विषयमें पूर्वी और पश्चिमी विद्वानोंमें बड़ा मतभेद है कि यह संसार केवल दुःखमय है या सुख-प्रधान अथवा दुःख-प्रधान है। किन्तु यह बात इन लोगोंको भी मान्य है कि दुःखका निवारण करके अत्यन्त सुखकी प्राप्ति करनेमें ही मनुष्यका कल्याण है। नैय्यायिकोंका कहना है कि जो वेदना हमारे अनुकूल है वह सुख

है और जो वेदना हमारे प्रतिकूल है वह दुःख है। वेदान्त ग्रन्थोंमें साधारणतः सुख-दुःखके तीन भेद किये गये हैं; (१) देवताओं-की कृपा या कोपसे जो सुख-दुःख मिलते हैं उन्हें 'आधिदैविक' कहते हैं; (२) पञ्चभूतात्मक पदार्थोंका मनुष्यकी इन्द्रियोंसे संयोग होनेपर तृष्णा आदिके कारण जो सुख-दुःख होते हैं उन्हें 'आधिभौतिक' कहते हैं; (३) वाह्य संयोगके बिना होनेवाले और सब सुख-दुःखोंको 'आध्यात्मिक' कहते हैं। तिलक महाराज-सुख-दुःखके दो ही वर्ग किये हैं—वाह्य या शारीरिक अथवा आन्तरिक या मानसिक। यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि तिलक महाराजने के मतानुसार सुख-दुःखका जो विवेचन नीचे किया गया है, वह वेदान्त-ग्रन्थोंके वर्गीकरणसे भिन्न है। हाँ इतना अवश्य है कि चाहे सुख-दुःखके दो वर्ग किये जायँ अथवा तीन; इसमें सन्देह नहीं कि दुःखकी इच्छा कोई भी मनुष्य नहीं रखता। इसीसे वेदान्त और सांख्य शास्त्रमें कहा गया है कि, सब तरहके दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति करना तथा आत्यन्तिक एवं नित्य सुखकी प्राप्ति करना ही परम पुरुषार्थ है। अतएव अब यह देखना चाहिये कि आत्यन्तिक तथा नित्य सुख कहते किसे हैं।

कुछ लोगोंका कहना है कि, सुख-दुःख स्वतंत्र वस्तु नहीं; जिस प्रकार अन्धकारके बाद प्रकाश और प्रकाशके बाद अन्धकार-का होना अनिवार्य है, उसी तरह दुःखके पीछे सुख और सुखके पीछे दुःख लगा हुआ है। भर्तृहरि ने कहा है:—

तृषा शुष्यत्यास्ये पिवति सलिलं शीत मधुरं।
क्षुधार्तः शाल्यन्नं कवलयति शाकादि वलितान् ॥
प्रदीप्ते कामाग्नौ सुदृढतर माश्लिष्यति वधूं।
प्रतीकारं व्याधेः सुखमिति विपर्यस्यति जनः ॥

तात्पर्य यह कि, "जब प्याससे मुख सूखने लगता है तब मनुष्य शीतल और मीठा जल पीता है, जब भूखसे व्याकुल हो जाता है तब शाक आदि मिष्टान्न पदार्थोंको खाकर उस व्यथाको दूर करता है, जब कामदेवकी अग्नि प्रदीप्त हो जाती है तब वह उसको स्त्री-प्रसंग द्वारा तृप्त करता है। किसी व्याधि या दुःखके होनेपर उसका जो निवारण किया जाता है उसीको लोग भ्रमसे 'सुख' कहा करते हैं। दुःख-निवारणके अतिरिक्त सुख कोई भिन्न वस्तु नहीं है। संन्यास मार्गवालोंका कहना है कि जब मनुष्यके मनमें कोई वासना या तृष्णा उत्पन्न होती है तथा उससे दुःख होने लगता है, तब उस दुःखका जो निवारण किया जाता है वही सांसारिक सुख कहलाता है; सुख कोई और वस्तु नहीं है। सारी सांसारिक प्रवृत्तियाँ वासनात्मक और तृष्णात्मक हैं, इसीलिए जब-तक सांसारिक प्रवृत्तियों का त्याग नहीं किया जायगा तबतक वासना या तृष्णाका अस्तित्त्व नहीं मिट सकता और इसका अस्तित्त्व मिटे बिना नित्य सुखका मिलना असम्भव है। इस पंथ-का अन्तिम सिद्धान्त यही है कि, आत्यन्तिक सुख या मोक्षकी इच्छा रखनेवालेको जितने शीघ्र हो सके उतने शीघ्र संसारको छोड़कर संन्यास ले लेना चाहिये।

सन्तान-विज्ञान

संन्यास मार्गकी उपर्युक्त बातें गीताको भी मान्य हैं, अन्तर केवल कर्म छोड़ने और न छोड़नेका है। संन्यास मार्ग तो तृष्णाको समूल नष्ट करनेके लिए शीघ्रातिशीघ्र संसारको छोड़कर संन्यास लेनेको कहते हैं, किन्तु गीताका सिद्धान्त है कि उन्हें दूर करनेके लिए कर्मका त्याग कर बैठना उचित नहीं। अतएव अब इसपर सूक्ष्म रीतिसे बिचार करना चाहिये। सब सुख तृष्णा-दुःखके दूर होने पर ही उत्पन्न होता है, संन्यास मार्गियोंका यह कहना सर्वथा सच नहीं माना जा सकता। वास्तवमें तृष्णा है क्या वस्तु ? एक बारकी देखी हुई, सुनी हुई अथवा अनुभवकी हुई वस्तुकी चाहको वासना या इच्छा कहते हैं। जब इच्छित वस्तु शीघ्र नहीं मिलती तब दुःख होता है और जब वह इच्छा तीव्र होने लगती है अथवा जब इच्छित वस्तुके मिलनेपर भी पूरा सुख नहीं मिलता, तब उसीको तृष्णा कहते हैं। अतः इच्छाके तृष्णा रूपमें परिणत होनेके पहले ही यदि इच्छित वस्तु प्राप्त हो जाय तो उस सुखको तृष्णा-दुःखके दूर होनेसे उत्पन्न हुआ नहीं समझा जा सकता। थोड़ी देरके लिए यदि यह भी मान लिया जाय कि इच्छा और तृष्णाके अर्थमें कोई भेद नहीं हैं, तो भी यह सिद्धान्त नहीं माना जा सकता कि सब सुख तृष्णामूलक ही हैं। मान लीजिये कि हमें अचानक कोई ऐसा अपूर्व और मुग्धकर दृश्य दिखायी पड़ा कि, जिसका हमने स्वप्नमें भी कभी अनुमान नहीं किया था। तब क्या ऐसी दशामें कहा

जा सकता है कि उस अद्भुत दृश्यसे होनेवाले सुखकी हम पहले ही इच्छा किये बैठे थे ? कदापि नहीं । सच तो यह है कि उस समय सुखकी इच्छा किये बिना ही हमें सुख मिला। अब इस उदाहरण से पाठकगण समझ सकते हैं कि संन्यास मार्गवाली सुखकी व्याख्या कहाँतक ठीक है। वास्तवमें बात यह है कि इन्द्रियोंमें वस्तुओंके उपभोग करनेकी शक्ति स्वाभाविक ही मौजूद रहती है और जब कभी उन्हें अनुकूल या प्रतिकूल विषयकी प्राप्ति हो जाती है तब पहले इच्छा या तृष्णाके न रहनेपर भी हमें सुख-दुःखका अनुभव हुआ करता है । इसीसे गीतामें कहा भी है कि,—

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्ण सुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥

इस श्लोकका अभिप्राय यही है कि जब सृष्टिके वाह्य पदार्थों-का इन्द्रियोंसे स्पर्श होता है तब सुख या दुःखकी वेदना उत्पन्न होती है। इससे ज्ञात होता है कि वाह्य सुखका स्वरूप केवल इन्द्रियोंके अधीन है और इसीसे कभी-कभी इन इन्द्रियोंके व्यापारों-को जारी रखनेमें ही सुख मालूम होता है, चाहे पीछे उसका परि-णाम कुछ भी क्यों न हो। सुख-दुःख के सम्बन्धमें गीताका यही मत है कि ये दोनों स्वतंत्र और भिन्न वृत्तियाँ हैं। यद्यपि सुखके साधन चाहे जितने प्राप्त हों, फिर भी इन्द्रियोंकी इच्छा बराबर बढ़ती ही जाती है, सुखोपभोगसे सुखकी इच्छा कभी तृप्त नहीं होती और असन्तोषसे दुःख होता है तथापि इससे यह नहीं कहा

जा सकता कि इसलिये कर्मों को ही त्याग देना चाहिये। हमें तो ऐसी अवस्थामें अपनेपर आधिपत्य जमाना चाहिये। गीतामें भगवान श्रीकृष्णने कहा भी हैः—

मुक्त संगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्त्ता सात्विक उच्यते॥

अर्थात्—"संग-रहित, अनहंवादी (अहं भावसे रहित) धृति और उत्साहसे युक्त, कार्यकी सिद्धि और असिद्धि रूप विकारसे रहित कर्मी सात्त्विक कहे जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि कर्मोंका त्याग उक्त कारणसे करना ठीक नहीं है।

ऊपरकी बातोंको सुनकर संन्यासमार्गवाले कह सकते हैं कि, यद्यपि तुम यह नहीं मानते कि "सुख कोई सच्चा पदार्थ नहीं है, फलतः सब तृष्णात्मक कर्मोंको छोड़े बिना शान्ति नहीं मिल सकती;" तथापि तुम्हारे ही कथनसे यह बात सिद्ध है कि तृष्णासे असन्तोष और असन्तोषसे दुःख पैदा होता है, अतः ऐसी दशामें यह कहनेमें क्या आपत्ति है कि, इस असन्तोषको दूर करनेके लिये मनुष्यको अपनी सारी तृष्णाओंका और उनके साथ ही सांसारिक कर्मोंका भी त्याग करके सदा सन्तुष्ट रहना चाहिये—फिर तुम्हें इस बातका विचार नहीं करना चाहिये कि उन कर्मोंको तुम परोपकारके लिये करना चाहते हो या स्वार्थके लिये।" इसके उत्तरमें हमारा इतना ही कहना है कि, जीभसे कभी-कभी कटु-वाक्य भी कहने पड़ते हैं, तो क्या इससे जीभको ही जड़से काटकर

फेंक देना चाहिये ? आगसे कभी-कभी मकानतक जल जाते हैं, तो क्या लोगोंने अग्निका बहिष्कार कर दिया ? कहनेका तात्पर्य यह कि तृष्णा और असन्तोषको मर्यादाके भीतर रखना चाहिये, उनका सर्वथा त्याग कर देना व्यावहारिक जीवनके लिए उपयुक्त नहीं। देखिये, बिदुलाने अपने पुत्रको उपदेश करते समय महाभारत-के उद्योगपर्वमें कैसी अच्छी बात कही है कि, "सन्तोषवै श्रियं हन्ति" अर्थात् सन्तोषसे ऐश्वर्यका नाश होता है। बिदुलाके इस वाक्यके समान ही शास्त्रोंमें बहुतसे वाक्य पाये जाते हैं जिनका सारांश यही है कि न तो असन्तोषसे सदा हाय-हाय करके दुखी ही रहना चाहिये क्योंकि ऐसे असन्तोषसे मनुष्यके मनकी सात्त्विक वृत्तियोंका नाश हो जाता है और न असन्तोषके इस दुष्परिणामसे बचनेके लिए सब प्रकारकी तृष्णाओंके साथ सब कर्मोंको एक-दम छोड़ देना ही सात्त्विक मार्ग है। चोरके भयसे साहूकारको मार डालना बुद्धिमानीका काम नहीं है। उचित बात यह है कि जिस तृष्णा या असन्तोषसे हमें दुःख होनेवाला हो उसे छोड़ देना चाहिये—न कि कर्मोंका ही त्याग कर बैठना चाहिये। अब यह देखना है कि गीतामें किस प्रकारकी आशाको दुःखकारी कहा गया है।

महाभारतके शान्तिपर्वमें कहा है कि—चक्षुः पश्यति रूपाणि मनसा नतु चक्षुषा" अर्थात् देखनेका काम केवल आँखोंसे ही नहीं होता बल्कि उसमें मनकी सहायता अवश्य होती है और

मनके व्याकुल रहनेपर आँखोंके देखनेपर भी अनदेखा-सा हो जाता है। जब हम किसी गहरी चिन्तामें डूबे रहते हैं तब उस समय कानके खुले रहनेपर भी हमें न तो किसीकी सुखदायी या दुःखदायी बात ही सुनायी पड़ती है और आँखोंके किसी दुःखदायी दृश्यको देखते रहने पर भी न हमें कुछ दिखायीही पड़ता है: अतः हमें उस दशामें सुख-दुःख कुछ नहीं होता। वृहदारण्यकोपनिषद्में (१५.३) यह वर्णन है कि, (अन्यत्रमना अभूवं न्तादर्शनम् अन्यत्रमना अभूवं नाश्रौषम्) "मेरा मन दूसरी ओर लगा था इसलिए मुझे नहीं देख पड़ा, मेरा मन दूसरी ओर था अतः मैं सुन न सका।" सारांश यह कि सब प्रकारके सुख-दुःखोंका अनुभव हमारे मनपर ही अवलम्बित है। अतएव मनोनिग्रहसे सुख-दुःखोंके अनुभवका निग्रह या दमन करना कुछ भी असम्भव नहीं है। इस प्रकार जब सुख-दुःखके अनुभवके लिए इन्द्रियोंका अवलम्ब आवश्यक हो गया, तब तो यही कहना पड़ेगा कि,—"भैषज्यमेतद् दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत्" (महा० शान्तिपर्व) अर्थात् "मनमें दुःखोंका चिन्तन न करना ही दुःख निवारणकी रामबाण औषधि है।" इसीसे गीताका कथन है कि जो काम करना उसे मनोनिग्रहके साथ, उसकी फलाशाको छोड़कर तथा सुख-दुःखमें समभाव रखकर करना चाहिये। ऐसा करनेसे न तो कर्माचरणके त्याग करनेकी ही आवश्यकता है और न उसके दुःखकी बाधा ही सामने आ सकती है। फलाशा-त्यागका यह अर्थ नहीं कि हमें जो कुछ फल मिले उसे छोड़ दें या यह इच्छा रखें

कि वह फल और किसीको न प्राप्त हो। यहाँ कुछ लोग यह कह सकते हैं कि बिना किसी उद्देश्यके तो कोई काम किया ही नहीं जाता; मनुष्य अच्छा या बुरा जो कुछ भी काम करता है वह किसी-न-किसी उद्देश्यसे ही करता है, फिर यह कैसे सम्भव है कि फलाशाका त्याग करके कर्म किया जाय? बात यह है कि फलाशामें और कर्म करनेकी केवल इच्छा, आशा या फलके लिए किसी बातकी योजना करनेमें बड़ा ही अन्तर है। देखिये न, केवल हाथ-पैर हिलानेकी इच्छा होनेमें और किसी मनुष्यको पकड़नेके लिये या किसीको लात मारनेके लिये हाथ-पैर हिलानेकी इच्छामें कितना भेद है। पहली इच्छा केवल कर्म करनेकी ही है, उसमें कोई भी दूसरा हेतु नहीं है। अब यदि हमारे इस कर्मसे किसीको अनायास हमारे पैरसे या हाथसे कुछ चोट लग जाय, तो उसके अपराधी हम नहीं हो सकते, क्योंकि हमने उसे चोट लगनेकी इच्छासे वह कर्म नहीं किया। किन्तु इतनेहीसे काम नहीं चल सकता; इस इच्छाके अतिरिक्त मनुष्यको इस बातका ज्ञान होना चाहिये कि प्रत्येक कामका कुछ-न-कुछ फल अवश्य होता है और ऐसे ज्ञानके साथ ही उसे इस बातकी इच्छा होनी चाहिये कि मैं अमुक फलकी प्राप्तिके लिए अमुक प्रकारकी योजना करके ही अमुक कर्म करना चाहता हूँ; नहीं तो उसके सभी काम पागलके-से निरर्थक हुआ करेंगे। अब जरा आधिभौतिक सुखवाद-की ओर भी दृष्टि डालनी चाहिये।

यह सुख आत्मवश है, किसी भी वाह्य वस्तुपर अवलम्बित नहीं। भर्तृहरिने क्या ही अच्छा कहा है कि,—"मनके प्रसन्न होनेपर क्या गरीबी और क्या अमीरी दोनों समान हैं।" गीतामें कहा भी है कि आत्मनिष्ठ बुद्धिकी प्रसन्नतासे जो सुख प्राप्त होता है वही श्रेष्ठ और सात्विक सुख है। इस परम सुखका अनुभव मनुष्यको यदि एक बार भी हो जाता है तो फिर उसकी यह सुखमय स्थिति कभी नहीं डिगती—चाहे कठिनसे कठिन दुखोंके धक्के क्यों न लगते रहें। विषय-सुख तो क्षणिक और अनित्य है। कारण यह है कि जो इन्द्रिय-सुख आज है वह कल नहीं रहता। इसके अलावा जो वस्तु आज हमारी इन्द्रियोंको सुखदायी प्रतीत होती है, वही वस्तु किसी कारणसे दूसरे दिन दुःखदायी हो जाती है। उदाहरणार्थ जाड़ेके दिनोंमें धूप हमें बहुत प्रिय लगती है; किन्तु गर्मीके दिनोंमें वही धूप अप्रिय हो जाती है।

कहनेका तात्पर्य यह है कि, सुख और दुःख तो अपने मनकी तरंगपर निर्भर है, और पशुकी अपेक्षा मनुष्यमें विशेषता भी है। मि० मिलने भी यही स्वीकार किया है कि, ("It is better to be a hind being dissatisfied then a pig satisfied; better to be Sacrates dissatisfied then a fool satisfied. And if the fool or the pig, is of a defferent opinion, it is because they only know their out side of the question."–Utilitarianism) उक्त सिद्धान्त-

हीमें श्रेष्ठ मनुष्य-जन्मकी सच्ची सार्थकता और महत्ता है। अतः कर्मयोगीको चाहिये कि वह कर्मोंके सुख-दुःख रूप परिणामोंको समान भावसे सहन करनेके लिये सदा तैयार रहे और ऊपर आनेपर सहे। क्योंकि सुखमें हर्षित होना और दुःखमें दुःखी होना तो मूर्खोंका काम है। गोस्वामी तुलसीदासने इस विषयमें क्या ही स्पष्ट कहा है कि—"सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मनमाहीं।" ऐसा करनेसे अमर्यादित तृष्णा आदि और असन्तोष-जनित दुष्परिणामोंसे तो हम बचेंगे ही, उसके साथ यह भी लाभ होगा कि तृष्णा या असन्तोषके साथ साथ कर्मको भी त्याग देनेसे जीवनके ही नष्ट हो जानेकी जो समस्या आ सकती है वह भी नहीं आ सकेगी और हमारी मनोवृत्तियाँ शुद्ध होकर प्राणिमात्रके लिए हित-प्रद हो जावेंगी। अतः संन्यासमार्गियोंका यह कहना कि, तृष्णा और असन्तोषसे दुःखकी उत्पत्ति होती है और जबतक कर्म-व्यापार बना रहेगा, तबतक तृष्णा आदि विकारोंका नाश नहीं हो सकता, इसलिये कर्मोंका ही त्याग कर देना चाहिये, बिलकुल ठीक नहीं। क्योंकि बाह्य कर्मोंमें तो बन्धकत्व या मुक्तित्व है ही नहीं। रही अन्तरंग शुद्धिकी बात सो कर्मोंके करते रहनेपर भी की जा सकती है। और यदि बाह्य कर्मोंसे ही कोई शत्रुता हो तो बात दूसरी है; किन्तु संन्यास ग्रहण करनेपर भी तो कर्मका व्यापार जारी ही रहता है। जैसे चलना, फिरना, भोजन करना, भिक्षाके लिए प्रयत्न करना

आदि ; फिर इससे लाभ ही क्या ? कर्मका त्याग कहाँ हुआ ? हाँ, इतना अवश्य हुआ कि पहले तो उन्हें भोजनके लिये परिश्रम करके अन्न पैदा करना पड़ता और मोटा-पतला अन्न खाना पड़ता किन्तु कर्मोंके त्यागका बहाना हो जानेसे अब किसी गृहस्थके दरवाजेपर पहुँचनेकी देरी है, और बिना परिश्रम बढ़िया माल उड़ानेके लिए मिल जाता है। यह बात उन संन्यासियोंके लिए नहीं कही गयी है जिनके मनमें कि पूर्व-संस्कारोंके अनुसार संसारसे विराग उत्पन्न हो जाता है और वे विरक्त हो जाते हैं।

जीवनको दुःखमय कहनेवाले पक्षके लोग यौक्तिक बातें न सुनकर सुखकी अधिकताका प्रत्यक्ष प्रमाण चाहते हैं। खोज करनेपर मालूम होता है कि सुख तो संसार में दुष्प्राप्य वस्तु है और दुःख के समान सुलभ सामग्री एक भी नहीं है। देखिये न, दरिद्रताको दुःख कहा जाता है; संसारमें दरिद्रोंकी भरमार है; किन्तु धनी कितने हैं ? अज्ञानमें दुःख है; ज्ञान कहाँ है ? जहाँ धार्मिक दो हैं, वहाँ पापी दो सौ हैं। सो भी दो धार्मिकोंके धार्मिकत्वमें सन्देह है ; किन्तु अधार्मिककी अधार्मिकतामें सन्देह नहीं। जिसे लोग जीवनकी चेष्टा कहते हैं, वह तो केवल जीवनकी रक्षा या दुःखकी निवृत्तिका प्रयास मात्र है।

इस प्रकार सुखवाद और दुःखवादकी परस्पर-विरोधी बहसें हैं, जोकि हल नहीं की जा सकतीं। जो भी हो, इतना तो हम भी कहेंगे कि संसारमें सुखकी इच्छा प्रत्येक मनुष्य रखता है। किन्तु

केवल इच्छा रखनेसे ही क्या हो सकता है, जबतक कि उसके लिए उचित उपाय न किया जाय। भोजन करनेकी इच्छा होनेसे क्या होगा, यदि भोजन मिलनेके उचित यत्न नहीं किये जायँगे? अमृत-अमृत चिल्लानेसे अमरत्त्व प्राप्त नहीं हो सकता; अमरता तो तभी प्राप्त हो सकती है, जब वह पान करनेको मिले।

स्मरण रखना चाहिए कि हमलोग संन्यासी नहीं हैं; हमने इस संसारको असार समझकर त्याग भी नहीं दिया है और न तो इसे मायाका जाल ही समझ रक्खा है। इसलिए हमें इस संसारसे प्रयोजन है। यह संसार है क्या वस्तु? इस प्रश्नका उत्तर संक्षेपमें यही दिया जा सकता है कि पुरुष और प्रकृतिका संयोग ही संसार है। यही इस जगत्की लीला है। इसीलिए मनुष्यको हमलोग गार्हस्थ्य जीवन तथा समाजके अन्दर रखना चाहते हैं। हमलोग चाहते हैं कि उक्त दोनोंके धर्मोंका पूर्णतः पालन करता हुआ पुरुष उसी अवस्थामें रहकर परमार्थकी विवेचना करे—परमार्थका भी चिन्तन करे। किन्तु यह तभी हो सकता है, जब प्रकृतिके स्वाभाविक नियमोंपर प्रतिक्षण ध्यान दिया जायगा और उसकी अवहेलनामें अपना नाश दिखायी पड़ेगा। प्रकृतिके नियमोंको उचित रीतिसे पालन करनेवाला मनुष्य अपने जीवनको हर तरहसे सुखी बना सकता है। जीवन वही धन्य है जो हर तरहसे सम्पन्न हो और दूसरोंके लिए अनुकरणीय हो।

प्रकृतिके कार्य

प्रकृतिकी क्या महत्ता है, उसमें क्या शक्ति है, यह संसारके सामने है। यह बात दूसरी है कि हम उसके कार्योंपर ध्यान न दें। वह मनुष्य संसारमें कुछ नहीं कर सकता जो प्रकृतिके कार्योंपर ध्यान नहीं देता और अनियमित कार्य किया करता है। यहाँपर हमारा प्रकृतिसे क्या तात्पर्य है, यह आगे चलकर पाठकोंको मालूम हो जायगा। जो मनुष्य प्रकृतिके नियमोंका उल्लंघन करता है, वह सदा दुःखी रहता है। अच्छा, तो प्रकृतिके नियम क्या हैं? उसके एक-दो नियम नहीं कि गिना दिये जायँ। उसके नियमोंको जाननेके लिए एक ऐसी कसौटी है, जिससे बिना किसी अड़चन और परिश्रमके उसके सब नियम जाने जाते हैं। मान लीजिये कि एक आदमी कभी तो एक घण्टा दिन चढ़े और कभी दो घण्टा, कभी तीन घण्टा दिन चढ़े सोकर उठता है। यदि गौरसे उसे देखें तो आपको पता लगेगा कि वह मनुष्य हाथ-मुख धोनेपर भी आलस्यसे भरा हुआ, तेज-हीन तथा उदास है; और एक आदमी सूर्योदयसे पहले प्रतिदिन सोकर उठ जाता है; उसे देखनेपर आपको मालूम होगा कि एक विचित्र प्रकारका फुर्तीलापन, तेज और गाम्भीर्य उसके रोम-रोममें मौजूद है। बस, समझ लीजिए कि प्रकृतिका नियम है, सवेरे सूर्योदयसे पहले सोकर उठ जाना। अधिक भोजन करनेसे स्वाभाविक ही सुस्ती मालूम होती है, शरीर भारी रहता है,

अजगरकी तरह हिलनेको जी नहीं चाहता, कभी-कभी पेटमें मन्द-मन्द पीड़ा भी पैदा हो जाती है; किन्तु हलका भोजन करनेसे चित्त प्रसन्न रहता है, काम-धन्धेमें खूब दिल लगता है, शरीरमें फुर्ती रहती है। इससे ज्ञात होता है कि हलका भोजन करनेके लिए ही प्रकृतिका आदेश है। इसी प्रकार नियमितरूपसे प्रातःकाल उठते ही अविलम्ब मल-मूत्र त्यागकर स्नानादि नित्य-क्रियाओंसे निवृत्त होनेवाले मनुष्यमें और अनियमितरूपसे कभी सोकर उठते ही, कभी दो घण्टा दिन चढ़े, और कभी दोपहरको या और भी देर करके शौचादिसे निवृत्त होनेवाले मनुष्यमें बड़ा अन्तर दिखलायी पड़ेगा। अस्तु, इसी कसौटीपर कसनेसे प्रकृतिके सब नियम प्रत्येक मनुष्यको ज्ञात हो जाते हैं। *

जीवनको सुखी बनानेके लिए प्रकृतिके नियमोंका यथार्थ रीतिसे पालन करना ही मूल वस्तु है। अतः प्रत्येक मनुष्यको प्रकृति देवीका उपासक होना चाहिए। हम पहले ही कह आये हैं कि प्रकृति और पुरुषके संयोगका नाम ही संसार है। इस प्रकृति और पुरुषका स्थूल रूप हम संसारमें स्त्री और पुरुषके रूपमें देख सकते हैं। इस जीवन-लीलाका आदि स्रोत है—स्त्री और पुरुष। इन्हीं दोनोंके संयोगसे इस जीवनकी लीला पूर्ण रीतिसे चरितार्थ होती है।

---

* इस विषयका बृहद् विवेचन "ब्रह्मचर्यका महत्त्व" नामकी पुस्तक में किया गया है, अतः यहाँ उसकी पुनरावृत्ति करनेकी आवश्यकता नहीं। प्रकाशक से मँगाइये। मूल्य ॥।) —लेखक

बंगालके लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक श्रीयुत् नलिनीकान्त गुप्तने अपनी "नारीर कथा" नामकी पुस्तिकामें लिखा है कि, स्त्रियोंमें जो प्राकृतिक शक्ति विद्यमान है, जो हमलोगोंको पकड़कर इस संसारकी ओर बलात् खींच लेती है, उसीका भय संन्यासियोंको था और उसीसे डरकर उनलोगोंने स्त्रियोंका वहिष्कार करना चाहा था। यह आकर्षण इतना बलिष्ठ है कि इसे आप चाहे जो कहें, माया, मोह, या और किसी भी नामसे पुकारें, पर आसानीसे आप इसका त्याग नहीं कर सकते। इससे छुटकारा पाना सहज नहीं है। संन्यास धर्ममें भी स्त्रीने इस शक्तिके अनुसार अपना स्थान बना ही लिया। उसने पहले यही समझा था कि स्त्री, अति क्षुद्र पदार्थ है, उसमें जो शक्ति है, वह मायामात्र है, इसलिए इसकी प्रतारणा बड़ी आसानीसे हो सकेगी; पर उसकी सारी कल्पना व्यर्थ हुई। स्त्रीमें जिस अमोघ शक्तिका उसे परिचय मिला, उसकी प्रतारणा वह किसी प्रकार भी नहीं कर सकता था। निदान उसकी श्रेष्ठताको स्वीकार कर लेना ही उसने अपनी रक्षाका एकमात्र उपाय सोचा। फिर तो उसने स्त्रीको माताके रूपमें देखा और उसी स्वरूपमें उसकी उपासना करनेपर उसे इस जीवनमें, इस पृथिवीमें, इस संसारमें एक ऐसा पदार्थ दृष्टि-गोचर हुआ, जिसके संयोगसे वह अपना धर्म परित्याग न करके भी सबन्ध स्थापित कर सकता था। इसीसे संन्यास धर्मने यह आदेश किया कि जबतक इस पृथिवीके समूल नष्ट करनेकी शक्ति न उपार्जन कर लो तबतक

इसके साथ सम्बन्ध रखकर ही चलो। पर सावधान! केवल उदासीन निरीक्षक बनकर उसे देखो मात्र। उसका रसास्वादन भी कर सकते हो, पर केवल कवियोंकी भाँति। भोग करनेकी कामना भूलकर भी न करो। नहीं तो धोखा खाओगे।

किन्तु दुःख है कि हमलोगोंने प्रकृतिरूपी स्त्रीको भोगकी सामग्री बना ली है। प्रकृतिकी हम तनिक भी परवाह नहीं करते। उसीका कटुफल हमें भोगना पड़ रहा है। उसके नियमोंकी अवहेलना करके वीर्यकी अपरिपक्वावस्थामें ही हम गृहस्थाश्रमी बन जाते हैं, नियमानुसार हम वीर्यकी रक्षा नहीं करते, वीर्य क्षीण करनेमें भी हम आगा-पीछा नहीं सोचते; परिणाम-स्वरूप हम दिन-प्रतिदिन अल्पायु, पौरुषहीन, रोगी, दुःखी और मनुष्यत्व-रहित होते जा रहे हैं। यदि अन्य देशोंसे हम अपनी तुलना करें, आँख खोलकर जमानेकी रफ्तारको देखें, अपने भूतकालपर एक दृष्टि डालें, तो मालूम होगा कि प्रकृतिके नियमोंका उल्लंघन करनेके कारण—उसके रहस्योंको ठीक ठीक न समझ सकनेके कारण हमारा कितनी तेजीसे अधःपतन हो रहा है। क्या यह साधारण लज्जाकी बात है? क्या इससे भी बढ़कर मनुष्यत्वहीन कार्य और कोई हो सकता है? क्या अब भी हमें चेत नहीं करना चाहिए

प्रकृतिकी अवहेलना करके सुखकी आशा करना कोरी मूर्खता है। जो मनुष्य इसपर ध्यान रखता है, जीवनके प्रत्येक कार्यमें नियमितता रखता है, वह सदा सुखी रहता है, प्रकृति उसकी दासी

बनकर हर काममें योग-दान करती है और जो उसका तिरस्कार करता है, वह प्रकृति देवीके न्यायालयमें महान अपराधीकी भाँति दंडित किया जाता है। जिस प्रकार प्रकृतिके और अनेकानेक नियम हैं, उसी प्रकार वह हमें यह भी आदेश करती है कि हम किसी काममें प्रवृत्त होनेके पहले अपनेको वह काम करनेके पूर्ण योग्य बना लें। संसारमें प्रवेश करनेके पहले संसारी होनेके योग्य बन जाना मनुष्यमात्रका प्रधान कर्त्तव्य है। यों तो मनुष्य जिस दिन गर्भमें आता है, उसी दिन वह एक प्रकारसे संसारी हो जाता है। पर वास्तवमें वह अवस्था संसारी कहलानेकी नहीं। क्योंकि उस समय न तो उसपर किसी प्रकारका दायित्व ही रहता है—अपने या और किसीके भरण-पोषणका भार ही रहता है और न वह कुछ करनेमें समर्थ ही होता है। इसीसे परमपिता परमात्मा उस अवस्थातक जीवमात्रको स्वतंत्र रखता है, जबतक कि उसमें सारी शक्तियोंका विकास नहीं हो जाता। परमात्माकी इस दयासे ज्ञात होता है कि वह प्रत्येक जीवको संसारका भार सहन करनेके लिए प्रारम्भमें योग्यता प्राप्त करनेके निमित्त ही समय देता है। अब यदि उस अवस्थामें मनुष्य योग्यता प्राप्त न करे तो दोष किसका ? यह समझना भूल है कि कोई अपराध करनेपर प्रकृति देवी हमें मुक्त कर देगी। उस न्यायालयमें नियम-विरुद्ध एक कार्य नहीं किया जा सकता। आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, आदिपर दृष्टि डालनेसे मालूम

होता है कि सबका काम नियमित रूपसे हो रहा है। आज यदि अग्नि अपने उष्णत्वको छोड़ दे, तो क्या ये लाखों मनका बोझा लेकर तेजीसे दौड़नेवाले एञ्जिन निकम्मे न हो जायँ? यदि हवा अपने नियमका पालन न करे, तो क्षणभरमें ही प्रलय न हो जायँ? कहाँतक कहें मनुष्य जहाँतक देख सकता है और जहाँतक उसकी बुद्धि जा सकती है, एक भी बात नियम-विरुद्ध होती दिखायी नहीं पड़ सकती। फिर भला जिस संसारमें नियमोंकी इतनी जबर्दस्त पाबन्दी है, उसमें नियमोंका उल्लंघन करके कोई मनुष्य कैसे सुखी रह सकता है?

नियमोंका उल्लंघन करनेके कारण ही भारतवर्षकी आज यह दशा हो रही है। जिस देशमें महावीर हनुमान, भीष्म, भीम और अर्जुन जैसे वीर थे, जहाँ परम प्रतापी और अनुपम स्वदेशभक्त महाराणा प्रताप तथा छत्रपति महाराज शिवाजीने जन्म लिया था, जहाँ भगवान वेदव्यास, शुकदेव, गौतम, कश्यप, शंकराचार्य प्रभृति महात्मा पैदा हुए थे, जहाँ जनक और भोजके समान विद्वान तथा विद्या-प्रचारक, शिवि और विक्रमादित्य जैसे परोपकारी, हरिश्चन्द्र और युधिष्ठिर-सरीखे सत्यवक्ता राजे थे, जिस भारत-वसुन्धराके वक्षस्थलपर कविकुल शिरोमणि कालिदास, भवभूति, श्रीहर्ष, दण्डि और माघ जैसे महापंडित उत्पन्न हुए थे, जहाँपर संसारको चकित करनेवाली सती-शिरोमणि और विदुषी सीता, अनुसूया, गार्गी, शकुन्तला आदि देवियाँ पैदा हुई थीं,

उसी देशकी आज ऐसी दशा हो रही है। भारतकी इस पतितावस्थाका मूल कारण है—प्रकृतिके नियमोंका उल्लंघन। कितने लज्जा और शोककी बात है कि जो भारतवर्ष संसारका आदर्श और मुकुटमणि था, वही आज भारत-सन्तानोंकी अयोग्यताके कारण इतना दीन, हीन, रुग्ण और सब प्रकारकी शक्तियोंसे रहित हो रहा है। जिस देशका प्राचीन वैभव इतिहासोंमें पढ़कर उन्नतिशील जगत्‌को भी दाँतोंतले अँगुली दबानी पड़ती है, उसी देशमें आज मूर्ख, अल्पायु, रोगी और आलसी गुलाम पैदा हो रहे हैं। जिस भारतमें किसी समय प्रेमकी नदी बहती थी, वहीं आज पति-पत्नीमें ही प्रेम, श्रद्धा और विश्वासका अभाव देखने में आ रहा है। चारो ओर व्यभिचारकी वृद्धि हो रही है। तीन करोड़से अधिक विधवाओंके हृदयमें देशको भस्म करनेके लिए अग्नि धधक रही है। नित्य हमारी कितनी माँ-बहनें विष खाकर, मिट्टीका तेल छिड़कनेके बाद अपने ही शरीरमें आग लगाकर, जलमें डूबकर, अपने हाथसे छुरी भोंककर मर रही हैं। क्या कभी आपने इन हृदय-विदारक घटनाओंपर भी विचार किया है? जिस गृहस्थाश्रमकी प्रशंसा हमारे पूर्वजोंने मुक्त-कण्ठसे की है, उसी आश्रमकी आज ऐसी घृणित दशा हो रही है कि सोचकर कलेजा दहल उठता है। सौमें एक भी गृहस्थ सुखी नहीं, कहीं भी सुख-शांति नहीं, हर ओर त्राहि-त्राहि मची हुई है। कोई गृहस्थ अन्नके बगैर छटपटा रहा है, कोई करोड़ोंकी सम्पत्ति रहते एक सन्तानके वास्ते

बिलख रहा है, कोई बच्चोंकी जुदाईमें आहें भर रहा है, कोई रोग-शय्यापर पड़ा तड़प रहा है, कोई किसीमें दुःखी कोई किसीमें, एक भी सुखी नहीं! जहाँ देखें, वहीं हाय-हाय! कारण? वही प्रकृतिके नियमोंका उल्लंघन! आज न तो हम विधि-पूर्वक ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, न विद्याध्ययन करके किसी बातको जानते हैं, न तो हमारा परिपक्वावस्थामें योग्य कन्याके साथ विवाह होता है और न शास्त्र-विहित रीतिसे हम सन्तानोत्पत्ति ही करते हैं। उधर हमारी गृह-देवियोंका और भी बुरा हाल हो रहा है। उन्हें नतो स्त्री-धर्मकी शिक्षा दी जाती है, और न उनका विवाहके योग्य अवस्था होनेपर विवाह ही किया जाता है; गर्भाधान-विधि और सन्तान-पालन क्रियाको तो वे बिचारी अबलायें जानती ही नहीं कि किस चिड़ियाका नाम है। उनमें तो बचपनसे ही बस यही संस्कार भर जाता है कि यह सब प्रारब्धका फेर है, जो भाग्य में लिखा रहता है, वही होता है—उससे न तो तिलभर घट सकता है और न बढ़ सकता है। समयके फेरसे आज अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषयकी शिक्षा देनेमें ही लज्जा मानी जाती है। कुछ लोग तो ऐसे आवश्यक विषय की चर्चा करनेकी जरूरत ही नहीं समझते यही कारण है कि आज न तो हमें ही प्रकृति देवीके नियम मालूम हैं और न हमारी गृह-लक्ष्मियोंको ही—उसका पालन करना तो बहुत दूरकी बात है।

मूल वस्तु

प्रत्येक जीवका जन्म माता-पिताके आधीन रहता है। वह जन्म किस प्रकारका होना चाहिए, इसपर प्रकाश डालना आवश्यक है। क्योंकि जिस प्रकार नींवके कमजोर होनेपर मकान नहीं टिक सकता, उसी तरह शरीररूपी मकान भी उत्पत्तिके मूल तत्त्वोंकी खराबीसे निस्तत्त्व हो जाता है। जीवोंकी उत्पत्तिका मूल पदार्थ है रज-वीर्य। जायदाद अच्छी तभी होती है, जब किसान अपने खेतमें खाद डालकर उसमें उर्वरा शक्ति पैदा करता और निर्दोष बीज बोता है। ठीक यही हाल मनुष्य-शरीरका भी है। हृष्ट-पुष्ट और निर्दोष रज-वीर्यसे उत्पन्न हुआ मनुष्य ही सब काम करनेमें समर्थ, सुखी और यशस्वी होता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्यको नियमित रूपसे ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए। ब्रह्मचर्य ही जीवनकी मूल वस्तु है। इसीका ह्रास होनेके कारण जीवन अन्धकारमय और दुःखपूर्ण हो जाता है। ब्रह्मचर्यका अभाव होनेके कारण ही आज हमारी यह दशा हो रही है। इसीके कारण आज हमें सन्तानकी मृत्युका आघात सहना पड़ रहा है, नाना प्रकारकी व्याधियोंका शिकार बनना पड़ रहा है। सन्तान-हीन होना भी बहुत अंशोंमें इसी ब्रह्म-चर्य-हीनताका प्रभाव है। जिस प्रकार कच्चा बीज अनुपयुक्त भूमिमें बोनेसे सड़ जाता है—उगता नहीं, उसी प्रकार अपरिपक्व वीर्य भी गर्भाधान करनेमें समर्थ नहीं होता। प्राचीन समयमें इसी ब्रह्मचर्यके

प्रतापसे किसीकी सन्तान उसके सामने नहीं मरती थी। महाभारतमें लिखा है—

न बाल एव म्रियते तदा कश्चिज्जनाधिप।
न च स्त्रियं प्रजानाति कश्चिद् प्राप्त यौवनः॥

—आदिपर्व

अर्थात् योद्धा सन्तानके अतिरिक्त किसीकी सन्तान माँ-बापके सामने नहीं मरती थी। स्त्रियाँ सभी पति-भक्ति-परायणा और सधवा होती थीं। प्राचीन ग्रन्थोंमें ब्रह्मचर्यकी व्याख्या इस प्रकार की गयी है:—

कायेन मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुन त्यागो ब्रह्मचर्यम् प्रचक्षते॥

—याज्ञवल्क्य

यानी, मन-बचन-कर्मसे सदा-सर्वदा सब तरहके मैथुनसे दूर रहनेकी साधनाको ब्रह्मचर्य कहते हैं। ब्रह्मचर्यमें कितनी शक्ति है, यह धन्वन्तरि महाराजके शब्दोंसे भलीभाँति ज्ञात हो जाती है। एक दिन धन्वन्तरिजी अपने शिष्योंको आयुर्वेदका उपदेश कर रहे थे। पाठ समाप्त होनेपर शिष्योंने जिज्ञासा की कि प्रभो! कोई ऐसा उपचार बतलाइये, जिस एकके सेवनसे ही सब तरहके रोगोंका नाश हो सके। मनुष्यमात्रके कल्याणके लिए आप अपना अनुभूत कोई एक ही उपाय बतलानेकी दया कीजिये।

शिष्योंकी यह बात सुनकर धन्वन्तरिजी अत्यन्त प्रसन्न हुए

और बोले,—प्रिय वत्स ! तुमलोगोंको हम अपना अनुभव किया हुआ एक ऐसा ही उपचार बतलाते हैं, ध्यानसे सुनो । इसकी सत्यतामें तनिक भी सन्देह नहीं है—

मृत्युव्याधिजरानाशी पीयूषं परमौषधम् ।
ब्रह्मचर्यं महद्यत्नं सत्यमेव वदाम्यहम् ॥
शान्ति-कान्ति स्मृति ज्ञानम आरोग्यंचापि सन्ततिम् ।
य इच्छति महद्धर्मं ब्रह्मचर्यं चरेदिह ॥
ब्रह्मचर्यं परं ज्ञानं ब्रह्मचर्यं परं बलम् ।
ब्रह्मचर्यं मयोह्यात्मा ब्रह्मचर्यैव तिष्ठति ॥
ब्रह्मचर्यं नमस्कृत्य चासाध्यं सधयाम्यहम् ।
सर्वलक्षणहीनत्वं हन्यते ब्रह्मचर्यया ॥

अर्थात्—यह मैं सच कहता हूँ कि मृत्यु, रोग तथा बुढ़ापेका नाश करनेवाला अमृतरूप बड़ा उपचार ब्रह्मचर्यरूप महायत्न है । जो शान्ति, सुन्दरता, स्मृति, ज्ञान, आरोग्य और उत्तम सन्तति चाहता है, वह इस संसारमें सर्वोत्तम धर्म ब्रह्मचर्यका पालन करे । ब्रह्मचर्य ही परम ज्ञान और परम बल है; यह आत्मा निश्चय रूपसे ब्रह्मचर्यमय है और इसकी स्थिति भी मनुष्यके शरीरमें ब्रह्मचर्यहीसे होती है । ब्रह्मचर्यमय परमात्माको मैं नमस्कार करके असाध्य रोगियोंको भी चंगा कर देता हूँ; इस ब्रह्मचर्यकी रक्षासे सब तरहके अशुभ नष्ट हो जाते हैं । और भी सुनिये; योगशास्त्रमें योगिराज शिवने कहा है:—

"मरणं विन्दुपातेन जीवनं विन्दु धारणात् ।"

अर्थात्—वीर्यका नाश करना ही मृत्यु है और वीर्यकी रक्षा करना ही जीवन है ।

इसी ब्रह्मचर्यके प्रतापसे मनुष्य विद्या, बल, बुद्धि सब प्राप्त कर सकता है । वीर्यकी रक्षा ही संजीवनी है:—

"एषां संजीवनी विद्या संजीवयति मानवम् ।"

—सूक्ति

यानी संजीवनी विद्या अवश्यमेव मनुष्यको मृत्युसे बचानेवाली है । इसीसे इसका नाम संजीवनी पड़ गया है । कच, देवगुरु बृहस्पतिका पुत्र था । जब यह शुक्रके पास विद्या सीखनेके लिए गया, तब असुरोंको यह बात मालूम हो गयी । अतः वे बहुत नाराज हुए और कचको मार डाला । किन्तु शुक्राचार्यने ब्रह्मचर्यके प्रभावसे कचको फिर जीवित कर दिया । इसी संजीवनी विद्याको प्राप्त करके ही कच परम सुन्दरी देवयानीका तिरस्कार करनेमें समर्थ हुआ था ।

इसलिए यदि तुम शंकर बनना चाहते हो, तो इस ब्रह्मचर्यरूपी तीसरे नेत्रको प्राप्त करनेकी चेष्टा करो । अभ्यास और वैराग्य नामके ये दोनों नेत्र हैं, इन्हें सार्थक बनाओ । फिर तीसरा नेत्र जो कि मस्तिष्कमें है और जिसका नाम आत्म-ज्ञान है—अपने-आप ही खुल जायगा । इस नेत्रके खुलनेपर ही मनोविकारोंका नाश होता है और विकार नष्ट होनेपर ही मनुष्य अपना तथा संसारका हित कर सकता है । किन्तु इस अपूर्व वस्तुकी रक्षा तभी हो सकती है, जब

मनुष्य सब प्रकारके मैथुनोंसे दूर रहे। मैथुन आठ प्रकारके होते हैं, केवल स्त्री-प्रसंग ही मैथुन नहीं है:—

स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्य भाषणं।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया निष्पत्तिरेवच॥
एतन्मैथुन मष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिण:।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्ट लक्षणम्॥

—दक्ष संहिता

अर्थात्—स्मरण, कीर्त्तन, केलि, दृष्टिपात, गुप्त भाषण, संकल्प, अध्यवसाय, और क्रिया-निष्पत्ति ये आठ तरहके मैथुन होते हैं। इनका स्पष्ट अर्थ इस प्रकार है—

स्मरण—किसी जगह पढ़े हुए, देखे हुए, सुने हुए या चित्रमें देखे हुए स्त्री-रूपका ध्यान, चिन्तन या स्मरण करना।

कीर्त्तन—स्त्रियोंके रूप, गुण और अंगोंकी बुरे भावसे चर्चा करना अथवा इस विषयके गीत गाना तथा गन्दी बातें करना इत्यादि।

केलि—स्त्रियोंके साथ खेलना। जैसे, फाग, तास आदि।

प्रेक्षण—किसी स्त्रीको बुरी दृष्टिसे या छिपकर बार-बार देखना।

गुप्त भाषण—स्त्रियोंके पास बैठकर। गुप्त भाषण करना, शृङ्गार-रस-पूर्ण उपन्यास, कहानियाँ, नाटक आदि पढ़ना या उनकी चर्चा करना। अथवा उनसे एकान्तमें बातें करनेके लिए आतुर रहना।

संकल्प—किसी अप्राप्य स्त्रीको प्राप्त करनेके लिए दृढ़ होना तथा मनमें उसे पानेका निश्चय करना।

अध्यवसाय—स्त्री-सहवासके आनन्दका अनुभव करके उसके लिए प्रयत्नशील होना।

क्रिया-निष्पत्ति—प्रत्यक्ष सम्भोग करके वीर्य स्खलित करना।

अपने जीवनको समुन्नत बनानेके लिए मनुष्यको उक्त आठों प्रकारके मैथुनोंसे सदा अलग रहना उचित है। जो मनुष्य इन आठों प्रकारके मैथुनोंमें किसी भी एक मैथुनका आदी होता है, वह वीर्यकी रक्षा करके अपने जीवनको समुन्नत नहीं बना सकता। और जो मनुष्य उक्त आठों प्रकारके मैथुनमें रत रहता है, उसका जीवन कितना पतित और निःसार हो जाता है, सो तो कल्पनातीत है।

—०—
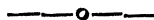
अन्य मैथुन

आठ प्रकारके मैथुनके अतिरिक्त तीन तरहके मैथुन और हैं जो अत्यन्त लज्जास्पद अप्राकृतिक और नाशकारी हैं। उनमें पहलेका नाम है—गुदा-मैथुन। पुरुषके साथ पुरुषका सम्भोग करना गुदा-मैथुन कहलाता है। यह दुर्व्यवहार विशेषकर १०-१२-१४ वर्षके बालकोंके साथ किया जाता है। किन्तु कितने मनुष्य तो इसके ऐसे आदी हो जाते हैं कि वृद्ध हो जानेपर भी गुदा-भञ्जन कराना नहीं छोड़ते। ऐसे लोग अपनी इच्छा पूरी करनेके लिए नवयुवकोंको नष्ट किया करते हैं। यह गुदा-मैथुनका दोष स्कूलों और कालेजोंमें बेतरह घुसा हुआ है। कितने दुःखकी बात है कि जहाँ हमारे बालक शिक्षा ग्रहण करके मनुष्य बन सकते हैं, वहींपर इस दुर्गुणने अड्डा जमाया है। जिन शिक्षालयोंमें बच्चे चरित्रवान बनने तथा कर्मनिष्ठ होनेके लिए भर्त्ती होते हैं, उन शिक्षालयोंमें उन्हें मुख्यतया इन्हीं बुराइयोंकी शिक्षा मिलती है। आजकलके शिक्षालय ही भक्ष्यालय बन रहे हैं। यदि यह दुर्गुण लड़कोंतक ही परिमित होता तो किसी तरह सहन किया जा सकता था; किन्तु समयके फेरसे आज यह बुराई हमारे यहाँके अधिकांश अध्यापकोंमें भरी हुई है। इन अध्यापकोंको किन शब्दोंमें सम्बोधित किया जाय, समझमें नहीं आता।

यह दुर्गुण कितना भयानक है, यह बतलानेकी आवश्यकता

नहीं। ऐसे नीच और पामर मनुष्य अपने जीवनका नाश तो करते ही हैं, साथमें उन बालकोंके जीवनको भी बर्बाद कर डालते हैं, जिन्हें अपने चंगुलमें फँसाते हैं। इसलिए यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि यह कर्म हस्त-मैथुनसे भी अधिक निकृष्ट और पाप-पूर्ण है। क्योंकि हस्त-मैथुनसे तो मनुष्य सिर्फ अपना ही नाश करता है और गुदा-मैथुनसे तो दूसरोंकी जिन्दगी भी मिट्टीमें मिल जाती है।

दूसरेका नाम है—हस्त-मैथुन। डाक्टर हिलका कहना है कि हस्त-मैथुन वह तेज कुल्हाड़ी है, जिसे अज्ञानी युवक अपने ही हाथोंसे अपने पैरोंमें मारता है। उस अज्ञानीको तब चेत होता है, जब उसका हृदय, मस्तिष्क और मूत्राशय आदि निर्बल हो जाते हैं तथा स्वप्नदोष, शीघ्रपतन, प्रमेह आदि दुष्ट रोग उसे आ घेरते हैं, जननेन्द्रिय छोटी, टेढ़ी और कमजोर होकर गृहस्थ-धर्मके अयोग्य हो जाती है एवं जवानीमें ही बुढ़ापा अधिकार जमा लेता है। आजकल यह संक्रामक रोग विशेष रूपसे हमारे देशमें फैला हुआ है। इस मैथुनसे बालकोंका सब कुछ चौपट हो जाता है। एक बार जो इसके चक्करमें पड़ जाता है, वह आमरण इस नाशक चक्रके फन्देसे नहीं छूटता। आमरण ही क्यों बल्कि यों कहना चाहिये कि इन कुरोगोंमें जकड़े हुए मनुष्योंका जन्म-जन्मान्तरमें भी उद्धार नहीं होता। कारण यह कि आगामी जन्ममें भी संस्कार तो पिछले जन्मका बना रहता है; और जबतक संस्कार नहीं बदल जाता तबतक वह आदत मनुष्यसे दूर नहीं हो सकती। बुरी आदतसे

छुटकारा पानेके लिए उसकी वासनाको दिलसे निकाल देना बहुत आवश्यक होता है। इस हस्त-मैथुनसे इतनी हानियाँ होती हैं कि उनका उल्लेख करनेसे एक छोटीसी पुस्तिका तैयार हो सकती है। अतः यहाँ उनमें कुछ हानियोंका संक्षिप्त दिग्दर्शन कराकर नवयुवकोंको सावधान कर दिया जायगा। जिस प्रकार किसी लकड़ीमें घुन लग जानेसे वह खोखली पड़ जाती है, ठीक उसी प्रकार इस अधम कुटेवसे मनुष्यका शरीर जर्जरित हो जाता है। इससे केवल इन्द्रियकी ही नहीं बल्कि शरीरकी सब नसें ढीली पड़ जाती हैं। फल यह होता है कि स्नायुओंके दुर्बल होनेसे जननेन्द्रियका मुख मोटा हो जाता है और जड़ पतली पड़ जाती है। इस शिथिलताके कारण वीर्य बहुत जल्द गिरने लग जाता है, बार-बार स्वप्नदोष होने लगता है, जरासी विषय-सम्बन्धी बात मनमें उदय होते ही वीर्य गिरने लग जाता है और अन्तमें कुछ ही दिनोंके बाद मनुष्य नपुंसक हो जाता है।

तीसरेका नाम है—पशु-मैथुन। नवयुवक बहुधा विषय-सम्बन्धी बातें सोचकर अपने विचारोंको नष्ट करता है। परिणाम यह होता है कि शरीरमें उत्तेजना पैदा हो जाती है और उसपर पागलपनका भूत सवार हो जाता है। फिर तो वह स्वाभाविक या अस्वाभाविक रीतियोंसे वीर्यपात करनेपर उतारू हो जाता है। पशु-मैथुन भी मनुष्य इसी समय कर बैठता है। उस समय तो उसपर सनक सवार रहती है, अतः वह क्षणिक आनन्दके लोभमें पड़कर इस

प्रकारके अस्वाभाविक कार्य कर बैठता है, किन्तु पीछे उसे अपने कियेका कटुफल बुरी तरह भोगना पड़ता है। यहाँतक कि कभी-कभी पशु-मैथुनसे जननेन्द्रिय सड़ भी जाती है।

ये तीनों ही मैथुन एकसे एक बढ़कर भयानक हैं। स्त्री-प्रसंग तो सृष्टि-विज्ञानके अनुकूल माना गया है; किन्तु ये तीनों मैथुन अप्राकृतिक हैं। इन कुक्रियाओंसे मृगी, मूर्छा, संग्रहणी, कोढ़, प्रमेह नामर्दी उन्माद आदि सैकड़ों भयानक रोग पैदा हो जाते हैं। इनसे मनुष्यकी आयु भी क्षीण हो जाती है। ऐसे मनुष्यको कभी भी सन्तानका सुख नसीब नहीं होता। पहले तो ऐसा व्यक्ति सन्तान पैदा करनेके योग्य ही नहीं रह जाता और यदि किसी कारणवश सन्तान उत्पन्न हो भी जाती है तो वह अधिक दिनोंतक जीवित नहीं रहती—छोटी अवस्थामें ही काल-कवलित हो जाती है।

सन्तानकी इच्छा सबको होती है, पर कैसे खेदकी बात है कि सन्तान जिस वस्तुद्वारा उत्पन्न होती है, उस वस्तुकी रक्षा करनेकी ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया जाता और सदा उसका तिरस्कार किया जाता है। समयके फेरसे आज यह विषय भी अश्लील तथा गन्दा समझा जाता है। हृदयसे तो लोग इन दुर्गुणों-को ग्रहण किये रहते हैं, इससे बहुत अधिक प्रेम करते हैं, पर ऊपरसे गन्दा कहा करते हैं; गन्दा समझकर ही इसपर विचार-तक नहीं करना चाहते। जीवनकी बड़ी ही महत्त्वपूर्ण वस्तु होते हुए भी लोग इससे बेसुध रहा करते हैं। यही कारण है कि आज

सन्तान-विज्ञान

देशके कितने ही नौ-निहाल युवक अज्ञानताके कारण अपनेसे अपना नाश कर रहे हैं। वीर्यकी रक्षा किये बिना मनुष्य कभी भी संसार-में सुखी नहीं रह सकता।

—–—o—–—

वीर्य

मनुष्य-शरीरके सार-तत्वका नाम वीर्य है। वैद्यकशास्त्रने जीवनका मूल तत्व इस वीर्यको ही माना है। यह वीर्य आहारका अन्तिम तत्व है। आयुर्वेदका मत है:—

रसाद्रक्तं ततोमांसं मांसान्मेद: प्रजायते।
मेदस्यास्थिस्ततो मज्जा मज्जाया: शुक्र सम्भव: ॥

—सुश्रुताचार्य

अर्थात्—भोजनके पचनेपर रस, रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा और मज्जासे वीर्य पैदा होता है। रससे लेकर मज्जातक प्रत्येक धातु पाँच रात-दिन और डेढ़ घड़ीतक अपनी अवस्थामें, रहती है। बाद तीस दिन-रात और नौ घड़ीमें रससे वीर्य बनता है। ऐसा भोज तथा अन्य आचार्योंने लिखा है। स्पष्ट रीतिसे यों समझना चाहिए कि मनुष्य जो कुछ आज भोजन करता है, उसका वीर्य बननेमें पूरा एक महीना लगता है। इसी प्रकार और इतने ही समयमें स्त्री-शरीरमें रज पैदा होता है। शरीरके बलाबलके अनुसार इस समय-में न्यूनाधिकता भी हो जाती है।

इसी पुरुष-वीर्य और स्त्री-रजके अधीन स्त्री-पुरुषकी शारीरिक और मानसिक सारी शक्तियाँ रहती हैं। इसीके प्रभावसे ब्रह्मचारी पुरुषों और ब्रह्मचारिणी स्त्रियोंका शरीर बल-वीर्यसे पूर्ण, सुन्दर,

हृष्ट-पुष्ट तथा पवित्र देखा जाता है। यदि यह न रहे, तो शरीर एक क्षण भी न टिके। शरीर-स्थितिका मूल-तत्व यही है। अब यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि वीर्यकी उत्पत्ति शरीरमें किस अवस्थासे होती है ? यों तो शरीरकी उत्पत्ति ही वीर्यसे होती है, अतः वीर्य-शून्य तो कभी शरीर रहता ही नहीं और न वीर्य-हीन शरीर जीवित रह सकता है, पर स्पष्टरूपसे १२—१३ वर्ष-की अवस्थासे शरीरमें वीर्य बनने लगता है। इससे पहले शरीरमें जो वीर्य बनता है, वह सबका सब शरीरकी वृद्धि और उसके विकासमें खर्च हो जाया करता है और किशोरावस्थाके आरम्भमें वह दिखलायी पड़ने लगता है। पचीस वर्षकी अवस्थातक पुरुष-शरीरका वृद्धि-क्रम जारी रहता है; तत्पश्चात् उसमें पुष्टता आती है। इसी अवस्थामें वीर्य परिपक्व भी होता है। जो मनुष्य इस अवस्थासे पहले ही वीर्य-पात करना प्रारम्भ कर देता है, उसका वीर्य कभी भी पुष्ट नहीं होता और साथ ही उसके शरीरकी बाढ़ भी मारी जाती है। अतएव पचीस वर्षकी अवस्थातक वीर्यका संचय करना अत्यन्तावश्यक है। सुश्रुताचार्यने लिखा है—

ऊन षोडशवर्षायामप्राप्तः पंचविंशतिम्।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विनश्यति ॥

अर्थात्—सोलह वर्षसे कम उम्रकी स्त्री और पचीससे कम अवस्थाके पुरुषके रज-वीर्यसे जो गर्भाधान होता है वह नष्ट हो जाता है। अभिप्राय यह है कि उससे जो सन्तान पैदा होती है,

वह सर्वगुण-सम्पन्न और दीर्घायु नहीं होती। यह वीर्य बहुत ही कम मात्रामें तैयार होता है। कुछ लोगोंका कहना है कि ४० ग्रास आहारसे १ बूँद रक्त और ४० बूँद रक्तसे १ बूँद वीर्य तैयार होता है। वैज्ञानिकोंका मत है कि २ तोला वीर्यके लिए १ सेर रक्त और १ सेर रक्तके लिए १ मन आहारकी आवश्यकता होती है।

अब यह बात मालूम हो गयो कि यदि निरोग मनुष्य सेरभर अन्न रोज खावे तो ४० दिनमें वह ४० सेर अन्न खा सकेगा। अतएव उसकी ४० दिनकी कमाई दो तोला वीर्य है। इस हिसाबसे ३० दिनकी कमाईमें केवल डेढ़ तोला वीर्य ही हृष्टपुष्ट मनुष्यको प्राप्त होता है। ऐसे मूल्यवान पदार्थको शरीरसे निकाल देना कितना अनर्थ है। इसपर लोग पूछ सकते हैं कि जब यह इतना कम तैयार होता है, तब रात-दिन विषय करनेवालोंके शरीरमें यह आता कहाँसे है? प्रश्न बहुत ही ठीक है। बात यह है मनुष्य-के शरीरमें वीर्य सदा कुछ-न-कुछ तैयार रहता है। हम पहले ही कह आये हैं कि वीर्यके बिना शरीर जीवित नहीं रह सकता। दूसरी बात यह है रात-दिन विषय करनेवाले मनुष्यका वीर्य अच्छी तरहसे पकने तो पाता नहीं, वह तो अपने असली रूपमें आनेसे पहले बाहर निकल जाता है; अतः उनके वीर्यको तो वीर्य कहना ही अनुचित है। अधिक विषयी अथवा अधिक मात्रामें वीर्य क्षीण करनेवालोंके शरीरसे पहले तो वीर्य अपना असली रूप छोड़कर

पानीकी तरह निकलने लगता है और बाद कुछ ही दिनोंमें वोर्यकी नलीसे धातुकी जगह रक्त गिरने लगता है। फिर तो वह आदमी संसारमें चन्द दिनोंका मेहमान रह जाता है।

यहाँपर एक बातका और उल्लेख कर देना आवश्यक है। वह यह कि बहुतसे लोग समझते होंगे कि, यदि वीर्य हमेशा बनता है, और वह आहारका अन्तिम सार है तो कुछ समयमें वह बहुत अधिक मात्रामें एकत्र हो जाता होगा। यदि उसे काममें न लाया जाय तो अन्ततः वह किस काम आवेगा। इसका साधारण उत्तर यही है कि आहार किये हुए पदार्थसे रस, रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेदा, मेदासे अस्थि (हड्डी) हड्डीसे मज्जा और फिर उससे वीर्य बनता है। बाद वीर्यकी भी पाचन क्रिया होती है। परन्तु उसमें मल नहीं निकलता, उसके केवल स्थूल और सूक्ष्म दो ही अंश बनते हैं। स्थूल भाग तो वीर्यमें ही रहता है और सूक्ष्म भाग का 'ओज' बन जाता है। कहनेका अभिप्राय यह है कि सब धातुओंमें सर्व-श्रेष्ठ वस्तु वीर्य है और वीर्यका श्रेष्ठ भाग ओज है। इसी ओजका दूसरा नाम बल भी है। इस ओजकी ज्यों-ज्यों वृद्धि होती है, त्यों-त्यों शरीरकी वृद्धि होती है और इसकी न्यूनता-से शरीरका नाश होता है। उत्साह, साहस, धैर्य, लावण्य, संयम, तेज, सौन्दर्य, प्रसन्नता, बुद्धि आदि इसी ओजकी विभूतियाँ हैं। अधिक मात्रामें वीर्यका नाश करनेवालोंमें ये विभूतियाँ नहीं रहतीं। यही कारण है कि हमारे शास्त्रकारोंने सन्तानोत्पत्तिके लिए

छोड़कर और किसी भी अवस्थामें वीर्यका नाश करनेकी आज्ञा नहीं दी है।

'वीर्यका स्थान'

वीर्य, सारे शरीरमें प्रसरित रहता है—इसके रहनेका कोई विशेष स्थान नहीं है। जिस प्रकार दूधमें मक्खन रहता है, उसी प्रकार शरीरमें वीर्य। जिस प्रकार दूधको मथनेसे मक्खन बाहर आ जाता है, उसी प्रकार रति करनेसे सारी शारीरिक इन्द्रियोंका मंथन होकर वीर्य अंडकोषमें जमा हो जाता है और 'उपस्थेन्द्रिय" द्वारा बाहर निकलता है।

'वीर्यमें कौनसे पदार्थ हैं?'

पश्चिमी विद्वानोंने 'सूक्ष्म-दर्शक यंत्र' द्वारा वीर्यका निरीक्षण करके पता लगाया है कि पुरुष-वीर्यमें एक प्रकारके अत्यन्त छोटे जन्तु होते हैं जो कि आँखोंसे दिखलायी नहीं पड़ते। ये जन्तु किसी बढ़िया यंत्रसे स्पष्ट दिखलायी पड़ते हैं। इन जन्तुओंमें संचालन शक्ति और स्त्री-कोषमें जाकर बच्चेका जीवन बनानेकी शक्ति होती है। पुरुष-वीर्य इसी प्रकारके जन्तुओंका समूह है। डाक्टर "ट्राल" का कहना है कि "अबतक स्पष्टतया यह बात नहीं मालूम हो सकी है। वीर्यकी बनावट जहाँतक रासायनिक क्रियासे सम्बन्ध है, उसके बिषयमें मैं केवल अपना अभिप्राय ही देना उचित समझता हूँ कि प्राण-तत्व (Vital) और

रासायनिक पृथक्करणके तरीकोंमें कोई प्राकृतिक सम्बन्ध नहीं है। रसायन-शास्त्र (Chemistry) केवल इतना ही बतलाता है कि पृथक्करणके बाद शेष क्या रहा।......सूक्ष्म-दर्शक-यंत्रसे मालूम होता है कि पुरुष-वीर्यके ये सूक्ष्म जन्तु ही स्त्री-कोषको गर्भ रूपमें परिणत करनेवाले हैं।" इन जन्तुओंको नीचे लिखे नामोंसे पुकारा जाता है:—

१—स्परमेटोजा (Spermatoza)

२—सेमिनल फिलेमेण्ट (Seminal Filement)

३—जूस्पर्मस (Zoosperms)

४—सेमिनल एनेमल्क्यूल्स (Seminal Anamulcules)

५—स्परमेटोजोएड्स (Spermatozoeds)

इसके अतिरिक्त बैनर (wajner) आदि विद्वानोंने पुरुष-वीर्यमें सेमिनल ग्रेन्यूल्स (Seminal Granules) नामके दाने भी मालूम किये हैं जो कि सेमिनल फिलेमेण्ट (वीर्य-कीटों) की अपेक्षा बहुत कम होते हैं। शुद्ध-वीर्य, वीर्य-कीट और वीर्यके दानोंसे बना हुआ होता है। कालिकर (Kalliker के मतानुसार पुरुष-वीर्यका प्रत्येक जन्तु $\frac{1}{600}$ इंचका होता है। इन जन्तुओंका अगला भाग चिपटा और गोला होता है; पिछला भाग लम्बा और पतला होता है। सिरकी लम्बाई $\frac{1}{10000}$—इंच और चौड़ाई भी उतनी ही होती है। इनके सिरकी जड़में एक बहुत ही नाजुक और

बारीक तार (Fieement) भी होता है, जो इसके आकारसे तिगुना-चौगुना लम्बा होता है। यह झिल्लीसे ढँका हुआ होता है। इस जन्तुका सिर भी इसी झिल्लीसे ढँका रहता है। डाक्टरोंने इन जन्तुओंको सजीव माना है। जिस प्रकार मेंढकके नवजात बच्चे पानीमें इधर-उधर अपनी दुमको लहराते हुए तैरते हैं, ठीक उसी प्रकार वीर्य-कीट भी वीर्यमें बिचरते हैं। इनकी गति सदा आगे-की ओर होती है। इन्हें वीर्य-कोषकी गर्मीके समान काँचकी किसी गरम शीशीमें यदि डाल दिया जाय, तो ये वहाँ २४ घण्टेसे ७२ घण्टेतक जीवित रह सकते हैं। इसी प्रकारकी पिचकारीद्वारा गर्भ धारण कराया जा सकता है। मृतक मनुष्यके शुक्राशयमें ये वीर्यकीट कभी-कभी २४ घण्टेतक जीवित देखे गये हैं। जब ये कीड़े मर जाते हैं, तब इनकी दुम सीधी हो जाती है।

——o——

स्त्री-ब्रह्मचर्य
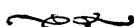
'स्त्री और पुरुष'

जिस प्रकार पुरुषको ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए, उसी प्रकार स्त्रियोंको भी। बहुतोंका कथन है कि शास्त्रमें शास्त्रकारोंने स्त्रियोंको ब्रह्मचर्य धारण करके विद्याध्ययन करनेकी आज्ञा नहीं दी है। किन्तु ऐसे लोगोंका कथन भूलसे खाली नहीं कहा जा सकता। पहले यह देखना चाहिए कि स्त्री है क्या वस्तु। नलिनी बाबूने लिखा है स्त्री और पुरुष दोनों एक ही सत्तासे उत्पन्न हुए हैं और दोनों उसीके प्रतिरूप हैं। दोनोंकी एकता और समता सबको स्वीकार करनी पड़ेगी। यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि एक ही सत्ताके रूप होते हुए भी कृया और धर्मके भेदसे उनमें भेद-भाव कहाँसे आ गया है? दोनों भिन्न-भिन्न कैसे होगये हैं? स्त्री तथा पुरुषकी साधना और शिक्षाका एक ही उद्देश्य है अर्थात् मनुष्यत्वका उद्बोधन तथा उसकी सार्थकता। फिर भी दोनोंका गन्तव्य मार्ग एक नहीं। संसारकी एकता जिस तरह सत्य है, उसकी अनेकता या विचित्रता भी उसी तरह सत्य है—बल्कि हम तो एक तरहसे यही कहेंगे कि इस संसारकी विचित्रताने ही संसारको संसार कहलानेके योग्य बनाया है। पार्थक्य और विशेषताके बीच ही इस विश्वका रहस्य है और उसकी सार्थकता भी

इसीमें है। कभी-कभी हम समूचे विश्व-ब्रह्मांडको एक मान लेते हैं। उसमें हमारा अभिप्राय एकताकी उपलब्धि नहीं रहती, बल्कि हमें उसमें कामकी सुविधा दिखायी पड़ती है। पर इससे न तो सृष्टिकी मर्यादा ही रक्षित होती है और न सृष्टिके गूढ़ रहस्यकी सिद्धि ही होती है। इसीलिए हमारे हृदयमें यह प्रश्न उठता है कि स्त्री और पुरुषकी विशेषता कहाँ है। मनुष्यसत्ताका कौन-सा भाव और कौन-सा अंग पुरुष है तथा कौन भाव और कौन-सा अंग स्त्री है।

गम्भीरताके साथ विचार करनेपर मालूम होता है कि मनुष्य-सत्ताके दो भाग हैं;—ज्ञान और शक्ति। मनुष्य पहले तो जानना चाहता है और पीछे कहना चाहता है। इन दोनोंके सिवा मनुष्य-सत्ताका एक भाग और है, जिसे हम प्रेम कहते हैं। यही प्रेम दोनों का समान आश्रय-स्थान है; दोनों ही इसी प्रेममें आश्रय लेते हैं। नीतिकारने कहा है,—"आनन्दात् हि जायन्ते ईमानि।" ज्ञानका प्रकाश मन या बुद्धिद्वारा होता है और इसका केन्द्र है मस्तिष्क तथा शक्तिका प्रकाश प्राणोंमें है; इससे हम इस परिणामपर पहुँचते हैं कि पुरुष, ज्ञान और स्त्री, शक्ति है। पुरुषमें सांख्य-शास्त्र-में कथित भाव आसानीसे अभिव्यक्त हो जाते हैं, किन्तु स्त्री स्वयं प्रवृत्ति अर्थात् निर्माता है। संसारके जीवनकी सामग्रियोंपर जितना अधिकार स्त्रीका है उतना पुरुषका नहीं। मस्तिष्क अथवा ज्ञान बुद्धिद्वारा वस्तुओंका ज्ञान भले ही प्राप्त कर लिया जाय, पर उसे चलानेके लिए, उसके प्रयोगके लिए, शक्तिकी आवश्यकता है। इस

काममें स्त्रीकी योग्यता सबसे बढ़कर है। वस्तुओंको सजानेमें, उन्हें यथा-स्थान रखनेमें स्त्रीकी योग्यता बहुत अधिक होती है। देखनेसे ज्ञात होता है कि वस्तुओंके साथ उसका स्वाभाविक ही अद्भुत प्रेम है और उसके हाथमें पड़ते ही वस्तुओंकी सजावट इस तरह हो जाती है मानो किसीने उन सबपर जादू कर दिया हो। पुरुष अधिकसे अधिक यह कर सकता है कि वस्तुका निरीक्षण करके उनको सोच-समझकर उनकी रचना तथा सजावटकी हिकमत बतला सकता है, पर स्वयं उसे उतनी योग्यताके साथ कर नहीं सकता। यदि वह उसे करता भी है तो उसे वह काम पहाड़-सा मालूम होता है। ऐसे कामोंके करनेमें उसे अपना पूरा बल लगाना पड़ता है। यही कारण है कि पुरुषके शरीरकी रचना भी भिन्न प्रकारकी हुई है। मोटी हड्डी, स्थूल मांस, कठोर शरीर; मन तथा बुद्धिके संसारसे होकर जिस समय वह कर्मक्षेत्रमें लौटता है, उस समय उसे इन यन्त्रोंसे सहायता मिलती है। पर स्त्रीको इन सबसे काम नहीं। वह किसी भी वस्तुका संचालन शारीरिक बलद्वारा न करके अपनी सहज चातुरीसे करती है। पुरुषके शरीरमें ताकत भले ही अधिक हो, पर स्त्रीकी शक्ति उससे बलवती होती है। यह बात स्वयं सिद्ध है। इसमें न तो अध्यात्मका पाखंड है और न किसी कविकी सौम्य कल्पनाका जोर। पुरुष-शरीरमें बलकी बहुलता होती है और स्त्री-शरीरमें शक्तिकी अनवरत धारा बहती रहती है। यही कारण है कि स्त्रीको बाहरी बलका सहारा लेनेकी आवश्यकता

नहीं पड़ती। पुरुषमें चञ्चलता अधिक होती है और स्त्रीमें धीरता और गम्भीरता।

कहनेका तात्पर्य यह है कि यह विश्व स्त्री और पुरुषरूपी दो भागोंमें विभक्त है। पर इसका यह अर्थ नहीं कि दोनों दो ओर, एक दूसरेसे भिन्न होकर रहते हैं। पुरुष और स्त्री ये दोनों भाग वैसे ही हैं, जैसे किसी गोल वस्तुको बीचसे काटकर किये हुए दो भाग होते हैं। कुछ लोगोंकी धारणा है कि, समाजमें केवल एक स्थानपर आकर स्त्री और पुरुषका साधारण संयोग होता है, नहीं तो वे हर तरहसे एक दूसरेसे भिन्न हैं। इसी धारणाके फलस्वरूप पुरुष-स्त्रीके बीच इतनी विषमता उत्पन्न हो गयी है और लोग कहने लग गये हैं कि स्त्रीको ब्रह्मचर्य धारण करने और वेद पढ़नेका अधिकार नहीं है। पर वास्तवमें यदि विचार करके देखा जाय तो स्त्रियोंको वह सब अधिकार हैं जो पुरुषों को। वैदिककालमें स्त्रियाँ पुरुषोंके समान वेदज्ञा होती थीं। उस समय स्त्रियाँ ऋषिपदको प्राप्त करती थीं और यज्ञ करती थीं। घोषा, लोपामुद्रा, ममता, अपाला, सूर्या, गोधा, इन्द्राणी, विश्वपारा, सार्पराज्ञी आदि अनेक देवियाँ ऋषि हो गयी हैं। विश्वपारा तो ऋषि होनेके अतिरिक्त ऋत्विजका काम भी करती थी। इतना नहीं, उस समय तो स्त्रियाँ युद्धक्षेत्रमें भी अपने पतियोंके साथ रहती थीं। विशपरा खेलराजकी स्त्रीने युद्धमें अपनी टांग खो दी थी। उसके स्थानपर अश्विनीकुमारोंने लोहेकी टांग जोड़ दी थी। अ० १।११२।१०। मुद्गल ऋषिकी स्त्री

इन्द्रसेनाने अपने पतिके घरमें आये हुए गौओंके चोरोंका पीछा किया था और स्वयं रथ हाँककर डाकुओंसे लड़कर गौओंको वापस ले आयी थी। (ऋ० १२०।)

वेदके पश्चात् ब्राह्मणकालमें भी मैत्रेयी, गार्गी, सलभा आदि बहुत-सी ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ हुई थीं। उस समय स्त्रियाँ आचार्य द्वारा यज्ञोपवीत धारण करती थीं और ब्रह्मचारिणी रहकर वेदाध्ययन करती थीं। आश्वालायन श्रौतसूत्रमें लिखा है:—

"समानं ब्रह्मचर्यम् ।"

पुत्र और पुत्री दोनोंके लिए ब्रह्मचर्यकी समान आवश्यकता है।

गोभिल गृह्यसूत्रमें विवाहके पूर्व कन्याओंका यज्ञोपवीत धारण करनेका आवश्यक विधान किया गया है। उसमें लिखा है:—

"प्रावृता यज्ञोपवीतिनीमभ्युदानयन् जयेतसोमोददात् गन्धर्वाय—इति।"

कन्याका पिता कन्याको उत्तम वस्त्र और यज्ञोपवीत धारण कराकर विवाहार्थ दान करनेके लिए लावे और मन्त्र पढ़े 'सोमेदान् गन्धर्वाय' इत्यादि (अथर्व०) यमस्मृतिकार ने लिखा है:—

सुराकल्पेषु नारीणां मौञ्जीबन्धन भिष्यते।
अध्यापनं च वेदस्य साविश्री वाचनं तथा।"

"प्राचीनकल्पोंमें या प्राचीनकालमें स्त्रियोंका उपनयन होता था। उसमें वे मूँजकी मेखला पहनती थीं। वेदका अध्ययन करती थीं और गायत्रीका उपदेश प्राप्त करती थीं।

हारीतने अपनी स्मृतिमें लिखा है:—

"द्विविधाः स्त्रियः ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च । तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयन मग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भैक्ष्यचर्येति। सद्योवधूनामुपनयनं कृत्वा विवाहः कार्य इति ।"

स्त्रियाँ दो तरहकी होती हैं ब्रह्मवादिनी और सद्योवधू । ब्रह्मवादिनी उपनयन, अग्निहोत्र, वेदाध्ययन और अपने गृहमें भिक्षाका आचरण करे । सद्योवधू* का उपनयनके अनन्तर ही विवाह कर दिया जाय ।

महाभाष्यकार पातञ्जलिने अपने व्याकरण महाभाष्यमें 'शातपथिकी, काशकृत्स्ना, उपाध्याया, आचार्याणी' इत्यादि प्रयोगसिद्ध किये हैं, जिनका अर्थ यह है कि शतपथ ब्राह्मणको पढ़नेवाली स्त्री, कृश्न शास्त्रको पढ़नेवाली स्त्री, उपाध्यायका कार्य करनेवाली स्त्री, आचार्यका कार्य करनेवाली स्त्री । ये सब शब्द तभी हो सकते हैं, जब कि ऐसा कार्य करनेवाली स्त्रियाँ होंगी । अस्तु,

ऊपरके अवतरणोंसे यह सिद्ध है कि स्त्रियोंको ब्रह्मचर्य धारण करने और वेदाध्ययन करनेका वैसा ही अधिकार है जैसा पुरुषों को । उनका यह सब अधिकार बादके शास्त्रकारों या कानून बनानेवालोंने छीना हैं ।

---

* सद्योवधू वे हैं जो शीघ्र ही अपने अभीष्ट वरकी अभिलाषा करती थीं । पंडित अच्युतरावने जीवन्मुक्ति विवेककी टीकामें लिखा है:— 'सद्योवध्वः शीघ्रं स्वभीष्ट वरकामुक्यः ।'

स्त्री-ब्रह्मचर्य की अवधि

स्त्री-ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमें अधिक न लिखकर वेदका एक ही प्रमाण दे देना यथेष्ट है:—

"ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दतेपतिम्"

—अथर्ववेद।

अर्थात्—ब्रह्मचर्यका पालन करनेके बाद कन्या अपने योग्य युवक-पतिको प्राप्त करती है।

यदि हम अपनी बुद्धिसे विचार करते हैं, तब भी यह बात उचित जँचती है कि पुरुष-स्त्रीको ईश्वरकी ओरसे समान अधिकार है—वेद पढ़नेका। बड़े आश्चर्यकी बात है कि जिस स्त्री-समाजपर पुरुष-जातिकी उन्नति और अवनित निर्भर है उसे ही लोग वैदिक ज्ञान प्राप्त करनेका अधिकार नहीं देते। शास्त्रकारोंका वचन है:— "नास्ति मातृ समोगुरुः" यानी माताके समान गुरु संसारमें कोई नहीं है। सोचनेकी बात है कि यदि माता ही मूर्ख रहेगी तो उसकी सन्तान सतोगुणी और विद्वान कैसे होगी?

अब यह देखना चाहिए कि स्त्रियोंके ब्रह्मचर्यका काल क्या है। स्त्री-शरीरमें साधारणतया ११-१२ वर्षकी अवस्थामें रजकी उत्पत्ति होती है और वह रज सोलह वर्षकी अवस्थामें परिपक्व हो जाता है। इसलिए रजके उत्पन्न होनेके समयसे लेकर उसके परिपक्व होनेके समयतक उन्हें ब्रह्मचारिणी रहकर विद्याभ्यास करना चाहिए। उसे योग्य पतिके साथ यानी २५ वर्षकी अवस्थाके पढ़े-लिखे पुरुषके

साथ—विवाह करके गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना उचित है। यहाँपर यह ध्यान रहे कि पुरुष-शरीरमें वीर्यकी जितनी परिपक्वता २५ वर्ष-की अवस्थामें होती है। स्त्री-शरीरमें रजकी उतनी परिपक्वता १६ वर्षकी अवस्थामें हो जाती है। इससे कम अवस्था में पुरुष-संयोग होनेसे स्त्रियाँ कमजोर हो जाती हैं और साथ ही सन्तान उत्पन्न होनेपर वह सन्तान छोटी ही अवस्थामें मर जाती है। ऐसी स्त्रियाँ आजीवन रुग्णा रहती हैं और संसार-सुख उन्हें सदाके लिए स्वप्न हो जाता है।

स्त्री-रज

वीर्य स्त्रियोंमें भी होता है, परन्तु सन्तानोत्पत्ति में उससे कोई सहायता नहीं मिलती। एक आचार्यने लिखा है:—

> यदानार्यावुपेयातां वृषस्यंतौकथंचन ।
> मुञ्चन्त्यौशुक्र मन्योन्य मनस्थितत्र जायते ॥

अर्थात्—स्त्रियाँ काम-पीड़िता होकर आपस में मैथुन करें और उस समय अन्योन्य वीर्य छोड़ें तो गर्भ रह जाता है, लेकिन सन्तान बिना हड्डीकी उत्पन्न होती है।

जो भी हो, यहाँपर केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि जिस प्रकार पुरुष-शरीरमें आहार की हुई वस्तुसे वीर्य तैयार होता है, उसी प्रकार स्त्री-शरीरमें आहार की हुई वस्तु से रज तैयार होता है। यह रज स्त्री-शरीर का सार है। जो स्त्री पुरुष-संयोगसे या अन्य प्रकारसे जितना ही अधिक रज-नाश करती है, वह उतनी

ही निर्बल और अल्पायु हो जाती है। स्त्री-जीवनके लिए इसकी रक्षा करना नितान्त आवश्यक है।

पुरुषोंकी भाँति स्त्रियोंमें भी अंडकोष होते हैं। फर्क इतना ही कि पुरुषोंके अंडकोष बाहरकी तरफ होते हैं और स्त्रियोंके भीतरकी ओर। ये दोनों गर्भाशयके दहिने-बाँएँ रहते हैं। पुरुष-वीर्यकी भाँति स्त्री-रजमें भी जन्तु होते हैं। किन्तु इनका आकार पुरुषके वीर्य-जन्तुओंसे तिगुना अर्थात् $\frac{१}{२००}$ इंचके बराबर होता है। ये अंडेके आकारके होते हैं। जिस प्रकार अंडेके भीतर सफेदी और जर्दी होती है, उसी प्रकार इन जन्तुओंमें न्यूक्लियस (Nucleus) और प्रोटोप्लाज्म (Protoplasm) नामके दो पदार्थ होते हैं।

शुद्ध वीर्य और रजकी परख

सन्तान उत्पन्न करनेके लिए शुद्ध वीर्य, शुद्ध गर्भाशय और शुद्ध रजकी नितान्त आवश्यकता है। यदि ये शुद्ध न हों—विकार युक्त हो तो गर्भ रहना कठिन हो जाता है। यदि गर्भ रह भी जाता है तो सन्तान रोगी, कमजोर और अल्पायु होती है। पहले हम शुद्ध वीर्यकी पहचान बतलाते हैं। जो वीर्य सफेद हो न बहुत पतला हो और न गाढ़ा, चिकना हो, जिसमें शहदके समान गन्ध हो, जिसके स्खलित होने पर किसी प्रकारकी वेदना न हो और जो पानीमें डालनेपर डूब न जाय उसे शुद्ध वीर्य समझना चाहिए।

यदि इससे भिन्न प्रकारके लक्षण पाये जायँ तो समझना चाहिए कि वीर्यमें विकार है, गर्भाधान करनेके योग्य नहीं है। फिर किसी अनुभवी मनुष्यसे वीर्यकी शुद्धिके लिए उपचार कराना चाहिए।

यह वीर्य पित्त, कफ, वात और रक्त आदिके प्रकोपसे दूषित होता है। सुश्रुतसंहितामें दूषित वीर्यकी यह पहचान लिखी है:—

पित्त-दूषित वीर्य—इसमें वीर्यका रंग नीला और जर्द होता है तथा स्खलित होते समय जलन होती है।

कफ-दूषित वीर्य—यदि वीर्यका रंग सफेद हो किन्तु कुछ जर्दी लिए हुए हो तथा स्खलित होते समय हलकीसी वेदना (पीड़ा) हो तो उसे कफ-दूषित समझना चाहिए।

वात-दूषित वीर्य—यदि कुछ सुर्खी और कालिमा हो तथा रुक-रुककर स्खलित हो तो वात दूषित समझना चाहिए।

रक्त-दूषित वीर्य—यह मटमैला और सुर्खी लिए हुए होता है और इसमें मुर्देकीसी गंध होती है। स्खलित होते समय जलन होती है तथा एक बारमें बहुतसा वीर्य निकल जाता है।

कफ-वात-मिश्रित दोष—यह दोष हो जानेपर वीर्यमें गाठें पड़ जाती हैं। इसी प्रकार कफ और पित्तका दोष होनेपर वीर्य मवाद (पीप) के समान होकर दुर्गन्ध-युक्त हो जाता है। जब वीर्यमें त्रिदोष होता है, तब उसमें मल-मूत्रकीसी बू आने लगती है तथा उसमें इनका कुछ अंश भी आ जाता है।

अब शुद्ध रजकी पहचान देखिये। जो रज खरगोशके खूनके

समान अथवा लाखके रंगके सदृश हो, जिसमें रँगा हुआ वस्त्र काले-पोले रंगका न हो—सुर्ख रहे, और धोनेपर बिलकुल साफ हो जाय उसे शुद्ध रज समझना चाहिए। रजके दूषित होनेके वे ही कारण हैं जो वीर्य्यके दूषित होनके हैं।

रजोदर्शन

इसका दूसरा नाम है मासिकधर्म। भारतकी स्त्रियाँ साधारणतया १२—१३ वर्षकी अवस्थामें ऋतुमती होती हैं। गर्म प्रान्तोंमें इससे कुछ पहले और ठण्ढे प्रान्तोंमें इससे कुछ अधिक समयमें स्त्रियाँ ऋतुमती होती हैं। किन्तु दुर्भाग्यकी बात है कि जहाँ शास्त्रकारोंने १६ वर्षके पहले गर्भाधान करना निषेध किया है, वहाँ ८-१० वर्षकी अवस्थामें ही कितनी स्त्रियोंको गर्भ रह जाता है। बहुतसे लोगोंको यह पढ़कर आश्चर्य होगा; पर वास्तवमें यह सत्य बात है। भारतभक्त मि० सी० एफ० एड्रूजने प्रवासी भारतीयोंकी दुर्दशाका दिग्दर्शन कराते हुए लिखा था कि वहाँ एक नौ सालकी लड़की गर्भिणी थी। उस समय इन पंक्तियोंके लेखकको भी पढ़कर आश्चर्य हुआ था; यहाँतक कि यदि उसे मि० एड्रूज महोदय सरीखे विश्वसनीय व्यक्तिके स्थानपर किसी दूसरेने लिखा होता तो किसी प्रकार विश्वास ही न होता। किन्तु समयके फेरसे अब तो भारतमें भी ऐसी कई घटनाएँ सुननेमें आ गयीं और कभी-कभी समाचारपत्रोंमें भी पढ़नेमें आया करती हैं। इसका मूल कारण सामाजिक बुराई है। स्त्रियों तथा पुरुषोंकी अज्ञानताके कारण ही

यह अनर्थ होता है। बात यह है कि छोटी-छोटी कन्याओंको नीच पुरुष ऐसी बातें सिखलाने लगते हैं और बड़ी उम्रकी स्त्रियाँ भी कन्याओंके सामने इस तरहकी गोप्य बातें करने लगती हैं, जिसका फल यह होता है कि लड़कियाँ उचित अवस्थासे पहले ही रजस्वला होने लगती हैं और कुसंगतिमें पड़कर दुराचारिणी हो जाती हैं।

महीनेमें एक बार स्त्रियोंके गुह्यस्थानसे एक प्रकारका रक्त निकलता है, उसीको आर्त्तव या ऋतु कहते हैं। इस रक्तका निकलना ३ से ६ दिनतक जारी रहता है। यदि इसके बाद भी रजका निकलना बन्द न हो तो मासिकधर्ममें दोष समझना चाहिए। यह क्यों निकलता है, यह जाननेके लिए पाठक-पाठिकाओंका उत्सुक होना स्वाभाविक है। बात यह है कि स्वाभाविक नियमानुसार १२-१३ वर्षकी अवस्थामें बालिकाओंके गर्भाशयके भीतर रक्तका संचार होना शुरू होता है। इन दिनों गर्भाशयका मुख कुछ-कुछ खुल जाता है और रक्त योनि-मार्गसे होकर बाहर निकलता है। इसको मासिकधर्म कहते हैं, क्योंकि यह हर महीनेमें होता है। यह लाल रंगका और तरल होता है। इसका पहले-पहल निकलना रजोदर्शन कहलाता है और बाद उसीका नाम ऋतु, आर्त्तव, रजस्वला या मासिकधर्म हो जाता है। यहाँपर यह जान लेना आवश्यक है कि गर्भाशयका योनिसे क्या सम्बन्ध है, क्योंकि यह जाने बिना इस बातका समझना असम्भव हो जायगा कि गर्भाशयसे वह आर्त्तव किस प्रकार बाहर निकलता है।

गर्भाशय वस्ति-गह्वरमें रहता है। इसके सामने मूत्राशय और पीछे मलाशय होता है। इसका आकार तीन इञ्च लम्बा दो इञ्च चौड़ा और एक इञ्च मोटा होता है। एक बार गर्भ रह चुकनेपर इससे किंचित् बड़ा आकार हो जाता है। गर्भाशयका वजन ढाई तोलेसे साढ़े तीन तोलेतक होता है। इसका ऊपरी भाग मोटा होता है और नीचेका भाग पतला। नीचेका भाग योनिसे जुटा रहता है। नीचेके भागमें एक छिद्र होता है जो गर्भाशयका वहिर्मुख कहलाता है। गर्भाशय भीतरसे पोला होता है। उसके अन्दर बहुत कम जगह रहती है। गर्भस्थिति होनेपर, वह धीरे-धीरे बड़ा होवा है और तीसरे मास उसका ऊपरी भाग पेटकी दीवार टटोलकर मालूम किया जा सकता है।

इससे जाना जा सकता है कि गर्भाशयसे योनिका कितना निकट सम्बन्ध है। रजो-दर्शन इस बातकी सूचना देता है कि कन्याके यौवनकालका अब आरम्भ हो गया। उक्त अवस्थासे लेकर ४५—५० वर्षकी आयुतक स्त्रियोंका मासिकधर्म प्रतिमास जारी रहता है, बाद बन्द हो जाता है। फिर स्त्रियाँ गर्भ धारण नहीं कर सकतीं। इसे रजो-निवृत्ति कहते हैं। जब गर्भ-स्थिति हो जाती है, तब मासिक-धर्म बन्द हो जाता है। कितनी ही स्त्रियोंको गर्भ-स्थितिमें भी मासिकधर्म होता रहता है, पर ऐसा बहुत कम देखनेमें आता है।

हम पहले ही कह आये हैं कि मासिक धर्म में ऋतु-स्रावी

अवधि कमसे कम १ दिन और अधिकसे अधिक ६ दिन है। तथा इससे अधिक स्रावका होना रोगका लक्षण है। किन्तु बहुधा ३-४ दिन ही स्राव जारी रहता है। यह मासिकधर्म रजो-दर्शन होनेके बाद २८—३० दिनपर बराबर होता रहता है। अधिक मैथुनसे अथवा रोगी शरीर होनेसे आर्त्तव आगे पीछे भी होता है, किन्तु यह बड़ा ही हानिकारक है। मासिक-धर्म ठीक महीनेभर बाद होना तन्दुरुस्तीका लक्षण है, यों दो-एक दिन आगा-पीछा हो जाय तो बात दूसरी है। मासिक-धर्मकी गड़बड़ीसे गर्भाशय भी विकार-युक्त हो जाता है। अतः ऐसी अवस्थामें उपचार करना बहुत ही आवश्यक है। बहुत-सी स्त्रियोंको मासिक-धर्मके समय कुछ पीड़ा होती है। यह भी रोगका लक्षण है। मासिक-धर्ममें जरा भी वेदना नहीं होनी चाहिए। बहुधा स्त्रियाँ मूर्खताके कारण इस बातको जानती ही नहीं कि मासिक-धर्मका निश्चित समयपर न होना तथा उस समय एक प्रकारकी वेदनाका होना भी कोई रोग है। और जो जानती भी हैं, वे इस बातको प्रकट करनेमें संकोच करती हैं। किन्तु यह बहुत बुरी बात है। मासिक-धर्ममें जरा भी गड़बड़ी होनेपर उन्हें फौरन प्रकट कर देना उचित है और फिर सावधानीके साथ किसी अनुभवी व्यक्तिकी दवासे उस गड़बड़ीको दूर कर देना उनका कर्त्तव्य है। यदि इस दोषको बहुत जल्द नहीं हटाया जाता तो स्त्रीकी तन्दुरुस्ती आजीवनके लिए नष्ट हो जाती है। फिर तो दुनियाँ उनके मासिक-धर्मकी खराबीको जान जाती है—जिसे बतलानेमें वे संकोच करती

थीं, और रोग भी पुराना हो जानेपर बड़ी कठिनाईसे अच्छा होता है। इसलिए प्रत्येक स्त्रीका कर्त्तव्य है कि इस बातकी शिकायत मालूम होनेपर वह उपचार करनेमें जरा भी विलम्ब न करे। इस बातको अनुचित लज्जाके कारण छिपाना कदापि उचित नहीं। रोगमें लज्जा किस बातकी? भला जिस बातके ऊपर जीवनका सारा आनन्द, सुख और शान्ति निर्भर है, उसको लज्जाके कारण छिपाकर जीवनको चौपट करके जन्मभर कष्ट भोगना मूर्खता नहीं तो और क्या है? शरीरमें व्याधिको पाल-पोसकर बढ़ाना ही मूर्खता है। शत्रुको बढ़ाना उचित नहीं। जिस स्त्रीके मासिक-धर्ममें अनियमितता होती है यानी कभी दस-बीस दिन महीनाभर अवधिके आगे होता है और कभी दस-पाँच दिन अवधिके पहले, उस स्त्रीसे पैदा होनेवाली सन्तान कभी भी जीवित नहीं रहती—अवश्य थोड़ी अवस्थामें ही मर जाती है।

स्मरण रहे कि सन्तान पैदा करनेमें मासिक-धर्मकी नियमितता प्रधान चीज है। मासिक-धर्ममें स्त्रियोंके शरीरका विकार-सा निकल जाता है। ठीक समयपर रजस्वला होनेवाली स्त्रियोंका चित्त हमेशा प्रसन्न रहता है और महीने-महीने स्राव बन्द होनेके बाद तो उनका काया-कल्पसा हो जाता है। उस समय उनके चेहरेपर स्वाभाविक ही रौनक आ जाती है, शरीर हल्का हो जाता है, चित्तमें प्रसन्नता-का समावेश हो जाता है और हृदयमें अपूर्व शान्तिका स्रोत बहने लगता है। इसीसे रजो-धर्म होनेपर स्त्रियोंको क्या करना चाहिए

और क्या नहीं इस बातकी महर्षियोंने पूरी ताकीद की है, जो कि आगे चलकर बतलायी जायगी। यह कोई ऐसी-वैसी चीज नहीं है कि इसपर ध्यान न दिया जाय।

यह आर्त्तव रक्तमय स्राव है और गर्भाशयसे निकलता है। यह रक्तकी भाँति शीघ्र नहीं जम सकता। इसका रंग लाल और कुछ काला लिए होता है। आर्त्तवका परिमाण सब स्त्रियोंमें समान नहीं होता। अधिकतर इसका परिमाण एक छटाँकसे चार छटाँकतक होता है। वैद्यक ग्रन्थोंने एक दिनमें इससे अधिक या कम स्रावका होना भी रोगका चिह्न बतलाया है। ऋतुमती रहनेतक प्रायः स्त्रियोंकी शारीरिक और मानसिक दशामें परिवर्त्तन हुआ करता है; आलस्य और अरुचिकी अधिकता रहती है; कमर, नितम्ब और पेड़ूमें भारीपन रहता है।

——०——

द्वितीय समुल्लास
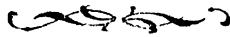
गृहस्थीमें ब्रह्मचर्य

पीछे लिखी गयी अवस्थातक स्त्री-पुरुषको ठीक-ठीक ब्रह्मचर्यका पालन और विद्याध्ययन कर लेनेके बाद गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिए। किन्तु गृहस्थीमें रहकर भी दोनोंको गृहस्थ-ब्रह्मचारीके रूपमें रहना चाहिए। जो मनुष्य आनन्दकी इच्छासे स्त्री-प्रसंग न करके सन्तानोत्पत्तिके लिए गर्भाधानका समय आनेपर ही अपने कर्त्तव्यका पालन करता है, वह गृहस्थ-ब्रह्मचारी कहलाता है। गर्भाधानका समय ऋतुकालके बाद आता है—जिसका उल्लेख आगे चलकर किया जायगा। अतः महीनेभरमें एक बारके सिवा स्त्री-प्रसंग नहीं करना चाहिए।

जो मनुष्य गृहस्थीमें रहकर भी अपनी इन्द्रियोंके वशमें नहीं रहता, अपने कर्त्तव्योंपर सदा-सर्वदा ध्यान रखता है, साहसके साथ अपना काम करता है, अपने मान-मर्यादाकी रक्षा करता है, बुद्धिको सुन्दर विचारोंमें लगा रखता है, किसीका अहित नहीं करता,

जीवमात्रपर दयाभाव रखता है, दया और प्रेमको अपना भूषण बनाये रहता है, केवल सन्तानकी कामनासे शास्त्र-विहित रीतिसे स्त्री-समागम करता है, धर्मकी ओर प्रवृत्ति रखता है, वही सच्चा और उत्तम गृहस्थ-ब्रह्मचारी है। किन्तु जो मनुष्य इसके विपरीत आचरण करता है, स्त्रीको भोगकी सामग्री बना लेता है, वह मनुष्य दुराचारी है, सच्चा गृहस्थ नहीं,। स्त्री विलासकी सामग्री नहीं है बल्कि वह पुरुष-शरीरका आधा अङ्ग है। इसीसे आचार्योंने पत्नीको अर्द्धाङ्गिनी नामसे सम्बोधित किया है। विवाह मानवी सृष्टि चलानेके लिए एक धार्मिक कर्म है। इसका विधिवत पालन करनेवाला मनुष्य गृहस्थीका काम-काज करता हुआ भी ब्रह्मचारी हो है। महाराज मनुजीने लिखा है:—

"ब्रह्मचार्येव भवति यत्रतत्राश्रमे वसन्।"

अर्थात्—ऋतुकालकी वर्जित रात्रियोंको छोड़कर स्त्री-सहवास करनेवाला पुरुष चाहे जिस आश्रममें रहे, ब्रह्मचारी ही है। तात्पर्य यह कि केवल महीने-महीनेपर ही स्त्री-प्रसंग करना उचित है और इसके भीतर स्त्री-प्रसंग करनेवाले लोग न तो सच्चे गृहस्थ हैं और न वे कभी सुखी ही रह सकते हैं। आजकल हजारमें नौ सौ निन्यानवे नवयुवक प्रतिदिन किसी-न-किसी तरह वीर्य नाश करते हैं। कोई स्त्री-प्रसंग करके वीर्य क्षीण करता है, कोई हस्त-मैथुन करके; कोई इन्हीं बातोंका चिन्तन करके मानसिक व्यभिचारद्वारा वीर्य नाश करता है तो कोई स्वप्नदोषमें ही। जो लोग इन दोषोंसे

बचे भी रहते हैं—अव्वल तो उनकी संख्या ही अत्यल्प है और जो है भी उनमें अधिकांश लोगोंको धातुक्षीणताका रोग घेरे हुए है। स्त्रियाँ भी इसका कोई विशेष खयाल नहीं रखतीं। उनका धर्म है कि वे अपने पतियोंको ऐसे अत्याचारसे बचनेके लिए सदा सावधान करती रहें। यह भार स्त्रियोंपर इसलिए दिया जा रहा है कि पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंमें शान्ति-गुण अधिक मात्रामें होता है।

यहाँपर एक बातका उल्लेख करना आवश्यक है कि एक बारके विषयसे स्त्री-पुरुषकी कितनी शक्ति क्षीण हो जाती है वैद्यक-ग्रन्थोंमें लिखा है कि एक बार पुरुषका वीर्य एक पसर और स्त्रीका रज दो पसर नष्ट हो जाता है। यदि वीर्य और रज इससे कम मात्रामें गिरे तो समझना चाहिए कि यह दुराचार और निर्बलताका कुफल है। अब सोचनेकी बात है कि जो वीर्य और रज शरीरका राजा है, जिसपर जीवन स्थित है और जो बहुत ही कम मात्रामें तैयार होता है—जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, उसका एक बारमें इतनी अधिक मात्रामें शरीरसे बाहर निकल जाना कितना हानिकारक है। बड़े आश्चर्यकी बात है कि हम अपना ही घर फूँककर तमाशा देखते हैं; अपने जीवनरूपी वीर्यका नाश करनेमें ही आनन्द मानते हैं। जिसमें वास्तविक आनन्द है, जो सुखकी खास जड़ है, उसे तो हम भूल गये हैं और जिस कार्यके करनेसे हमारा सब हरण हो जाता है, उस कामको हम बड़ी तत्परताके साथ करते हैं और उसमें पूर्ण सुखका अनुभव करते हैं। वास्तविक आनन्द और सच्चा सुख वीर्य-

की रक्षामें है, नकि उसका नाश करनेमें जरा भी बुद्धि रखनेवाला मनुष्य इस बातको अच्छी तरह सोच सकता है कि जिस वीर्यके निकलनेमें इतना आनन्द मिलता है, उस वीर्यकी रक्षा करनेमें कितना अपूर्व आनन्द होगा; क्योंकि किसी वस्तुके खोने और सुरक्षित रखनेके आनन्दमें बहुत बड़ा अन्तर होता है, बल्कि यों कहना चाहिए कि किसी वस्तुका खो जाना दुःखकर है, पर वीर्यमें आनन्द ऐसा ओत-प्रोत है कि उसके खोनेमें भी आनन्द ही प्रतीत होता है। इसलिए हमारा कर्त्तव्य है कि हम गृहस्थीमें रहकर सच्चे गृहस्थ बनें और असली सुखका भोग करें।

——o——

वैवाहिक सम्बन्ध

विवाह एक पवित्र एवं उत्तरदायित्व-पूर्ण कार्य है। स्त्री-पुरुषका मेल विषय-भोगके लिए नहीं है, इसका कोई गूढ़ रहस्य है। क्योंकि जब वीर्य क्षीणतासे इतनी अधिक हानि होती है, तो फिर विषय-भोगके लिए तो स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध होना महान दुःखदायक सिद्ध होता है। पर वास्तवमें यह बात नहीं है। विवाह एक स्वर्गीय पदार्थ है। जबतक विवाह नहीं होता, तबतक स्त्री और पुरुषका शरीर आधा रहता है। दोनोंके मिलनेपर ही पूरा एक शरीर बनता है, यह शास्त्रकारोंका वचन है। विवाहसे ही गृहस्थाश्रमका आरम्भ होता है। इस रीतिसे दो आत्माओं या दो हृदयोंके सम्मेलनसे, एक पूर्ण मनुष्य-रूप बनता है। यही जीवात्माका पहला योग है। स्वार्थी मनुष्यको निःस्वार्थी और परोपकारी बनानेका यह सबसे उत्तम उपाय है। यदि गम्भीरता-पूर्वक समाजपर दृष्टि डाली जाय, तो स्पष्ट रीतिसे मालूम होगा कि इस विवाह-बन्धनने ही उसे गुप्त रूपसे बाँध रखा है। प्रकृत दाम्पत्य-प्रणय संसारमें बड़ा ही दुर्लभ है। देवतालोग भी उसे पानेकी इच्छा रखते हैं। बृहदारण्यकोप-निषद्में लिखा है कि,—"स्वयं ब्रह्माने अपनेको दो भागोंमें विभक्त करके एकको पति और दूसरेको पत्नी बनाया था।" मूल इस प्रकार है:—

स इममेवात्मानं द्वेधापयेत्।
ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्॥ बृहदारण्यकोपनिषद्॥

सन्तान-विज्ञान

भगवान व्यासदेवने अपनी संहितामें कहा है —

> यावन्न विन्दते जायां तावदर्द्धो भवेत् पुमान्।
>
> व्याससंहिता ।

अर्थात्—पुरुष जबतक स्त्रीको नहीं प्राप्त करता तबतक वह आधा रहता है। इससे स्पष्ट है कि विवाह दो अपूर्ण अंशोंको मिलाकर एक सम्पूर्ण मनुष्य मूर्ति गढ़ता है। अतः हिन्दू-धर्मावलम्बियोंका विवाह वास्तवमें विधाताका विधान है। विवाह एक महायज्ञ है। स्वार्थ इस यज्ञकी आहुति और निष्काम-धर्म-लाभ करना इसका फल-स्वरूप है। अत्यन्त पवित्र मंत्रमय यज्ञ ही हिन्दू-विवाहकी एकमात्र पद्धति है। यज्ञकी आगमें इस यज्ञका आरम्भ होता है और श्मशानकी आगमें भी इसका अन्त नहीं होता। इसलिए यह स्त्री-पुरुषका वैवाहिक सम्बन्ध केवल इन्द्रिय-विलासकी वस्तु मानना मूर्खता है।

प्रेम

स्त्री और पुरुषके सम्बन्धकी जड़ प्रेम है। प्रेम बड़ा ही विचित्र पदार्थ है। क्योंकि इसमें स्वर्ग और नर्क दोनों ही छिपे हैं। डाक्टर फाउलरका कथन है कि "Those who love in spirit should unit in person" अर्थात् जो आन्तरिक प्रेम-पूर्वक एक दूसरेसे प्रेम करते हों—उन्हींका विवाह-सम्बन्ध होना चाहिए। सच्चा प्रेम वही है, जिसमें किसी प्रकारका स्वार्थ न हो। सच्चा प्रेमी अपने प्रेमिकोंसे प्रेमका बदला नहीं चाहता। वह तो यह जानता ही

नहीं कि उसे अपनी प्रेमिकासे क्यों इतना प्रेम है । क्योंकि उसे देखते ही उसके आनन्दकी सीमा नहीं रहती । शिव-पार्वतीमें ऐसा ही प्रेम था । एक बार पार्वतीके पिता दक्ष प्रजापतिने उनके सामने शिवजीकी निन्दा की थी, इसलिये पार्वतीने अपना प्राण दे दिया । जानकीजी सच्चे प्रेमके कारण ही अपने पति भगवान रामचन्द्रके साथ वनोंमें फिरीं । महारानी दमयन्तीने राजा नलके लिए साधारण कष्ट नहीं सहा । पति-पत्नीका पवित्र प्रेम ही प्रेममय परमेश्वरके प्रेमका विकाश है । इसीसे जगत्‌को प्रेम करनेकी शिक्षा मिलती है । पति-पत्नीका सच्चा प्रेम सामाजिक या शारीरिक नहीं बल्कि आध्यात्मिक है । शरीर-सुख अथवा तुच्छ भोग-विलासके लिए जो प्रेम होता है, वह प्रेम कोई चीज नहीं है और न तो अधिक काल-तक ठहरता ही है । वह पवित्र प्रेम नित्य नये रससे पति-पत्नीके हृदयको सींचा करता है ।

सच्चा प्रेम स्त्री-पुरुषके मन और हृदयको एक बना देता है । प्रत्येक मनुष्य स्वतन्त्र है, अतः ऐसे स्वतन्त्र दो हृदयोंको एक बना देना आसान काम नहीं है । जबतक दोनों प्रेमियोंके लक्ष्य, भाव, धर्म, अवस्था, एक न हों, तबतक वास्तविक मिलन होना सम्भव नहीं । किन्तु दुःखकी बात है कि आजकल आदर्श विवाह-सम्बन्धमें लोग उक्त बातोंपर तनिक भी ध्यान नहीं देते । इस लापरवाहीका फल यह हो रहा है कि कितने ही स्त्री-पुरुषोंमें ठीक उतना ही भेद दिखलायी पड़ता है, जितना कि पशुओंमें । न तो स्त्री अपने पतिपर

अनुराग रखती है और न पुरुष अपनी स्त्रीपर। यही कारण है कि आजकल जो सन्तानोत्पत्ति हो रही है, वह मूर्ख, प्रेम-हीन, माता-पितापर अश्रद्धा रखनेवाली और अनेक प्रकारके दुर्गुणोंसे भरी हुई। क्योंकि माता-पिताके ही रक्त-मांस, बल-वीर्य और स्वभावको लेकर ही तो बच्चे पैदा होते हैं; जिस बातका माँ-बापमें ही अभाव है, वह बात उनमें कहाँसे आ जायगी? यहाँपर कुछ लोग यह कह सकते हैं कि जब यही बात है तब फिर मूर्ख और क्रूर माँ-बापसे विद्वान और दयालु बच्चा कैसे पैदा हो जाता है? प्रश्न बहुत ही ठीक है। वास्तवमें ऐसा बहुधा देखनेमें आता है कि विद्वानोंके बच्चे मूर्ख और मूर्खोंके लड़के विद्वान निकल जाते हैं। किन्तु यह बात भी ऊपरके कथनसे विपरीत नहीं है। गम्भीरता-पूर्वक विचार करनेसे मालूम होगा कि गर्भाधानके समय माता-पितामें तथा उसके बाद मातामें वे बातें मौजूद थीं जो बालकमें पायी जाती हैं—चाहे माँ-बापने उनका पालन जानकर किया हो अथवा बिना जाने; चाहे वे बातें किसी कारणवश उस समय उपस्थित हो गयी हों अथवा स्वाभाविक ही। इस विषयका अधिक स्पष्टीकरण आगे चलकर किया जायगा, इसलिए इस विषयपर यहाँ और अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं।
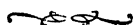
गर्भाधान

पहले ही कहा जा चुका है कि स्त्री-पुरुषके वीर्यमें जन्तु होते हैं। संयोगके समय स्त्री-पुरुषसे जितना वीर्य और रज उत्पन्न होता है, उसमें सैकड़ों जन्तु रहते हैं; किन्तु गर्भाधान करनेमें वे सबके-सब काममें नहीं आते। स्त्री कोषोंमेंसे एक कोष और वीर्य-जन्तुओं-मेंसे एक जन्तु ही गर्भाधानके काममें आते हैं, शेष व्यर्थ हो जाते हैं। संयोगके समय ये दोनों गर्भाशयके समीप एक दूसरेमें मिलते हैं।

गर्भाशयको अंग्रेजीमें 'यूटेरस' (uterus) कहते हैं। यह एक झिल्लीका बना हुआ अवयव होता है। इसमें सिकुड़ने और फैलनेकी शक्ति होती है। गर्भाधानके लिए शुद्ध वीर्य-रज और निर्विकार गर्भाशयकी कितनी आवश्यकता है, यह पहले कहा जा चुका है। अब चौथी आवश्यकता संयमकी होती है। जिस प्रकार कुसमयमें बोया हुआ उत्तम बीज भी फलदायक नहीं होता, उसी प्रकार असमयमें वीर्यदान करनेसे गर्भ स्थित नहीं होता। स्त्रीके मासिकधर्मसे शुद्ध होनेके बाद गर्भाधानका उत्तम समय आता है। क्योंकि मासिकधर्म होनेपर ही गर्भाशय शुद्ध और गर्भ धारण करनेके योग्य होता है। इसलिए इसके निमित्त यही समय मुख्य माना गया है। मासिकधर्म होनेके दिनसे चार या पाँच दिनतक यानी जबतक स्त्री शुद्ध न हो जाय तबतक स्त्री-प्रसङ्ग भूलकर भी न करना चाहिए। क्योंकि रज-स्रावके समय पहले तो गर्भ स्थिति होती ही

नहीं और यदि किसी कारणवश गर्भ रह भी जाता है तो दुःख देने-वाली सन्तान पैदा होती है। इस समय स्त्री-प्रसंग करनेसे कभी-कभी स्त्री-पुरुषको भयंकर रोग भी आ घेरता है। इसलिए ये रात्रियाँ सर्वथा त्याज्य हैं।

जान पड़ता है कि इसीलिए हमारे शास्त्रकारोंने रजस्वला स्त्रीको पहले दिन चाण्डालिनीके समान, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी और तीसरे दिन रजकी (धोबिन) के समान समझनेकी आज्ञा दी है। यदि रज-स्राव तीन दिनमें बन्द न हो तो चौथा और पाँचवाँ दिन भी त्याज्य है। रजस्वला होनेके दिनसे सोलहवीं रात्रितक स्त्री गर्भ धारण कर सकती है। इतने दिनोंतक गर्भाशयका द्वार खुला रहता है पश्चात् बन्द हो जाता है और उसमें नया रज एकत्र होने लगता है।

कभी-कभी ऐसा भी देखनेमें आता है कि रजस्वला हुए बिना ही स्त्रीको गर्भ रह जाता है। इसका कारण बतलाते हुए आयुर्वेदके आचार्योंने कहा है:—"रजस्राव हुए बिना ही स्त्री ऋतुमती हो जाती और गर्भ धारण कर लेती है; किन्तु ऐसा उसी समय होता है, जब दूध पीता हुआ बच्चा स्तनपान करना छोड़ देता है या दूध पीनेवाले बच्चेकी मृत्यु हो जाती है अथवा किसी कारणवश बहुत दिनोंसे अपने पतिसे अलग रहना पड़ा हो इसलिए पतिसे मिलनेकी इच्छा उसकी बहुत बढ़ गयी हो। यदि स्त्रीमें ये लक्षण पाये जायँ तो बिना रजस्राव हुए ही उसे रजस्वला समझना चाहिए।—"स्त्री-का मुख अत्यन्त प्रसन्न होनेपर, शरीर, मुख और मसूड़े गलगलाये

हुएसे होनेपर हाथ, स्तन, नाभि, कमर और जंघोंमें स्फूर्ति रहने और आनन्द-युक्तसे दिखलायी पड़नेपर।"

गर्भाधानके निमित्त संयोग करनेके लिए मनुष्यको यह विचार करना बड़ा ही आवश्यक है कि भोजन अच्छी तरह पच गया और पेट हल्का होगया है या नहीं। इसका खुलासा मतलब यह है कि भोजन करनके बाद कमसे-कम तीन घण्टा बाद पुरुष-स्त्री संयोग होना चाहिए। क्योंकि तीन घण्टेमें भोजनकी साधारण पाचन क्रिया हो जाती है। अन्यथा सन्तानका स्वास्थ्य बिगड़ जानेकी सम्भावना रहती है। संयोगके समय पुरुष-स्त्री दोनोंका चित्त खूब प्रसन्न और एक दूसरेके प्रति सच्चा प्रेम होना चाहिए। मल-मूत्र त्यागकी इच्छा होनेपर संयोगसे पहले ही उसे त्यागकर शुद्ध हो जाना ठीक है। उस समय न तो भूख लगी हुई होनी चाहिए और न अधिक भोजनसे भारी पेट ही रहना उचित है। इसी प्रकार रात और दिनके सन्धिकालमें यानी सबेरे तथा दिन और रातके सन्धिकालमें अर्थात् सन्ध्याके समय सम्भोग कभी न करना चाहिए। दिनमें तो भूलकर भी विषय करना ही नहीं चाहिए। अर्द्धरात्रिके समय भी स्त्री-प्रसंग करना गर्भाशयके लिए लाभदायक नहीं माना गया है।

इसलिए जिस दिन गर्भाधान करना हो, उस दिन शामको सात-आठ बजेतक स्निग्ध और सुस्वादु-पूर्ण हल्का भोजन कर लेना चाहिए। बाद तीन घण्टा बिताकर दस-ग्यारह बजे रातको—बारह बजेसे पहले, वीर्यदान करना उत्तम है। क्योंकि संयोगके बाद

गर्भको गर्भाशयमें प्रवेश कर स्थित होनेके लिए स्त्रीको शान्तिके साथ आराम करनेकी आवश्यकता होती है । इसके बाद अधिक रात बिताकर संयोग होनेपर स्त्रीको शान्ति ग्रहण करनेके लिए यथेष्ट समय नहीं मिलता, इसीसे गर्भाधानके प्रकरणमें हमारे आयुर्वेदके आचार्योंने गर्भाधानके लिए आधीरात या उसके बादका समय निषिद्ध ठहराया है । खासकर यही कारण है कि दिनमें विषय करना भी मना किया गया है । प्राचीन ग्रन्थोंमें लिखा है:—

शुद्धार्त्तवां दोषविमुक्त शुक्रः
सुगन्ध लेपैः परिलिप्तगात्रः ।
प्रशस्त नक्षत्र दिने प्रहृष्टां
नारीमुपेयाद्दयितः सुतार्थी ॥ १ ॥

सेवेत वाजीकरणांश्चनित्यं
दुग्धं पिवेच्छर्करयाविमिश्रम् ।
दानेन मानेन च भूसुराणां
मोहं दिदृध्या द्विधिनोपयुक्तः ॥ २ ॥

दिनेषु युग्मेषु पुमान्‍ दिष्टः
प्रोक्तान्यथास्त्रीतहनल्प बुद्धिः ।
विचार्य सर्वं सुखितः प्रमत्तः
प्रवृद्ध शुक्रोदयितामुपेयात् ॥ ३ ॥

आहाराचार चेष्टाभिर्यादृशाभिः समन्वितौ ।
स्त्री पुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोपितादृशः ॥ ४ ॥
रक्ताधिक्ये भवेन्नारी शुक्राधिक्ये भवेत्पुमान् ।
रक्त शुक्र समेनैव भवतीह न पुंसकम् ॥ ५ ॥

रक्ते शुक्रमकालेच पतितं निष्फलं भवेत् ।
शुक्रक्षये नरेषंढे नारी गर्भं दधातिन ॥ ६ ॥
विचार्यैवंसुधीः पश्चात्प्रयोगान्कारयेत्सदा ।
गर्भार्थं च प्रदातव्यान्मंत्रेणातेन मंत्रितान् ॥ ७ ॥
—बालतंत्रम्

भावार्थ यह है—शुद्ध रजवाली स्त्री और दोष-रहित वीर्यवाला पुरुष दोनों सुगन्धित द्रव्योंको लगाकर शास्त्रोक्त दिनका विचार करके पुत्रकी कामनासे समागम करें। वह दिन ऐसा हो कि स्त्री ऋतुदोषसे शुद्ध होगयी हो। पुत्रकी इच्छा रखनेवाला पुरुष प्रतिदिन मिश्री डालकर गरम दूध पिया करे और ब्राह्मणोंको दान-मानसे सन्तुष्ट रखे। जिस दिन स्त्री रजस्वला होती है, उस दिनसे युग्म रात्रि (यानी चौथी, छठी, आठवीं, दसवीं, बारहवीं, चौदहवीं और सोलहवीं रात) में विषय करनेसे पुत्र होता है तथा अयुग्म (यानी पाँचवीं, सातवीं, नवीं, ग्यारहवीं, तेरहवीं और पन्द्रहवीं आदि) रातमें विषय करनेसे कन्या उत्पन्न होती है। विचारवान लोग सारी बातोंका विचार करके बाजीकरण द्रव्यों एवं निष्ठासे वीर्यको बढ़ाकर स्त्रीके साथ गमन करें। जैसा आहार और आचार होता है तथा जैसी चेष्टा होती है, उसीके अनुकूल उनकी सन्तान होती है। रजकी अधिकतासे कन्या और वीर्यकी अधिकतासे पुत्रकी उत्पत्ति होती है। यदि रज और वीर्य दोनोंकी समानता होती है तो नपुंसक यानी हिंजड़ेकी उत्पत्ति होती है। असमयमें पुरुष-स्त्रीका संयोग होनेसे वीर्य निष्फल जाता है, गर्भ स्थित नहीं होता।

पुरुषके वीर्य-हीन होनेपर भी स्त्री गर्भधारण नहीं कर सकती। बुद्धिमान मनुष्योंको चाहिए कि वे वाजीकरण प्रयोगोंको अभिमंत्रित करके सेवन किया करें।

इसी स्थलपर वाजीकरण द्रव्योंको अभिमंत्रित करनेके लिए यह मंत्र भी है:—

ओं क्लीं देवकी सुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं देव त्वामहं शरणं गतः॥"

स्त्री-कोषमें पुरुष-जन्तुके मिश्रित होनेके लिए पहले स्त्री और बाद तत्काल ही पुरुषके स्खलित होनेकी आवश्यकता है। स्त्री-रजके निकलते ही पुरुष-वीर्य निकलनेसे स्त्री-कोषमें पुरुष-वीर्य-जन्तु प्रविष्ट हो सकता है। ऐसा होनेपर दोनोंका मिश्रण हो बच्चेका वीज बन जाता है। किन्तु बच्चेका वीज बन जानेकी दशामें भी यदि स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरेसे अलग हो जायँ अथवा स्त्री उठकर खड़ी हो जाय तो उस बीजके बाहर निकल जानेकी बहुत बड़ी सम्भावना रहती है और गर्भ स्थित भी नहीं होता। इसलिए कुछ देरतक दोनोंको उसी दशामें रहना चाहिए और पुरुषके हट जानेके बाद भी कुछ देरतक स्त्रीको ज्योंकी-त्यों पड़ी रहनेकी जरूरत है। क्योंकि तत्क्षण हटनेसे या स्त्रीके खड़ी हो जानेसे बीजका बाहर निकल आना सम्भव रहता है। ऐसी दशामें गर्भाधान होनेकी सम्भावना बहुत ही कम रहती है।

—o—

गर्भाधान न होनेके कारण

कोई-कोई स्त्री, पति-संसर्ग होनेपर भी आजन्म गर्भ धारण नहीं करती। इसके कई कारण हैं जो कि नीचे दिये जाते हैं।

१—वीर्य, रज तथा गर्भाशयके शुद्ध न होनेसे गर्भ-स्थिति नहीं होती। इन तीनोंमेंसे यदि एक भी सदोष होता है, तो गर्भाधान नहीं होता। इसलिए सबसे पहले इनकी जाँच करनी चाहिए।

२—नपुंसक पुरुषके संसर्गसे भी गर्भ नहीं रहता। अथवा बन्ध्या स्त्री हो तब भी गर्भाधान नहीं होता। इनका विस्तृत-विवेचन आगे चलकर किया जायगा।

३—संयोगके समय यदि स्त्री पहले स्खलित हो जाय और पुरुष उसके बाद स्खलित हो, अथवा पुरुष पहले और स्त्री पीछे स्खलित हो, तब भी गर्भ स्थित नहीं होता। गर्भस्थितिके लिए दोनोंका एक साथ स्खलित होना आवश्यक है। यहाँ एक साथ ही का मतलब पहले स्त्री और उसके बाद फौरन ही पुरुषके स्खलित होनेसे भी है। क्योंकि यह आगे-पीछे नहीं कहलाता। आगे-पीछे तो वह है जो एकके बाद दूसरेके स्खलनमें कुछ अन्तर यानी १०-१५ सिकेण्डका अन्तर अवश्य पड़े।

४—संयोगके बाद स्त्री खड़ी होगयी अथवा उसने अंट-संट चीजें खा लीं, तब भी स्थित हुआ गर्भ पानीकी तरह बाहर निकल आता है—मालूम नहीं होता। इसलिए संयोगके बाद स्त्रीको सावधानी-

के साथ रहकर अपने खाने-पीने और काम-धन्धेमें बहुत सावधानी रखनी चाहिए। क्योंकि प्रारम्भिक अवस्था बड़ी ही नाजुक होती है

५—अधिक विषय करने से भी गर्भ स्थित नहीं होता। कारण यह कि संयोग की अधिकता से बच्चेको जीवन प्रदान करनेवाली शक्तिमें कमी हो जाती है।

६—स्त्री पुरुष में प्रेमका अभाव होनेसे भी गर्भ नहीं रहता। क्योंकि गर्भ को स्थित करनेके लिए दोनोंका प्रेममें लीन हो जाना आवश्यक होता है। कभी-कभी प्रेम न रहने पर भी गर्भ रह जाता है; किन्तु उससे जो सन्तान पैदा होती है, वह सर्वथा माता-पिता-को कष्ट देनेवाली, रूखे स्वभावकी और दुराचारी होती है।

७—जब गर्भाशयमें वायुका प्रकोप हो जाता है, तब गर्भाधान नहीं होता। इसके पहचाननेकी रीति यह है—संयोगके बाद यदि स्त्रीका सिर काँपता हो तो समझना चाहिए कि वायुका प्रकोप है। इसका उपचार यह है—चनेके बराबर हींग लेकर शुद्ध तिलके तेलमें पीस डाले, बाद उसमें थोड़ी-सी साफ रुई तर करके तीन दिनतक (ऋतुकालमें योनिमें रक्खे और शुद्ध होनेपर उसे निकाल बाहर कर दे, बाद गर्भाधान करे।

८—गर्भाशयपर माँसका बढ़ जाना। यदि कमरमें दर्द हो तो समझना चाहिए कि गर्भाशयपर मांस बढ़ गया है, इसीसे गर्भ स्थित नहीं हो रहा है। इसके लिए काला जीरा और हाथीका नख रेंड़ीके तेलमें पीसकर ऊपरके अनुसार काम में लाना चाहिए।

९—यदि छाती में दर्द हो तो समझना चाहिए कि गर्भाशयमें कीड़े पड़ गये हैं। ये कीड़े भी गर्भ के बाधक हैं। इसकी दवा यह है:—हड़, बहेड़ा, और कायफलको साबुनके पानीमें पीसकर ऊपर के मुताबिक। याद रहे कि गर्भाशयमें ठंढकके बढ़ जानेसे भी छाती में दर्द होता है। इसलिए इन बातोंकी पहचान योग्यतके साथ करनी चाहिये। क्योंकि ठंढकसे जो दर्द होता है उसकी दवा इससे भिन्न है।

१०—कभी-कभी गर्भाशय उलट जाता है। इसलिए ऐसी अवस्थामें स्त्री-पुरुषका संयोग होनेपर गर्भ नहीं रहता। जंघाओंमें दर्दका होना गर्भाशयके उलट जानेका लक्षण है। इसके लिए केसर और कस्तूरीको पानीमें पीसकर ऊपरके अनुसार काममें लाना चाहिए।

११—मासिकधर्म न होने, ठीक समयपर न होने, रजस्राव उचित मात्रासे कम अथवा जियादा होनेसे भी गर्भ स्थित नहीं होता। इसके लिए किसी अच्छे वैद्य या डाक्टरसे इलाज कराना उचित है। यदि यह दोष होनेपर उचित उपचार नहीं किया जाता तो स्त्रीका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है—कभी-कभी तो इसके कारण स्त्रीको अपने जीवनसे भी हाथ धोना पड़ता है। इसलिए इस रोग की दवा करनेमें जरा भी सुस्ती करना ठीक नहीं। मासिकधर्मका एकदम न होना वायु और कफके प्रकोपका कार्य है। इन दोनोंके प्रकोपसे रज-स्रावका मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। इसके लिए खट्टे,

उष्ण तथा तीखे पदार्थोंका यथाशक्ति सेवन करना लाभदायक होता है।

१२—प्रदर, गर्मी तथा सूजाक आदि रोगोंके कारण भी गर्भकी स्थितिमें बाधा पड़ती है।

—०—

ऋतुकालमें स्त्रियोंके कर्त्तव्य

ऋतुकालमें स्त्रियोंको बड़ी ही सावधानीसे रहनेकी आवश्यकता है। क्योंकि सन्तानोत्पत्तिका कार्य यहींसे प्रारम्भ हो जाता है। जिस प्रकार बीज डालनेसे पहले खेतको दुरुस्त किया जाता है, उसी प्रकार गर्भ धारण करनेके पहले स्त्रीको अपना मन शान्त करना पड़ता है। शास्त्रकारोंका वचन है कि ऋतुकालमें स्त्री कोई भी कार्य न करे और एकान्तवास करे। एकान्तमें रहनेसे मनमें शान्ति आती है। जिस प्रकार प्लेट लगे हुए 'केमरा' (चित्र खींचनेका यंत्र) के सामने जो दृश्य आता है, उसीका चित्र प्लेटपर अंकित हो जाता है, उसी प्रकार ऋतुकालसे लेकर प्रसव-पर्यन्त स्त्रीके मन पर पड़े हुए प्रभाओंका सन्तानपर असर पड़े बिना नहीं रहता। स्त्रीको चहिए कि वह तीन या चार दिनतक गृहस्थीके सब कामोंसे अलग रहे और शान्तिपूर्वक अच्छी-अच्छी बातोंपर विचार करे। ऋतुकालसे निवृत्त होनेके बाद स्नान करे और सबसे पहले अपने स्वामीका दर्शन करे। इसके बीचमें उसे ऐसे ढंगसे रहना उचित है कि जिसमें किसीकी भी सूरत उसकी आँखोंके सामने न आवे। कुछ अनुभवी विद्वानोंका कहना है कि ऋतुस्नानके बाद स्त्री पहले-पहल जिसे देखती है, उसीके रूपका बच्चा उसके गर्भसे उत्पन्न होता है। कई जगह ऐसा ही देखनेमें भी आया है। जो भी हो, इतना तो अवश्य कहा जायगा कि यह समय स्त्रीके शान्ति लाभ

करनेका है और संसारके दृश्योंसे अपने चित्तको खींचकर अपने स्वामीके प्रेममें एकाग्र करनेका है। इसलिए ऋतु-स्नानके बाद पतिका दर्शन करना ही उचित है। यदि स्वामी घरपर मौजूद न हो तो अपने मनमें उसके स्वरूपका स्मरण करके सूर्य भगवानका दर्शन करना उचित है। जो स्त्री पहलेहीसे ऐसा अभ्यास रखती है, वही गर्भाधनके समय उक्त नियमोंका पालन कर सकती है।

एकान्तवासमें बहुतसे गुण हैं। सबसे बड़ा लाभ इससे यह होता है कि अनायास ही बहुतसी बुराइयोंसे छुटकारा मिल जाता है। उत्तम सन्तान पैदा करनेके लिए बुराइयोंसे दूर रहना बहुत जरूरी है। लिखा है:—

> आर्त्तवस्राव दिवसार्द्धहिंसा ब्रह्मचारिणी।
> शपीतदर्भं शय्यायां पश्येदपि पतिं न च॥
> करे शरावे परणेवा हविष्यंत्र्यह माचरेत्।
> अश्रुपात नखच्छेद मभ्यंग मनु लेपनम्॥
> नेत्रयो रञ्जनं स्नानं दिवा स्वापं प्रधावनम्।
> अत्युच्च शब्द श्रवणं हसनं बहुभाषणम्॥
> ह्यायासं भूमि खननं प्रवातं च विवर्जयेत्॥

ऋतुकालमें हिंसा करनेवाली स्त्रीकी सन्तान निर्दयी और हिंसा करनेवाली होती है। जो स्त्री इस समय ब्रह्मचर्यका पालन नहीं करती, उसके गर्भसे पैदा होनेवाला बालक मूर्ख, अल्पायु और व्यभिचारी होता है। इस समय स्त्रीको कुशाकी शैय्यापर सोना

चाहिए और अपने पतिका मुख भी न देखना चाहिए। हाथपर, मिट्टीके बर्तनमें अथवा पत्तलपर मिर्च-मसालोंसे रहित सात्विक भोजन करना उचित है। इस अवस्थामें जो स्त्री रोती है, उसके गर्भसे पैदा होनेवाला बच्चा सुन्दर नेत्रोंवाला कदापि नहीं होता। इस समय नाखून काटना भी मना है। शरीरमें तेल उबटन लगाना, चन्दनादि लेप करना, आँखोंमें सुरमा लगाना, दिनमें सोना, बालों पर कंघी फेरना, ऊँचा शब्द सुनना, हँसना, बहुत बोलना, अनायास ही नाखूनसे मिट्टी खोदना और तेज हवामें बैठना भी ऋतुमती स्त्रीके लिए वर्जित है।

स्मरण रहे कि ऋतुकालमें गड़बड़ी हो जानेसे ठीक उसी प्रकार सँभलना कठिन हो जाता है, जैसे कमजोर नींवके होनेपर मकानका। इसलिए स्त्री-पुरुष रूपी शिल्पकारोंको सु-सन्तान रूपी महल बनानेके लिए अपने-अपने कामपर पूर्ण रीतिसे तत्पर रहना चाहिए। किन्तु दुःखके साथ कहना पड़ता है कि आजकल स्त्रियाँ अपनी मूर्खताके कारण ऋतुकालमें उलटा काम करती हैं। जहाँ इस समय उन्हें एकान्त में रहकर शान्तिलाभ करनेकी आज्ञा शास्त्रकारोंने दी है, वहाँ वे ऋतुकालमें निठल्ली रहनेके कारण और दिनोंकी अपेक्षा भी अधिक पचड़ेकी बातें करतीं और व्यर्थकी बातें करके अपने चित्तको व्यग्र और क्षुभित करती हैं। खेद है ! सदुपयोगके स्थान पर दुरुपयोग !

स्त्री-पुरुषकी रचना काम-पियासा बुझानेके लिए नहीं हुई है

बल्कि प्रकृतिने इनकी रचना उत्तम सन्तान पैदा करनेके लिए की है। कामाग्नि बुझाते समय जो गर्भ रह जाता है, उसीके कारण देशका हित होनेके बदले सर्वनाश हो रहा है। आजकल बच्चे पैदा हो जाते हैं, पैदा नहीं किये जाते; किन्तु इसका कटुफल क्या माता-पिताको नहीं भोगना पड़ता? जहाँ देखो, वहीं बाप-बेटे और माँ-बेटेमें झगड़ा हो रहा है, एक दूसरेको कच्चा ही खा जानेकी ताकमें है। इसका क्या कारण है? यही कि बच्चे शास्त्र-विहित ढंगसे पैदा नहीं किये जाते। भला यह अपने हाथोंसे अपने पैरमें कुल्हाड़ी मारना नहीं तो और क्या है? इसलिए हमारी माताओं और बहनोंको सन्तानोत्पत्तिकी सारी बातें अच्छी तरहसे जानकर उनके अनुकूल चलना चाहिये। सन्तान पैदा की जाती है सुखके लिए, न कि दुःखके लिए।

इसलिए स्त्रियोंको हमेशा यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि वे जैसा आचरण करेंगी, वैसे ही आचरणवाली उनकी सन्तान होगी। जो स्त्री सन्तान-सुख भोगना चाहे, संसारमें अपनी अक्षय कीर्त्ति छोड़ जाना चाहे, उसको उचित है कि वह सारी बुराइयोंसे दूर रहे और अपने सब कामोंको मर्यादाके भीतर रखे, झूठ न बोले, चोरी न करे, किसीसे कलह न करे, सबपर प्रेम रखे, अच्छी-अच्छी बातें सोचे, उत्तम पुस्तकें पढ़े, पवित्रतासे रहे, जहाँतक बने, देश, जाति, और कुलकी भलाई करे, मनको बुरे कामोंकी ओर बहकने न दे, क्षणिक आनन्दके लिए गर्भाधानके अतिरिक्त

अधिक पति-समागम न करे, ईश्वरपर दृढ़ विश्वास रखे,। इस प्रकार आचरण रखकर जो स्त्री तीसरे या चौथे दिन रजो निवृत्ति होनेपर शुद्ध स्नान करके स्वच्छ वस्त्र पहन शृङ्गार आदिसे सुसज्जित हो सन्तानकी कामनासे पीछे कही गयी बातोंपर विचार करके पति समागम करती और गर्भ धारण करती है तथा प्राचीन ऋषियोंके कथनानुसार आचरण करके गर्भकी रक्षा करती है, उसकी सन्तान सर्वगुण-सम्पन्ना, माता-पितापर श्रद्धा-भक्ति रखनेवाली, सुन्दर और संसारमें प्रशंसा प्राप्त करनेवाली अवश्य होती है, इसमें किसी तरहका सन्देह नहीं है।

यदि पुत्रकी कामना हो तो स्त्रीको आन्तरिक प्रेम-पूर्वक अपने पतिके मुखका दर्शन करना चाहिये अथवा जैसी सुन्दर सन्तानकी मनमें लालसा हो उसी प्रकारके अत्यन्त सुन्दर चित्रका अवलोकन करना चाहिये और उसका स्वरूप गर्भाधान होनेके समयतक अपने हृदयपर अंकित कर लेना उचित है। उसे इतनी ध्यानपूर्वक देखना चाहिये कि आँखें बन्द कर लेनेपर भी वह चित्र ठीक-ठीक ध्यान में आ जाय। यदि कन्याकी इच्छा हो तो स्नान करनेके बाद दर्पणमें अपना मुख देखना चाहिये अथवा किसी सुन्दरी स्त्री या स्त्री-चित्रको देखकर अपने हृदयमें अंकित कर लेना चाहिये।

कुछ स्त्रियाँ आपत्ति कर सकती हैं कि झगड़ेसे दूर रहना, पतिपर प्रेम रखना, है तो बड़ी अच्छी बात; पर ऐसे-ऐसे कारण उपस्थित हो जाते हैं कि इसके विरुद्ध काम करना ही पड़ता है;

इसके लिए क्या उपाय है ? वास्तवमें यह आपत्ति करना बहुत ही यथार्थ है, किन्तु इसका उपाय भी बहुत ही सरल है—थोड़ासा अपने मनको काबूमें रखनेकी आवश्यकता है। अच्छा, तो वह उपाय कौनसा है ? इसके लिए नीचेकी घटना पढ़िये—

किसी स्त्री-पुरुषमें सदा झगड़ा हुआ करता था। बाहरसे घर आते ही वह पुरुष अपनी स्त्रीपर बेतरह नाराज होता और हर बातमें उसका अपमान किया करता था। सहन-शक्तिकी भी सीमा होती है पहले तो वह स्त्री कम बोलती थी, पर स्वामीकी यह आदत देखकर धीरे-धीरे वह भी ढीठ होगयी और पतिकी प्रत्येक बातका मुँहतोड़ जवाब देने लगी। पतिकी एक भी बातका सहन करना अब उसकी शक्तिसे बाहर होगया। फलतः झगड़ा कभी मिटता ही न था। दोनों एक दूसरेके मिलनसे दुःखी रहने लगे। अन्तमें पास-पड़ोसकी स्त्रियोंने उस स्त्रीसे कहा,—तुम्हारा पति मंत्रके बलसे तुम्हारे वश हो सकता है। उस स्त्रीने इस युक्तिको स्वीकार कर लिया। उसने निश्चय किया कि किसी ओझाके मंत्र-बलद्वारा यह काम किया जा सकता है। फिर क्या था, एक दिन वह एक नामी ओझाके पास गयी और साफ साफ अपना अभिप्राय कह सुनाया। ओझा बुद्धिमान था, सारी बातें ताड़ गया। उसने उस स्त्रीके विश्वासको बिगाड़ना उचित नहीं समझा। एक लोटा जल मँगाकर उसे मंत्रद्वारा फूँक दिया और उस स्त्रीको देकर कहा,—जब तेरा पति घर आये, तब तू इस लोटेसे एक घूँट पानी अपने मुँहमें रख

लेना और जबतक वह सो न जाय, तबतक उसे मत गिराना। इस प्रकार लगातार इक्कीस दिनतक करनेसे तेरा पति अवश्य ही तेरे वश हो जायगा। इस यत्नसे मैंने सैकड़ों स्त्रियोंका उपकार किया है, तू भी यही कर।

उस स्त्रीने घर आकर ऐसा ही करना शुरू किया। पतिके घरमें पैर रखते ही वह मुंहमें पानी भर लिया करती थी। इससे उसे अपने पतिकी कड़ीसे कड़ी बातें चुपचाप सहन कर लेनी पड़ती थी। क्योंकि यदि वह कुछ जवाब देनेकी कोशिश करती तो मुँहका पानी नीचे गिर जाता। इस प्रकार जब १५-२० दिन बीत गये, तब उसके पतिने देखा कि आजकल यह इतनी शान्त हो गयी है कि मेरी एक भी बातका जला-कटा जवाब नहीं देती; मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे चुपचाप सह लेती है। ऐसी दशामें इसे कड़ी बातें सुनाकर व्यर्थ कष्ट पहुँचाना, उचित नहीं है। फलतः ओझाके इस कौतूहल-पूर्ण उपायसे पति और पत्नी के स्वभावमें विचित्र परिवर्त्तन होगया और उनकी पारस्परिक कलह अनायास ही सदाके लिए मिट गयी।

कहनेका अभिप्राय यह कि दो बात सहकर रहनेसे झगड़ेकी जड़ ही कट जाती है। इसलिए जो मनुष्य, चाहे स्त्री हो या पुरुष—शान्तिसे रहना चाहे, उसे अपने हृदयमें सहन-शक्ति पैदा करनी चाहिये। किसी कविने कहा है कि "छमाखड्‌ग लीन्हें रहै, खलको कहा बसाय।" एक हाथ झलनेसे आवाज नहीं होती।

जबतक कि दूसरा हाथ झलकर संघात नहीं किया जाता, तबतक आवाज कभी हो ही नहीं सकती। इसलिए अब यह आपत्ति नहीं की जा सकती कि कारणोंके उपस्थित होनेपर गृहस्थीमें झगड़ेसे अलग रहा ही नहीं जा सकता।
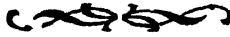
नपुंसकता

जो मनुष्य स्त्रीके साथ रमण करनेकी इच्छा करे, लेकिन अपनी निर्बलताके कारण इच्छा पूरी न कर सके या स्त्रीके पास जाते ही जिसका पतला वीर्य्य अपने आप ही निकल जाय, दम फूलने लगे, उसे नपुंसक कहते हैं। भावप्रकाशमें सात प्रकारकी नपुंसकता लिखी है:—

क्लीवःस्यात्सुरता शक्तस्तद्भावः क्लैब्यमुच्यते।
तच्चसप्त विधंप्रोक्तं निदानं तस्य कथ्यते॥

—भावप्रकाश

मनकी निर्बलताके कारण उत्पन्न हुई नामर्दीको 'मानसक्लैब्य' पित्तकी अधिकतासे पैदा हुई नामर्दीको 'पित्तज क्लैब्य' वीर्य्यकी कमीके कारण होनेवाली नपुंसकताको 'वीर्य-क्षय-जन्यक्लैब्य' बीमारीके कारण नामर्दीको 'रोग-जन्य-क्लैब्य', वीर्य्यवाहक नसों के कट जानेके कारण पैदा हुई नामर्दीको 'शिराच्छेदजन्य क्लैब्य', वीर्यके रोकनेसे उत्पन्न होनेवाली नामर्दीको 'शुक्रस्तम्भन-क्लैब्य' और जन्मसे ही नामर्दीको 'सहज क्लैब्य' कहते हैं। अब इन सातोंका स्पष्ट विवेचन नीचे लिखा जाता है—

'मानस-क्लैब्य'

जो पुरुष मानस-क्लैब्य होता है, उसे मैथुन-विषयक बात स्वाभाविक बुरी लगती हैं। अपनी इच्छाके अनुकूल स्त्री न मिलने

से मनुष्य जब उस स्त्रीके पास कामकी उमंगमें जाता है तब उसे वह अपनी रुचिके अनुसार न पाकर चिन्ता, क्रोध, घृणा और दुःख करता है; इसलिए इन्द्रियमें शिथिलता आ जाती है। जिन लोगोंने आध्यात्मिक विषयोंका अध्ययन किया है, वे जानते हैं कि शरीरकी बाहरी इन्द्रियाँ अपने-आप कुछ नहीं कर सकतीं। सब इन्द्रियाँ मनके अधीन हैं। मनकी सहायता या प्रेरणा बिना कोई भी इन्द्रिय अपने काममें प्रवृत्त नहीं हो सकती। इसलिए जो मनुष्य अपने मनमें क्रोध और घृणा आदिके भाव उत्पन्न करता है, उसकी इन्द्रिय स्वाभाविक ही शिथिल पड़ जाती है।

'पित्तज-क्लैब्य'

लाल मिर्च, खटाई आदि-पित्तकारक चीजें अधिक खानेसे शरीरमें पित्त बढ़ जाता है, जिससे वीर्य खराब हो जाता है। क्योंकि ये सब उत्तेजक वस्तुयें हैं। शरीरमें उत्तेजना पैदा होनेके कारण मनुष्य अधिक मात्रामें व्यर्थ ही अपने वीर्यका नाश करने लगता है और कुछ ही दिनोंमें नपुंसक हो जाता है। इन वस्तुओंका अधिक सेवन करनेवाला मनुष्य यदि अपनेसे वीर्य-क्षय न भी करे, तब भी इनके प्रभावसे वीर्य फटकर पतला पड़ जाता है और स्वप्न आदि में निकलने लगता है। यहाँपर एक बातका जान लेना और आवश्यक है। वह यह कि हमारे आहारकी तीसरी क्रियाके समय पित्त बनता है। यह पित्त वीर्य बननेवाली धातु है। मिर्च, खटाई, मसाला तथा चटपटी चीजें खानेसे यह पित्त दूषित हो

जाता है और वीर्य बनानेके बदले कुपित होनेके कारण उसे नष्ट कर देता है। कितने ही लोग अधिक विषय करनेके कारण नामर्द न होते हुए भी अपनी शिथिलताको नपुंसकता समझ बैठते हैं और मूर्ख वैद्योंकी शरण लेते हैं। उन लालची वैद्योंकी सलाहसे अच्छी शुद्ध की हुई वंग-भस्म, पारद-भस्म आदि तथा तेजी उत्पन्न करनेके लिए भांग, अफीमका सेवन करके वे अपनेमें नामर्दी पैदा कर लेते हैं।

'शुक्र-क्षय-जन्य-क्लैव्य'

जो मनुष्य रात-दिन विषयमें रत रहता है, किन्तु नियमानुसार बाजीकरण औषधियोंका सेवन नहीं करता बल्कि उसके बदले उत्तेजक वस्तुओंका ही सेवन करता है, वह भी अधिक वीर्य क्षीण होनेके कारण नपुंसक हो जाता है। इस नपुंसकतामें मनुष्यके चेहरेकी कान्ति जाती रहती है, आँखें धँस जाती हैं, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है और नींद अच्छी तरह नहीं आती।

'रोग-जन्य-क्लैव्य'

जो लोग लिंगको बढ़ानेके लिए औषधियोंका अंट-संट प्रयोग करते हैं, वे इस रोगके शिकार बन जाते हैं, ऐसी औषधियोंसे लिंग वृद्धि तो अवश्य हो जाती है, किन्तु नपुंसकता आ जाती है। अथवा गर्मी, सूजाक आदि भयंकर रोगोंसे वीर्यके नष्ट होते जानेके कारण रोग-जन्य-क्लैव्य हो जाता है।

'शिराच्छेद-जन्य-क्लैब्य'

यदि किसी कारणवश वीर्य-वाहिनी नसें कट जायँ तो इन्द्रिय में उत्तेजना पैदा नहीं होती। अंडकोषके अण्ड यदि कुचल दिये जायँ या काट दिये जायँ, तो भी पुरुष नपुंसक हो जाता है। गुदा और अंडकोषके बीचकी नस कट जानेसे भी नपुंसकता आ जाती है। यही कारण है कि सिद्धासनका अभ्यासी इसी नसको एँड़ीसे दबाता है और उसका फल यह होता है कि उसकी काम-वासना शान्त हो जाती है। इसका विस्तारपूर्वक वर्णन 'ब्रह्मचर्य साधना' नामकी पुस्तकमें किया जा चुका है। तात्पर्य यह कि ऐसी नसोंके कट जानेसे मनुष्य नामर्द हो जाता है और उसे शिराच्छेद-जन्य-क्लैब्य कहते हैं। इसकी चिकित्सा करना व्यर्थ है।

'शुक्रस्तम्भन-क्लैब्य'

यदि बलवान मनुष्य विषयोपभोगसे खिन्न मन होकर ब्रह्मचर्य-पूर्वक वीर्यको रोक लेता है, कभी भी बाहर नहीं निकलने देता तो उसे शुक्र-स्तम्भ-नपुंसक कहते हैं। २५-३० वर्षके बाद भी वीर्यपात न करनेसे कामोत्तेजना नहीं होती। ऐसा पुरुष स्त्री-सह-वासके योग्य नहीं रह जाता। अधिक दिनोंतक निरोध करनेसे उसकी इन्द्रिय शान्त हो जाती है। किन्तु यह नपुंसकता सब प्रकारके मैथुनसे बचनेपर होती है। वास्तवमें हमारे विचारसे तो इसे नपुंसकता कहना ही अनुचित है; क्योंकि यह तो एक प्रकारकी महान तपस्या है। किन्तु शास्त्रकारोंने इसे भी नपुंसक ही माना

है। कारण यह कि ऐसा मनुष्य स्त्रीके कामका या सन्तानोत्पन्न करनेके योग्य नहीं रह जाता। यह नपुंसकता सर्वथा सराहनीय और दुर्लभ है। ऐसे नपुंसक केवल स्त्रीके योग्य नहीं रह जाते; किन्तु अखण्ड ब्रह्मचर्यके प्रतापसे वे ऐसे-ऐसे कामोंके करनेमें समर्थ होते हैं जो साधारण मनुष्यके किये कभी हो ही नहीं सकते। ऐसे लोग धन्य हैं। इनका वीर्य ही ऊर्ध्वगामी हो जाता है। इन्हें उर्ध्वरेता कहते हैं। मनुष्य शरीरकी यह सबसे बड़ी साधना है। इन लोगोंका शरीर लोहेके समान सुदृढ़, चेहरा अग्निके समान सतेज और शरीरका प्रत्येक अंग सुडौल तथा पुष्ट हो जाता है।

'सहज-क्लैव्य'

जो मनुष्य जन्मसे ही हिंजड़ा हो, उसे सहज-नपुंसक कहते हैं। यह नपुंसकता माता-पिताके रज-वीर्य्यके दोषसे होती है। ऐसे नपुंसकोंके शरीरमें लिंगेन्द्रिय होती ही नहीं। यदि होती भी है तो उसकी लम्बाई सिर्फ आधा या पौन इञ्च ही होती है। कुछ लोगोंकी इन्द्रिय इससे अधिक लम्बी भी होती है, पर वह सदा शिथिल रहती है। आयुर्वेदने सहज-क्लैव्यको असाध्य माना है:—

असाध्य सहज क्लैव्यमर्गच्छेदक्षयत्भवेत्।

सहज-क्लैव्य और शिराच्छेद-क्लैव्य ये दोनों ही असाध्य हैं। इस सहज-क्लैव्यके पाँच भेद हैं:—(१) असेक्य (२) ईर्ष्यक (३) कुम्भिक (४) महाषंढ (५) सौगन्धिक।

माता-पिताके अत्यन्त अल्प रज-वीर्य्यद्वारा जो बालक पैदा होता है, उसे आसेक्य नपुँसक कहते हैं। दूसरेको मैथुन करता देखकर जो मैथुन कर सके, अन्यथा नहीं, उसे ईर्ष्यक नपुंसक कहते हैं। इच्छा करने पर भी जो मनुष्य मैथुन न कर सके, उसे कुम्भिक नपुंसक कहते हैं। इसके विषयमें कश्यपजीने लिखा है कि, ऋतुकालमें अल्प रजयुक्त स्त्रीसे श्लेष्य वीर्यवाला पुरुष यदि मैथुन करता है और गर्भ रह जाता है तो कुम्भिक नपुंसककी उत्पत्ति होती है। जो मनुष्य स्त्रीको ऊपर चढ़ाकर मैथुन करता है और उससे जो गर्भ रह जाता है तथा उस गर्भसे यदि पुत्र पैदा होता है, तो वह महाषंढ नपुंसक होता है। महाषंढ नपुंसक पुरुष होनेपर भी उसका हाव-भाव, बोलना चालना, तथा वेष-भूषा हू-बहू स्त्रियों-कासा होता है। इन्हें स्त्रियोंमें रहना अधिक पसन्द होता है। यदि इस विपरीत मैथुनसे कन्या पैदा होती है, तो उसकी सारी चेष्टाएँ पुरुषोंकीसी होती है। ऐसे नपुंसकमें वीर्य होता ही नहीं। जो बालक दुर्गन्धित योनिसे पैदा होता है, वह सौगन्धिक नपुंसक होता है। यह नपुंसक भी स्त्रीके कामका नहीं होता। इस नपुंस-कतामें वीर्य तो रहता है, पर लिंगेन्द्रिय सदा शिथिल रहती है, उसमें उत्तेजना पैदा ही नहीं होती।

वैद्यक ग्रंथोंमें ऊपरके अतिरिक्त नपुंसकके और अन्य चार भेद (वीजोपघात नपुंसक, ध्वजभंग, जरासम्भव और वीर्य-क्षय नपुंसक) लिखे गये हैं। किन्तु विस्तार-भयसे उन्हें छोड़ देना ही उचित जान पड़ता है।
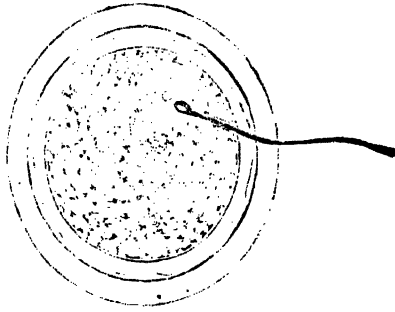
वीर्यकीट और रजोकोष का मिश्रण।
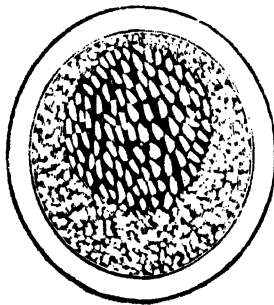
चित्र नं० १, प्रथम पत्र। पृष्ठ संख्या १२२

वन्ध्या-प्रकार और उसकी चिकित्सा

सबसे पहले यह बतलाना आवश्यक है कि वन्ध्या किसे कहते हैं। इसका खुलासा अर्थ तो यह प्रकरण पढ़नेसे मालूम होगा, हाँ मोटी व्याख्या इसकी इस प्रकार की जा सकती है कि जिस स्त्रीके सन्तान न हो या जो गर्भधारण न करे, उसे वन्ध्या कहते हैं। लिखा है:—

> अष्टौदोषास्तु नारीणां नवमः पुरुषस्य च ।
> रक्तात्पित्तात्तथा वाताच्छ्लेष्मणः सन्निपातकात् ॥
> ग्रह दोष विकारेण देवतानां प्रकोपनात् ।
> अभिचार कृताच्चैव रेतोहीन: पुमांस्तथा ॥
> काकवन्ध्या मृतवत्सा गर्भस्राव्यस्तु याः स्त्रियः ।
> आदि वन्ध्याश्च गीयन्ते दोषैरेभिर्नचान्यथा ॥
>
> —बालतंत्रम्

अर्थात्—आठ दोष स्त्रियोंके और एक दोष पुरुषका मिलकर कुल नौ विकारोंसे स्त्री वन्ध्या कहलाती है यानी स्त्रीके वन्ध्या होनेके नौ कारण हैं। रक्तसे, पित्तसे, वातसे, कफसे, सन्निपातसे, ग्रहके दोषसे, देवताओंके कोपसे और अभिचार यानी गुरुजनोंके शापसे। इन आठ दोषोंमेंसे कोई एक दोष होनेसे स्त्री वन्ध्या होती है। ये आठो दोष स्त्रीके हैं। नवाँ दोष है, पुरुषका वीर्य-हीन होना। स्त्रीमें कोई विकार न हो, पर उसका पति वीर्य-हीन हो, तब भी स्त्रीके

गर्भ नहीं रहता और वह वन्ध्या ही कहलाती है। कुल चार प्रकारकी वन्ध्या स्त्रियाँ होती हैं। किसी-किसी आचार्यने आठ * प्रकारकी वन्ध्या माना है। किन्तु लक्षणोंमें कोई विशेष अन्तर न होनेके कारण यहाँपर चार भेद मानकर उनका स्पष्टीकरण किया जाता है। काकवन्ध्या, मृतवत्सा, गर्भस्रावी और आदिवन्ध्या या जन्मवन्ध्या।

काकवन्ध्या उसे कहते हैं जिस स्त्रीके एक सन्तान होकर फिर गर्भ न रहे।

मृतवत्सा वह है, जिस स्त्रीके गर्भ रहे और बच्चे भी हों किन्तु बच्चे पैदा होकर मर जायँ—जियें नहीं।

गर्भस्रावी उस स्त्रीको कहते हैं जिस स्त्रीको गर्भ स्थित हो-होकर नष्ट हो जाय। जो गर्भ तीन-चार महीनेमें ही नष्ट हो जाता है, उसे गर्भस्राव कहते हैं और जो उसके बाद नष्ट होता है उसे गर्भपात।

आदिवन्ध्या उसे कहते हैं जो स्त्री कभी भी गर्भ धारण न करे।

ये चारो वन्ध्यायें ऊपर कही गयीं रक्त-पित्तादि दोषोंवाली वन्ध्याओंसे सर्वथा भिन्न प्रकारकी हैं। इनके अतिरिक्त आठ प्रकारकी वन्ध्यायें और होती हैं।

---

* जन्मवन्ध्या काकवन्ध्या मृतवत्सा तथैवच।
स्रवद्गर्भा गलद्गर्भा कन्यापत्यं प्रसूयते॥
मूढ गर्भा रजोहीना ह्यष्टौवन्ध्या प्रकीर्तितः॥

त्रिपक्षी शुभ्रती सज्जा त्रिमुखी व्याघ्रिणी बकी ।
कमली व्यक्तिनी चैवतासां चिह्नं वदाम्यहम् ॥
त्रिपक्षी नाम या वन्ध्या त्रिपक्षे पुष्पिता भवेत् ।
द्वंजीरके श्वेतवचाकर्कोटयाश्च फलं समम् ॥
तण्डुलोदक संपिष्टं चेत्स्थितां सूर्य सम्मुखी ।
त्रिदिनं च पिवेन्नारी दुग्धभक्तं च भोजनम् ॥

अर्थात्—त्रिपक्षी, शुभ्रती, सज्जा, त्रिमुखी, व्याघ्रिणी, बकी, कमली, और व्यक्तिनी ये आठ प्रकारकी वन्ध्याएँ और होती हैं । अब इनके लक्षण अलग-अलग कहे जाते हैं। जो स्त्री तीन पक्षमें ऋतुमती हो उसे 'त्रिपक्षी वन्ध्या' कहते हैं। दोनों जीरे, खुरासानी बच, ककोड़ेका फूल इन चीजोंको बराबर-बराबर लेकर चावलके पानीमें पीसकर सूर्यके सामने खड़ी हो तीन दिन प्रातःकाल पीना चाहिए और दूध तथा चावलके अतिरिक्त दूसरी कोई भी चीज खाना उचित नहीं है। ऐसा करनेसे अवश्य गर्भ रह जाता है, इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है ।

शुभ्रती नाम या वन्ध्या चिह्नंतस्यावदाम्यहम् ।
गात्र संकुचनं नित्यं देहे चैव विवर्णता ॥
गर्भस्तस्या न जायेत सज्जा वन्ध्या च कथ्यते ।
अप्रमाणैश्च दिवसैस्तस्याः पुष्प प्रजायते ॥

शुभ्रती नामकी वन्ध्याका शरीर संकुचित-सा रहता है और देहमें विवर्णता रहती है। यह वन्ध्या कभी गर्भ धारण नहीं करती।

नागकेशर ३ टंक, हाअवेर ३ टंक, मोरशिखा ३टंक ओरमिश्री ने १८ टंक लेकर महीन पीस डाले। बाद उसे कपड़छान करके तीन-तीन टंककी पुड़िया बना ले। सबेरे स्नान करनेके पश्चात् एक पुड़िया एक वर्णी गायके दूधके साथ सेवन करे और दूध-चावलका भोजन करे तो शुभ्रतो वन्ध्या अवश्य गर्भ धारण करनेमें समर्थ हो।

जो स्त्री अनियमित समयमें, कभी तो महीनेके भीतर ही, कभी महीनेमें कई बार और कभी डेढ़-दो महीने बाद रजस्वला होती है उसे 'सज्जा वन्ध्या' कहते हैं। इसके लिए स्याह जीरा, सफेद जीरा, खुरासानी बच, मँजीठ, ककोड़ी, हड़जोड़ी इन औषधियोंको बराबर भागमें ले चावलके पानीमें महीन पीस-छानकर तीन दिनतक सबेरे सेवन करना चाहिए।

जो स्त्री भोजन और मैथुनसे कभी तृप्त नहीं होती तथा संभोगके समय जिसकी योनिसे जल निकले उसे त्रिमुखी वन्ध्या कहते हैं। यह भी गर्भ नहीं धारण करती।

'व्याघ्रिणी' वन्ध्या उसे कहते हैं, जिसके एक बच्चा अधिक अवस्था हो जानेपर पैदा हो और फिर गर्भ न रहे। इसके लिए वही औषधि गुणकारी है जो त्रिपत्ती वन्ध्याके लिए लिखी गयी है।

जिस स्त्रीके आठवें-दसवें दिन सफेद खून धातुके समान गिरे और कोई सन्तान न हो उसे 'बकी वन्ध्या' कहते हैं। इस वन्ध्याके लिए किसी प्रकारकी दवा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि यह वन्ध्यात्व कभी भी दूर नहीं हो सकता।

जिस स्त्रीकी योनिसे निरन्तर पानी झरता रहे और गर्भ न रहे उसे 'कमलिनी वन्ध्या' कहते हैं। यह भी असाध्य है, किसी प्रकारकी दवा करना बेकार है।

व्यक्तिनी वन्ध्या उसे कहते हैं जिसकी योनिसे सफेद धातु प्रतिदिन गिरे यानी सोम-प्रदर होगया हो। लाल चिरायतेके बीज, मिश्री, आँवला और रतनजोतको समान भाग लेकर गो-दुग्धमें पीस २१ दिनतक पीनेसे यह रोग दूर हो जाता है। जब सोम-प्रदर दूर हो जाय तब दोनो जीरे, काला अगर, केसर, ककोड़ा, मोरशिखा इन औषधियोंको बराबर-बराबर लेकर बछड़ा ब्यायी हुई गायके दूधमें पीसकर तीन दिनतक सेवन करना चाहिए।

यदि वन्ध्या स्त्री रजस्वला ठीक समयसे हो, पर गर्भ धारण न करे तो समझना चाहिए कि उसका आर्त्तव दूषित है। यदि ऋतु-कालमें जामुनके फलकासा काला रज निकले, कमरमें शूल हो, पेटमें जलन रहे, हाथ-पैर गरम रहें तथा रुधिर भी गरम निकले तो समझना चाहिए कि आर्त्तव पित्त-दूषित है। कमलगट्टा, तगर, कूट, मुलहठी और सफेद चन्दन इनके समान लेकर कूट डाले। बाद बकरीके दूधमें पीस-छानकर ऋतुकालमें तीन दिन या जित दिन आर्त्तव जारी रहे, पान करे। फिर लक्ष्मणा जड़ीको गऊके दूधमें पीस-छानकर बारह दिनतक पान करे और सूँघे।

यदि ऋतुकालमें खून बहुत सूक्ष्म गिरे और उसका रंग कुसुमके रंगका हो, कटि तथा योनिमें दर्द हो, ज्वर हो, तो वायु

दूषित आर्त्तव समझना चाहिए। आमकी जड़का छिलका, दोनों कटेलियोंकी जड़, जामुनकी जड़का छिलका, इनको बराबर-बराबर लेकर गऊके दूधमें पीसकर ऋतुकालमें पीना चाहिए। बाद लक्ष्मणा जड़ीका सेवन ऊपर लिखे मनुसार करे। इससे वायु-दूषित वन्ध्यात्व मिट जाता है।

यदि रक्त चिकना और अधिक गिरे और उसका रंग बहुत लाल न होकर प्याजके रंगकासा हो तथा नाभिके पास पीड़ा हो तो कफ दूषित आर्त्तव समझना चाहिए। आकको जड़, मेंहदी, लौंग, नागकेसर, खरेटीकी जड़, और गंगेरनकी छाल समभागमें लेकर बकरीके दूधमें घोंटकर पीनेसे कफ-दूषित वन्ध्यात्व दूर होता है। अथवा आँवला, हड़, बहेड़ा, सोंठ, मिर्च, चीता इनको सम मात्रामें लेकर बकरीके दूधमें पीस-छानकर ऋतुकालमें पीनेसे भी उक्त दोष समूल नष्ट हो जाता है।

यदि ऋतुकालमें जोरोंसे बुखार हो, रक्त काला गिरे, वह रक्त बहुत गर्म और चिकना हो, काँख, योनि और कटिमें शूल हो, हड़-फूटन रहे, नींद अधिक आवे तो समझो कि सन्निपात दूषित वन्ध्यात्व है। अरंड (रेंडी) की छाल, आमकी छाल, निसोथ, कमलगट्टा, तगर, कूट, मुलहठी, सफेद चन्दन, इनको सम मात्रामें लेकर बकरीके दूधमें पीस-छानकर सात दिनतक सेवन करें या रज-स्राव होने पर्यन्त सेवन करे। बाद योनि-विकार शुद्ध हो जानेपर आमकी जड़, छोटी खटाईकी जड़, लक्ष्मणा, बाँझ ककोड़ो, सफेद

फूलवाली विष्णुकान्ता, इनको सम मात्रामें ले गायके दूधमें पीस-छानकर नासिकाके दाहिने छिद्रसे पीनेपर पुत्र और बाम छिद्रसे पीनेपर कन्या उत्पन्न हो, वन्ध्यात्व छूट जाय। यहाँपर यह बात ध्यानमें रहे कि ऊपर जो औषधियाँ लिखी गयी हैं, उनका सेवन किसी अनुभवी वैद्यसे राय लेकर करना चाहिए। क्योंकि लक्षण पहचानना बड़ा कठिन काम है।

—o—

प्रदर और प्रमेह

पहले ही कहा जा चुका है कि उत्तम और निरोग सन्तान पैदा करनेके लिए माता-पिताका रोग-रहित होना अत्यावश्यक है। इस-लिए स्त्री-पुरुषको रोगसे दूर रहनेके लिए पूरी चेष्टा करनी चाहिए। संयमसे रहनेवाले मनुष्यको रोग नहीं घेरते। जो मनुष्य संयमी नहीं होता, उसीका रोग पीछा करता है। यदि कभी कोई भूल हो जाय और रोग आ घेरे तो तुरन्त ही उसके शमनका उपाय करना चाहिए और आगेके लिए पूर्ण रीतिसे सावधान हो जाना चाहिए। इस प्रकरणमें दो ऐसे रोगोंकी चर्चा की जायगी, जिन्हें बहुधा लोग छिपाते हैं और जिसका फल यह होता है कि किसी न किसी दिन जीवनपर ही आ बनती है। ये दोनों ही महा भयानक और नाशकारी रोग हैं। उत्तम सन्तानोत्पत्तिके तो ये जानी दुश्मन ही हैं। एकका नाम प्रदर और दूसरेका नाम प्रमेह है। दोनों रोग एकसे ही हैं। भेद केवल इतना ही है कि प्रदर रोग स्त्रीको होता है और प्रमेह पुरुषको। पहले प्रदर रोगका वर्णन किया जाता है। सुनियेः—

प्रदर रोग निर्बलतासे हुआ करता है। यह रोग केवल स्त्रियोंको ही होता है, पुरुषोंको नहीं। अति मैथुनसे, खट्टी, तीक्ष्ण चीजोंके अधिक सेवनसे, दिनमें सोनेसे, अजीर्णसे, चिन्तासे, शोकसे, चोट लगनेसे, मादक वस्तुओंके सेवनसे, गर्भपातसे, गर्भस्त्रावसे तथा

अप्राकृतिक भोजन करनेसे यह रोग उत्पन्न होता है। इस रोगके ये लक्षण हैं,—प्रसवद्वारसे पानी निकले (यह पानी कई तरहका होता है) स्त्रीके शरीरमें पीड़ा रहे, हड़फूटन हो और हर वक्त सुस्ती बनी रहे तो समझना चाहिए कि प्रदर रोग है। प्रसवद्वारसे निकलनेवाला यह पानी झागदार, लसोड़, और चिकना होता है। यदि इसका रंग सफेद, पीला अथवा नीला हो तो जानना चाहिए कि रोग साध्य है, किन्तु यदि रुधिर बराबर निकले, किसी तरह भी न रुके, प्यास अधिक लगे, हमेशा दाह बनी रहे, ज्वर हो, शरीर भी क्रमशः क्षीण होता जाय तो असाध्य समझना चाहिए। इसका नाम ही असाध्य-प्रदर है।

यह रोग कई तरहका होता है—जैसे वात-प्रदर, पित्त-प्रदर, कफ-प्रदर, सन्निपात-प्रदर, रक्त-प्रदर और असाध्य-प्रदर। यदि शुष्क रक्त निकले और वह फेनयुक्त हो, उसके निकलनेमें हलकीसी वेदना हो तथा मांसके पानीके समान हो तो वात-प्रदर समझना चाहिए। रक्त पीले रंगका, नीला, सफेद या लाली लिये हुए गर्म तथा अधिक मात्रामें निकले, शरीरमें दाह भी हो तो पित्त-प्रदर समझो। गोंदकी तरह लसदार रुधिर निकले और उसका रंग पीला अथवा गुलाबी रंगका हो तो कफ-प्रदर जानो। शहदके समान, घीके समान, मुर्देकीसी गन्धयुक्त रुधिर निकलना सन्निपात-प्रदर यानी त्रिदोष-युक्त प्रदरका लक्षण है। रक्त और पित्तके विकारसे उत्पन्न होनेवालेको रक्त-प्रदर कहते हैं। शरीरका कृष होना, मूर्छा

आना, भ्रम होना, आँखोंके सामने अँधेरा छा जाना, देहका टूटना, शरीरमें जलन होना, प्यास अधिक लगना, मन्दाग्नि होना, अजीर्ण होना, इसके चिह्न हैं ।

इनके लिए बहुतसी औषधियाँ वैद्यक ग्रन्थोंमें लिखी गयी हैं, फिर भी प्रसंगानुसार यहाँ कुछ औषधियोंका लिख देना आवश्यक जान पड़ता है ।

वात-प्रदरके लिए यत्न—मुलहठी, जीरा, कमलगट्टा, काला नमक छः-छः माशे लेकर काढ़ा बना ले, बाद ऊपरसे शहद मिलाकर पी ले । इसके सेवनसे वात-प्रदर दूर हो जाता है ।

पित्त-प्रदर-यत्न—छः-छः माशे मुलहठी और मिश्रीको चावलके पानीमें पीसकर सबेरे ही पी लिया करे ।

सब तरहके प्रदर रोगकी औषधि—सुपाड़ीके फूल, पिस्तेके फूल, मँजीठ, सिरयालीके बीज, ढाक वृक्षकी गोंद, इन सबको चार-चार माशे लेकर बूक डाले और उसे फाँककर ऊपरसे थोड़ासा पानी पी ले । इसके सेवनसे सफेद, पीला, स्याह, दुर्गन्धयुक्त सब तरहके प्रदर रोग जड़से नष्ट हो जाते हैं । अथवा, १ तोला फालसा वृक्षकी छाल, रातको पानीमें भिगो दो । बर्त्तन मिट्टीका और कोरा होना जरूरी है । सबेरे उस पानीमें मिश्री मिलाकर उसे पी जाय । इस दवाको पन्द्रह दिनतक करे । या कसेला, माजूफल, पुरानी सुपाड़ी, धायके फूल, गोंद और लोध, इन सबको पाव-पावभर तथा मँजीठ ३ तोला, मोचरस ३ तोला, मेदा लकड़ी ३ तोला,

सोंठ ३ तोला, सबको कूट-छानकर सेरभर घीमें भिगो दो। बाद दो सेर मिश्रीकी चासनीमें इनके छटाँक-छटाँकके लड्डू बना डालो। प्रतिदिन सबेरे एक लड्डू खानेसे सब तरह के प्रदर रोग दूर होते हैं।

रक्त-प्रदर-यत्न—आमकी गुठली चूर्ण करके घी, चीनी और मैदाके साथ इसे पकाकर हलुआ बनाकर खिलाना हितकर है। या कुकरौंधा नामक बूटीको जड़-सहित कुचलकर एक तोला स्वरस निकाल लो; बाद उसमें शहद मिलाकर सुबह-शाम सेवन करो। इससे भी रक्त-प्रदर जल्द नाश हो जाता है।

यह तो हुआ प्रदर रोग का परिचय। अब प्रमेहकी व्याख्या देखिये। हम पहले ही कह आये हैं कि यह रोग पुरुषोंको हुआ करता है। यह भी प्रदर रोगकी तरह निर्बलताके कारण ही उत्पन्न होता है। यह रोग बड़ा ही भयंकर है। इसके उत्पन्न होते ही यदि चिकित्सा नहीं की जाय तो यह जड़ पकड़ लेता है और कुछ ही दिनोंमें मधुमेहके रूपमें परिवर्त्तित होकर असाध्य हो जाता है। फिर तो ये जीवनका अन्त किये बिना विश्राम नहीं लेता। इसलिए प्रमेहकी दवा करनेमें आलस्य करना जीवनसे हाथ धोना है।

मिहनत न करनेसे, हस्त-मैथुन करनेसे, गुदा मैथुन करनेसे, अप्राकृतिक मैथुन करनेसे; अधिक स्त्री-प्रसंग करनेसे, दिन-रात खूब सोनेसे, मादक वस्तुओंके सेवनसे तथा मांस (मछली तथा जल-जन्तुओंको) खानेसे यह संहार-कारी भयंकर रोग पैदा होता है।

'प्रमेहके लक्षण'

यह रोग जब होनेवाला होता है, तब पहले दाँतोंमें मैल अधिक जमने लगती है, कठ, जीभ और तालूमें भारीपन मालूम होने लगता है, हाथ-पैरमें जलन शुरू हो जाती है, मुँहमें मिठास होती है, प्यास अधिक लगती है, बाल आपसमें चिपक जाते हैं तथा समूचे शरीरमें चिकनाहट आ जाती है। आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें यह रोग २० तरहका बतलाया गया है। कफज १० पित्तज ६ और वातज ४ प्रकारका होता है।

'कफज-प्रमेह'

इक्षु-प्रमेह—पेशाब गन्नेके रसकी तरह मीठा होता है। यह याद रहे कि हर प्रमेहमें पेशाबके आगे-पीछे या पेशाबमें मिलकर वीर्य्य गिरता है। किसी-किसी प्रमेहमें तो उसका गिरना प्रतीत होता है और किसी-किसीमें बिलकुल दिखलायी नहीं पड़ता।

सान्द्र प्रमेह—यदि रातको पेशाब किसी बर्त्तनमें रख दिया जाय और सबेरे वह बिल्कुल गाढ़ा हो जाय तो समझना कि सान्द्र-प्रमेह है।

उदक-प्रमेह—पेशाब एकदम सफेद, शीतल, गन्धहीन, थोड़ा और चिकना होता है।

शुक्र-प्रमेह—पेशाब वीर्यके समान होता है।

सुरा-प्रमेह—पेशाब ऊपरसे शराबकी तरह साफ और नीचे गाढ़ा होता है।

लगी रहने या पानी पीकर तुरन्त गर्भाधान करनेमें प्रवृत्त न होना चाहिये। भूखे पेट या भारी पेट रहना भी इस समयके लिए ठीक नहीं है। शरीर शिथिल, किसी प्रकारके रोगसे पीड़ित या निद्रायुक्त होनेपर गर्भ स्थित करनेकी चेष्टा एकदम त्याग देनी चाहिये।

९—सन्तानको जिस विषयमें योग्य बनाना हो उस विषयका दोनोंको चिन्तन करना चाहिये और जिस रूपकी सन्तान उत्पन्न करनेकी इच्छा हो, उसी रूपको हृदयमें स्थिर करना उत्तम है।

१०—हेमन्त और शिशिर-ऋतुमें मनुष्य यदि अपनी शक्तिके अनुसार स्त्री-प्रसंग करे तो विशेष हानि नहीं होती।

११—वसन्त-ऋतु स्त्री-सहवासके लिए सबसे उत्तम और आनन्ददायक ऋतु है। किन्तु याद रहे कि इस ऋतुमें रक्त-मांसकी वृद्धि अधिक होती है अतः जहाँतक हो सके, उसकी रक्षा करनी चाहिए। स्त्री-प्रसंग तभी करना ठीक है, जब बिना किसी प्रकारकी काम-चेष्टा किये ही कामोत्तेजना विशेष रूपसे प्रतीत हो। क्योंकि पहले ही कहा जा चुका है कि वीर्यको रक्षा करना ही जीवन है और उसे नष्ट करना ही मृत्युके मुखमें पड़ना है।

१२—ग्रीष्म ऋतुमें इस कामसे जितना ही दूर रहा जाय उतना उत्तम हो।

१३—वर्षा-ऋतुमें शक्ति अनुसार १५-२० दिनके बाद इस कार्यके करनेसे कोई हानि नहीं हो सकती। शरद-ऋतुमें भी यही

नियम रखना प्रशस्तकर है। किन्तु जहाँतक हो सके, मनुष्यको शास्त्रकारोंके बतलाये हुए इस नियमके अनुसार ही आचरण करना उचित है:—

> ऋतुकालाभिगामीस्यात् स्वदारनिरतः सदा ।
> पर्व वर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतोरति काम्यया ॥

अर्थात्—मनुष्यको केवल अपनी स्त्रीके साथ ऋतुकालमें—अन्यथा उसके साथ भी नहीं—अमावस्या, पूर्णिमा, चतुर्दशी आदि पर्व-रात्रियों तथा ऋतुकालसे ग्यारहवीं और तेरहवीं रातको छोड़कर, गमन करना चाहिए। रजोधर्म होनेके दिनसे १६ रात्रियाँ ऋतुकालकी कही जाती हैं। इसमेंसे आर्त्तव निकलनेतककी रात्रियाँ तो वर्जित हैं ही, ग्यारहवीं और तेरहवीं रात भी वर्जित तथा निन्द्य हैं।

पाँचवीं रातको गर्भाधान करनेसे कन्या उत्पन्न होती है, जोकि सुशीला और सच्चरित्रा होती है। छठी रातके गर्भसे मध्यम-गुण-सम्पन्न पुत्र पैदा होता है। सातवीं रातके प्रसंगसे पहले तो कोई सन्तान ही पैदा नहीं होती और यदि होती भी है तो कन्या। आठवीं रातके गर्भसे कीर्त्तिवान और भाग्यशाली पुत्र पैदा होता है। नवीं रातके गर्भसे भाग्यमती कन्या होती है। दसवीं रातके गर्भसे बल और ऐश्वर्यवान पुत्र पैदा होता है। ग्यारहवीं रातके गर्भसे दुश्चरित्रा और कुलटा कन्या पैदा होती है। बारहवीं रातके गर्भसे सुन्दर और गुणवान पुत्र पैदा होता है। तेरहवीं रात विशेष

रूपसे वर्जित है; क्योंकि इस रातके गर्भसे महान पापिनी कन्या पैदा होती है। चौदहवीं रातके गर्भसे सुशील, धार्मिक और सदाचारी पुत्र पैदा होता है। पन्द्रहवीं रातके गर्भसे परम सुन्दरी और पति-भक्ति-परायणा कन्या तथा सोलहवीं रातके गर्भसे परम धार्मिक विद्वान और कुलदीपक पुत्र पैदा होता है। इसमें क्रमशः एक दूसरेसे बढ़कर रात्रियाँ हैं। यानी पाँचवींसे छठी और छठीसे सातवीं। सबसे उत्तम रात्रि कन्या उत्पन्न करनेके लिए ऋतुकालकी पन्द्रहवीं रात है और पुत्रके लिए सोलहवीं रात। किन्तु पुत्र-कन्या उत्पन्न करनेके लिए इसके सिवा वीर्यकी पुष्टि भी आवश्यक है, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है।

—— —— o —— ——

गर्भ है या नहीं कैसे जाने ?

गर्भ-स्थिति हो गयी या नहीं, यह जाननेके लिए पहला चिह्न तो यह है कि जब गर्भ रह जाता है तब किसी-किसी स्त्रीका जी दूसरे ही दिन मिचलाने लगता है, मुखका रंग बदल जाता है, शरीरमें भारीपन आ जाता है। सबसे अच्छी पहचान महीने भरमें होती है। वह इस तरह कि यदि मासिक-धर्म टल जाय, तब समझ लेना चाहिये कि गर्भ रह गया। क्योंकि गर्भ स्थित हो जानेपर स्त्री-धर्म बन्द हो जाता है। किन्तु जिन स्त्रियोंका मासिक-धर्म अनियमित रूपसे होता है, उनके लिए यह लक्षण ठीक नहीं है। गर्भ रहनेपर स्वाभाविक ही भोजनमें अरुचि हो जाती है, शरीरमें आलस्य आता है, कोई काम करनेका जी नहीं चाहता, पुरुषकी ओरसे भी रुचि हट जाती है, उल्टी होने लगती है, झूठी ओक भी आती है, लेटनेके लिए इच्छा हुआ करती है, कमरके नीचे सुस्ती अधिक आ जाती है, कभी-कभी सिर भी दुखने लगता है। गर्भिणी स्त्री खट्टी तथा सोंधी चीजें खानेके लिए बहुत उत्सुक रहती है। दस्त खुलासा नहीं होता, नींद अच्छी तरह नहीं आती, स्तनोंके मुख छोटे हो जाते हैं और उनपर श्यामलता आने लग जाती है। गर्भके पहचाननेकी रीति एक यह भी है कि थोड़ीसी शहद पानीमें मिलाकर पी लेनेपर यदि थोड़ी देरके बाद टूँड़ीमें कुछ दर्द होने लगे तो समझना चाहिये कि गर्भ अवश्य है और

यदि दर्द न हो तो जान ले गर्भ कदापि नहीं है। इस पहचानसे बढ़कर कोई भी पहचान नहीं है। यह कभी भी झूठी नहीं होती। गर्भ पहचाननेके लिए वाग्भट्टमें लिखा है।

तृप्ति गुरुत्वं स्फुरणं शुक्रास्रावनुबन्धनम्।
हृदयस्पन्दनंतन्द्रा तृङ्ग्लानिर्लोमहर्षणम् ॥

अर्थात्—संयोगके बाद ही पुरुषसे तृप्ति, गर्भाशयमें भारीपन, थकावट, छातीका फड़कना, रोम खड़े हो जाना आदि मालूम होता है।

कितनी स्त्रियोंको तो गर्भ रहनेके २४ दिन बाद ही कै होने लगती है और कितनीको मासिक-धर्म टलनेके बाद यह चिह्न दिखलायी पड़ता है। किन्तु बहुतसी स्त्रियाँ गर्भ धारण करते हुए भी इन दोनों बातोंसे बरी रहती हैं; उनके सिर्फ मुखमें थूक अधिक आता है। ढाई-तीन महीनेका गर्भ हो जानेपर स्तनोंका आकार भी बढ़ने लगता है; किन्तु बहुतसी स्त्रियोंके स्तनमें चार-पाँच महीनेतक कोई परिवर्त्तन ही नहीं होता। तीसरे महीनेसे गर्भिणीका पेट भी बढ़ने लगता है। और नाभिका गढ़ा धीरे-धीरे बढ़ने लगता है। छः महीनेतक गर्भ नाभिके नीचे रहता है, बाद सातवें महीनेसे वह ऊपर चढ़ने लगता है। कभी-कभी रोगसे भी पेट बढ़ जाता है। इसकी खास पहचान यह है कि गर्भसे बढ़नेवाला पेट बीचमें ऊपरको कुछ उठा हुआ रहता और रोगसे बढ़ा हुआ पेट सर्वत्र समान रूपसे बढ़ता है। चार-पाँच महीना बीत

जानेपर तो गर्भकी पहचान और भी अधिक स्पष्टतासे की जा सकती है। क्योंकि फिर तो पेटमें बालकका फड़कना मालूम होने लगता है। किन्तु कई स्त्रियोंके पेटमें छः-सात महीनेतक किसी प्रकारकी फड़कन नहीं प्रतीत होती। भूख-प्यासकी अवस्थामें गर्भ अधिक डोलता है।

——०——

गर्भस्थ बालकके जाननेकी रीति

पेटमें बालक पहले ही महीनेमें गोल जान पड़ता है। दाहिनी आँख कुछ बड़ीसी दिखाती है। गर्भमें लड़का रहनेपर दाहिनी जंघा भी मोटी और भारी मालूम होता है। उसमें कुछ दर्द भी हुआ करती है। दाहिने स्तनमें दूध पहले उतरता है। मुखका रंग अच्छा रहता है। स्वप्नमें पुल्लिंग वस्तुएँ ही दिखलायी पड़ती हैं, यदि मनुष्यका स्वप्न भी होता है तो पुरुषका हो। यदि गर्भवतीके दूधमें जूँ अथवा चींटी डालनेपर वे जीती रहें और चलती-फिरती नजर आवें तो समझना चाहिये कि पुत्र उत्पन्न होगा और यदि मर जाय तो कन्याकी उत्पत्ति होगी। लड़का दाहिनी कोखमें रहता है। गर्भमें लड़का रहनेपर स्त्री जो-कुछ भी कार्य करेगी, वह दाहिने अंगसे ही प्रारम्भ करके। यदि चलेगी तो पहले दाहिना पैर उठेगा, उठेगी तो दाहिना हाथ टेककर इत्यादि।

यदि पेटमें कन्या होती है तो स्त्रीका मस्तक भारी रहता है, तथा स्तनोंका दूध पतला होता है। गर्भिणीके मुखका रंग पीला रहता है। इसके सिवा पुत्रके लक्षणोंके ठीक विपरीत सब लक्षण दिखलायी पड़ते हैं।

यदि गर्भवती स्त्रीको राजाका दर्शन करनेकी इच्छा निरन्तर हुआ करे तो समझना चाहिये कि महा भाग्यशाली और धनी सन्तान पैदा होगी। भूषण तथा रेशमी वस्त्रादि धारण करनेकी

सन्तान-विज्ञान

इच्छा होनेपर सुन्दर और शौकीन तबीयतकी सन्तान पैदा होती है। देव-मन्दिरोंमें जाने, महात्माओंके दर्शन करने तथा धार्मिक कथायें सुननेकी इच्छा होनेपर शान्त स्वभावकी और धर्मपरायण सन्तान पैदा होती है। साँप, सिंह आदि हिंसक जानवरोंके देखनेकी इच्छा होनेपर हिंसक सन्तान उत्पन्न होती है। किन्तु इसमें कभी-कभी सन्देह भी रह जाता है, पर पाँचवें महीनेमें गर्भवतीकी जो इच्छा होती है, उससे अच्छी बुरी सन्तान भली-भाँति जानी जाती है और वह जानकारी कभी भी झूठी नहीं होती—सदा सत्य उतरती है। इसका कारण यह है कि इसी पाँचवें महीनेमें ही गर्भस्थ सन्तानमें जीवका प्रवेश होता है।

—०—

गर्भरक्षाके उपाय

गर्भरक्षाके उपाय बतलानेके पहले यह बतलाना आवश्यक प्रतीत होता है कि बालक गर्भमें किस प्रकार रहता और क्रमशः बढ़ता है। गर्भाधान से चार महीनेतक गर्भाशयका मुख बन्द रहता है। ज्यों-ज्यों गर्भ बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों गर्भाशय भी बढ़ता जाता और अंडाकार होकर नीचे को खिसकता आता है। छठे महीनेमें गर्भाशय की नार बहुत छोटी और चिपटी होकर फैल जाती है। आठवें महीनेमें बिलकुल चिपटी हो जाती। कभी तो सातवें महीनेसे ही और कभी नवें महीनेसे गर्भाशयका मुख खुलने लगता है और बालक उत्पन्न होनेके समय एकदम खुल जाता है।

गर्भाधान हो जानेपर पहले महीनेमें वीर्य जमता है। दूसरे महीने में उसपर पतली झिल्ली चढ़ती है। तीसरे महीनेमें शरीर का आकार बनने लगता है। चौथेमें पूरा शरीर बन जाता है। पाँचवें महीने में हृदय और जीव पड़ता है। छठे और सातवें महीनेमें बालकका शरीर पुष्ट होता है। गर्भस्थ बालक पेटमें उकरू बैठा हुआ, दोनो हाथोंको पैरोंसे मिलाये रहता है। उसके दोनों घुटने छाती और पेटसे लगे होते हैं और उसका माथा उन्हीं घुटनोंके बीचमें रहता है। यदि पुत्री रहती है, तब तो उसका मुख माँकी पीठकी ओर रहता है और यदि पुत्र होता है तो उसका मुख माँके पेटकी ओर रहता है। गर्भस्थ बालक अपने हाथोंकी अँगुलियोंसे आँख, कान,

नाक और मुख मूँदे रहता है। इसका कारण यह है कि जिन सात झिल्लियों के भीतर गर्भाशयमें बालक रहता है, उसमें एक प्रकारका ऐसा पानी होता है कि यदि वह बालककी आँखसे छू जाय तो सूर, कानमें चला जाय तो बहिरा, मुखमें जाय तो गूँगा, पेटमें जाय तो मुर्दा और मस्तकमें जाय तो वह पागल हो जाता है। इसलिए दयालु परमात्माने अपने सब छिद्र मूँद रखनेकी शक्ति बालकको प्रदान की है।

बच्चेका कौनसा अंग पहले बनता है, इस विषयमें विद्वानोंका कथन भिन्न-भिन्न प्रकारका है। कोई तो कहता है कि शारीरिक इन्द्रियोंका मूल-स्थान मस्तक है और इसकी रचना पहले होती है; कोई कहता है, हृदय, बुद्धि और मन है, इसलिए सबसे पहले हृदयकी रचना होती है; कोई कहता है कि बच्चेका पोषण नाभि द्वारा होता है इसलिए पहले नाभि बनती है। भारतीय चिकित्सकोंके आचार्य धन्वन्तरिजीका कहना है कि बालकके अंग-प्रत्यंग एक साथ ही उत्पन्न होते हैं; किन्तु अधिक सूक्ष्म होनेके कारण लक्ष्यमें आना कठिन है। समय पाकर वे यथाक्रम प्रकट होते हैं। यदि विचारकर देखा जाय तो यही सिद्धान्त युक्ति-संगत भी मालूम होता है। बड़ी खोजके बाद अर्वाचीन विद्वानोंने भी इसी सिद्धान्तकी पुष्टि की है। गर्भ-स्थित होनेके समयसे प्रायः नौ महीनेमें गर्भस्थ बालककी शारीरिक और मानसिक शक्तियों तथा अवयवोंकी रचना हो चुकती है। इन नौ महीनोंको इस
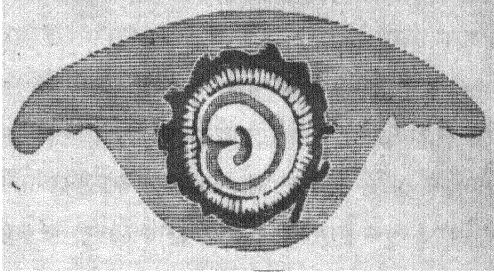
चित्र नं० २, द्वितीय सप्ताह । पृष्ठ संख्या १२२
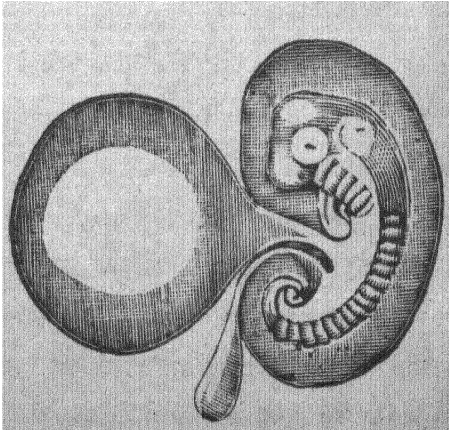
चित्र नं० ३, तृतीय सप्ताह । पृष्ठ संख्या १२२

विषयके विद्वानोंने प्राकृतिक नियमानुसार दो भागोंमें विभक्त किये हैं। पहले भागमें छः मास रक्खा है और दूसरेमें तीन मास। पहले भागमें बच्चेके प्रायः शारीरिक अवयव बनते हैं और दूसरे भागमें मानसिक शक्तियोंका विकास होता है। इसलिए पहले छः महीनेमें बच्चेकी शारीरिक रचनामें और पिछले तीन महीनेमें उसकी मानसिक शक्तियोंमें माता अपनी इच्छाके अनुसार परिवर्त्तन कर सकती है।

——o——

गर्भका विकास

स्त्रियोंके लिये यह जानना भी आवश्यक है कि गर्भमें जीवकी शारीरिक वृद्धि किस प्रकार होती है। गर्भके जीवका प्रारम्भ एक सजीव अंडेसे होता है। यह अंडा स्त्रीके अंडाशयकी एक पेशी में रहता है। वहाँसे वह अंडाशय और गर्भाशयके बीचकी नलीके मुखपर आता है। यहींपर वह फूट भी जाता है। यहाँपर भी एक हफ्ते तक स्थिति रहती है। बाद वह धीरे धीरे गर्भको थैलीमें आने लगता है। उसमें पहुँच जानेपर भ्रूण क्रमशः बड़ा होने लगता है। (देखो चित्र नं० १)

ज्यों ज्यों गर्भस्थ जीव बड़ा होता जाता है, त्यों त्यों वह गर्भाशयके अन्दर जगह छेकता जाता है। जिस दिन गर्भाधान होता है, उस दिन बीज $\frac{१}{२००}$ इञ्चके बराबर होता दूसरे सप्ताहके अन्तमें बीजका आकार करीब $\frac{१}{१२}$ इञ्चके हो जाता है। तीसरे हफ्तेके अन्तमें आकार बाजरेके दानेके बराबर हो जाता है। (देखो चित्र नं० २, ३)

पहला मास खतम होते होते भ्रूणके सिर पैरका आकार बनने लगता है और लम्बाई $\frac{१}{२}$ इञ्च तथा वजन $\frac{१}{२}$ माशा तक हो जाता है। उसमें मोटा सिरा तो सिर बनता है और नुकीला तथा

पतला सिरा जिसमें नाल लगा हुआ है, पैर बनेंगे। (देखो चित्र नं० ४)

छठे हफ्तेमें भ्रूणके सिर और सीने अलग अलग दिखायी पड़ने लगते हैं। चेहरा भी साफ मालूम होने लगता है। नाक, आँख, मुँह, कानके छिद्र बन जाते हैं। हाथोंकी अंगुलियाँ भी तैयार हो जाती हैं। इस वक्त लम्बाई एक इंचसे डेढ़ इंच तक और वजन तीन माशेसे पाँच माशे तक होता है।

डेढ़ महीना बीत जानेपर उसका आकार ऐसा हो जाता है कि जिसे देखनेपर यह मालूम किया जा सकता है कि यह मनुष्य का बच्चा है। इस समय शरीरकी अपेक्षा मस्तक बड़ा होता है। हाथ पैर ठूठेसे रहते हैं यानी उनमें हथेली और मुखकी जगह सिर्फ काले दाग मालूम होते हैं। दूसरे महीनेके अन्तमें प्रायः सारे अवयव (अंग) साफ दिखायी पड़ने लगते हैं। लम्बाई एक इञ्चतक हो जाती है। (देखो चित्र नं० ५)

तीसरे महीनेमें आँखकी पलकोंका आकार बन जाता है बल्कि यों कहना चाहिये कि एक प्रकारसे वे तैयार ही हो जाती हैं। इस समय मुख बन्द रहता है। इसी महीनेमें स्त्री-पुरुषमें भेद बतलाने-वाले अंगोंकी रचना होती है। इस समयतक लम्बाई प्राय; ३॥ इंचतक हो गयी रहती है। (देखो चित्र नं० ६)

चौथे महीनेमें मस्तक और कलेजेकी अपेक्षा दूसरे अवयव अधिक बढ़ते हैं। इस महीनेसे बच्चा कुछ-कुछ हिलना भी शुरू कर देता है। साढ़े चार महीना होते-होते लम्बाई भी ५—६ इंचतक

हो जाती है। पाँचवें महीनेके अन्ततक पुट्ठे वगैरह ठीक-ठीक बन जाते हैं। इस समयतक शरीरकी अपेक्षा सिर ही बड़ा रहता है और उसपर कोमल सफेद (चाँदीके रंगके) बाल निकल आते हैं। लम्बाई ७-८ इंचतक और वजन ६ से ८ औंसतक हो जाता है, छठे महीनेमें चमड़ेकी दोनों परतें दिखायी पड़ने लगती हैं, किन्तु वे बहुत ही नाजुक और रक्तवर्ण होती हैं। लम्बाई १० इंच और वजन लगभग ३।। पाव हो जाता है। नाखून भी निकल आते हैं। यदि इस समय बच्चा पैदा हो जाय तो वह कुछ देरतक अवश्य सांस ले सकता है। (देखो चित्र नं० ७)

पाँचवें महीनेमें भ्रूणकी लम्बाई करीब दस इंच और वजन करीब आध सेरके हो जाता है। त्वचापर एक चिकना पदार्थ बनने लगता है। जो गर्भोदक से त्वचाकी रक्षा करता है। चौथे पाँचवें सप्ताह में भ्रूण और उसके भीतरी आवरण के बीच में कुछ द्रव इकट्ठा होने लगता है—उसीको 'गर्भोदक' कहते हैं। इस ससय नाखून भी निकल आते हैं।

छठे महीनेमें लम्बाई १२ इंच हो जाती है और बालों में रंग भी आने लगता है। यदि इन महीनेमें भ्रूण बाहर निकल आवे तो वह कुछ देरतक सांस लेकर मर जायगा।

सातवें महीनेमें बच्चेके सब अंग बन चुकते हैं। इस समय बच्चेका सिर नीचे और पैर ऊपर हो जाता है। आँखकी पलकें खुलने लगती हैं। लम्बाई लगभग १३-१४ इंच और वजन सवा

पांच पावतक हो जाता है। आठवें महीनेमें बच्चेके प्रत्येक अंगकी समान रूपसे वृद्धि होती है। लम्बाई १६ इंच और वजन पौने दो सेरतक हो गया रहता है। इस महीनेमें ही यदि बच्चा पैदा हो जाय तो वह जीवित रह सकता है। हाँ थोड़े दिनोंतक कमजोर अवश्य रहेगा। नवें महीनेमें लम्बाई १८-२० इञ्च और वजन तीन साढ़े-तीन सेरतक हो जाता है। इसके बाद ही बच्चा पैदा हो जाता है। (देखो चित्र नं० ८)

कभी-कभी बारह महीनेतक भी बच्चे गर्भमें रह जाते हैं, किन्तु ऐसा बहुत कम होता है। वैद्यक ग्रन्थमें बारह मासतक गर्भ रह जानेका उल्लेख पाया जाता है। ग्यारह महीनेके बाद बच्चा पैदा होते देखा भी गया है। इसलिए इसकी सत्यतामें सन्देह नहीं है। अस्तु; उत्तम सन्तानोत्पत्ति विषयक नियमोंके साथ गर्भकी वृद्धिका क्रम जानना विशेष प्रयोजनीय है, इसलिए उसका संक्षिप्त वर्णन कर दिया गया। अब आगे यह दिखलाया जायगा कि गर्भकी रक्षा किन-किन उपायोंसे हो सकती है, तथा कोई उपद्रव खड़ा होनेपर किस महीनेमें कौनसा यत्न करना श्रेयस्कर है।

गर्भिणी स्त्रीको कभी दौड़ाना, कूदना, या उछलाना नहीं चाहिए। धमककर सीढ़ी उतरना या असावधानीसे सीढ़ीपर चढ़ना भी गर्भके लिए हानिकारक है। इन कामोंसे गर्भके गिर जाने या टेढ़ा हो जानेकी सम्भावना रहती है, जिससे गर्भ तो नष्ट हो ही जाता है, साथ ही स्त्रीको भी महान पीड़ा भोगनी

पड़ती है। कभी-कभी तो इस पीड़ासे स्त्री मर भी जाती है। भयावह चीजोंसे गर्भिणी स्त्रीको बचना चाहिए। उसे दूसरी स्त्रीका प्रसव नहीं देखना चाहिए। गर्भिणीके लिए जलमें तैरना, अधिक परिश्रम और झटकेका काम करना, वृक्षके नीचे अधिक ठहरना, अधिक सोना, अधिक जागना, दूरकी वस्तुको नजरपर जोर देकर देखना, गर्म चीजें (जैसे लाल मिर्च आदि) खाना, उपवास-व्रत करना, अधिक भोजन करना, जबर्दस्ती भूखको रोक रखना, सूखी चीजें (जैसे भूना हुआ चना आदि) खाना, पुरुषके साथ सोना, मल-मूत्रके वेगको रोकना, कुचिष्टता (मैलेपन) से रहना, अधिक जोर-से बोलना, सिरमें अधिक तेल लगाना, क्रोध-शोक करना आदि बड़ा ही हानिकारक है। इसलिए इन कामोंसे गर्भिणी स्त्रीको सदा बचना चाहिए। गर्भिणी स्त्रीको अधिक पौष्टिक भोजन भी नहीं करना चाहिए; क्योंकि पौष्टिक भोजन करने से बच्चा पैदा होते समय बड़ा कष्ट होता है।

दाल, भात, रोटी, तरकारी, दूध, थोड़ा घी आदि खाना गर्भवतीके लिए विशेष लाभदायक है। मक्खनका सेवन करना भी बड़ा ही उपयोगी है। खासकर दूधका सेवन तो गर्भिणी को अवश्य ही करना चाहिए। हाँ दूधकी शुद्धतापर ध्यान रखना जरूरी है। क्यों कि दूध खराब होनेसे लाभके बदले हानि करेगा। बीमार पशुका दूध भूलकर भी न पीना चाहिए। थोड़ा-बहुत फलोंका प्रतिदिन सेवन करना इस समय के लिए अमृत-तुल्य है। हमेशा मुख साफ

रखना चाहिए; स्नान करते समय अंग प्रत्यग को अच्छी तरह से धोकर स्वच्छ कर देना उचित है। आजकल बहुधा स्त्रियाँ एक-दो लोटे पानीसे ही नहा-धो लेती हैं। यह बात बहुत बुरी है। केवल शरीर भिगो देनेका नाम स्नान नहीं है; बल्कि स्नानका मतलब है, समूचे शरीरको मल-रहित करके शुद्ध कर डालना। प्रचुर जलसे मल-मलकर स्नान करना प्रत्येक मनुष्य के लिए बड़ा ही लाभ-दायक है। इससे तन्दुरुस्ती में जल्द कोई खराबी पैदा नहीं होता। गर्भवती के लिए प्रतिदिन थोड़ परिश्रम अवश्य करना चाहिए। गृहस्थीका काम-काज अपने अनुकूल देखकर करने से परिश्रम हो जाता है। मिहनत करनेसे स्त्रीका शरीर फुर्तीला रहता है, भोजन ठीकसे पच जाता है, नींद अच्छी तरह आती है तथा प्रसव याना बच्चा पैदा होते समय कम कष्ट होता है।

सूर्य्यग्रहण या चंद्रग्रहण लगनेपर गर्भिणीको चाहिए कि ग्रहण शुरू होनेसे घण्टा दो-घण्टा पहले ही किसी कोठरी में जा बैठे और जबतक मोक्ष न हो जाय, एकान्तमें बैठी उपदेशप्रद पुस्तक या महात्मा-पुरुषोंको अथवा इन्हीं विषयोंका चिन्तन करती रहे— ग्रहणको न तो देखे और न उसकी छाया ही अपने ऊपर पड़ने दे। गर्मी-सर्दीसे हमेशा बचकर रहना जरूरी है। लाल रंगका वस्त्र नहीं पहनना चाहिए उच्च विचार रखना, प्रसन्नचित्त रहना, पवित्रता रखना, हृदयमें सबपर दया और प्रेम रखना, गर्भके बच्चेपर बड़ा अच्छा प्रभाव डालता है। इसलिए इनको गर्भिणी स्त्री कभी न त्यागे।

यहाँपर दो-तीन बातोंका उल्लेख कर देना अनुचित न होगा। यद्यपि वे कोई विशेष आवश्यक तो नहीं हैं, तथापि उनकी जानकारी रखनेसे सम्भव है मनुष्यको समयपर कुछ सहायता ही मिले। पहली बात तो यह है कि सातवें महीनेमें बच्चेका पैर ऊपर और सिर नीचे क्यों हो जाता है। बात यह है कि छः महीनेतक तो उसके अंगोंकी रचना होती है, बाद मानसिक शक्तियोंका विकास होता है। यह मानी हुई बात है कि भारी चीज हमेशा नीचेकी ओर रहती है, इसलिए बच्चेके सिरका नीचेकी ओर रहना स्वाभाविक है। ईश्वरीय लीला बड़ी विचित्र और रहस्यमय है, इसलिए यह कहना कठिन है कि उक्त कार्यका केवल यही एक कारण है। हाँ यह अवश्य कहा जा सकता है कि और-और कारणोंमें सम्भव है कि एक कारण यह भी हो। दूसरी बात यह है कि गर्भमें बच्चे रोते क्यों नहीं? विद्वानोंका कहना है गर्भमें बच्चे का मुख झिल्ली (जरायु) से ढका रहता है और कण्ठ-द्वार भी कफसे घिरा रहता है, इसीसे वह नहीं रोता। तीसरी बात यह है कि माताके पेटमें बच्चा मल-मूत्र क्यों नहीं करता। इसका कारण यह है कि बच्चेका पोषण नालीद्वारा होता है। इसीके द्वारा माताके शरीरका रक्त बच्चेके शरीरमें पहुँचता है और उसीसे उसकी वृद्धि होती है। यह नाला बच्चेकी नाभिमें लगा रहता है। अब यह बात सहजहीमें समझी जा सकती है कि मल-रहित होकर बना हुआ रक्त ही जब बच्चेके शरीरमें जाता है, तब मल-मूत्र तैयार ही कहाँसे हो सकता है।

गर्भवती स्त्री जो काम करती है, बच्चेका भी वही काम अपने आप होता जाता है। गर्भिणीके सोनेपर पेटका बच्चा भी निद्रित हो जाता है; उसके जागते ही बच्चा भी जाग पड़ता है। इसी प्रकार माताके सांसमें खींची हुई वायुसे बच्चा सांस लेता और माताके सांस छोड़नेपर वह भी सांस छोड़ देता है। कहनेका तात्पर्य यह कि जो-कुछ माता करती है, उसका प्रभाव बच्चेपर किस प्रकार पड़ता है, इसका ज्ञान प्राप्त करके गर्भिणीको सदा-सर्वदा सावधान रहना चाहिए।

यदि गर्भिणी स्त्री प्रत्येक वस्तुकी जानकारी रक्खे और हर काममें सावधानी रक्खे तो किसी प्रकारका उपद्रव नहीं हो सकता। सन्तान भी उत्तम, दीर्घायु और हृष्ट-पुष्ट हो सकती है तथा उसका जीवन भी सुखमय बीत सकता है। मूर्खता-पूर्ण कार्य करनेसे ही गर्भस्राव और गर्भपात हो जाता है, मरी सन्तान पैदा होती है तथा बच्चे निर्बल, रोगग्रस्त और अल्पायु होते हैं।

पहले लिखा जा चुका है कि चार महीनेके भीतर जो गर्भ नष्ट हो जाता है, उसे तो गर्भस्राव कहते हैं और उसके बाद नष्ट होनेवाले गर्भको गर्भपात। इनके लक्षण ये हैं:—

१—यदि गर्भ नष्ट होनेको होता है तो अचानक शक्ति क्षीण हो जाती है, चित्तमें व्याकुलता छा जाती है और बेहद शोक आती है।

२—जी डूबासा जाता है। यह होता है कि कहाँ जाऊँ, क्या

करूँ। पता नहीं चलता कि ऐसा क्यों हो रहा है।

३—खड़ी होनेसे सिर घूमने लगता है, चक्कर आ जाता है।

४—पेटके ऊपर और दोनों जंघोंमें रह-रहकर वेदना होती है। मूत्रस्थान से तरबूजकासा पानी भी झरने लगता है।

५—यदि कमर, जंघा और गुदा में अधिक पीड़ा हो, शूल हो और रुधिर या रुधिरकी डली बाहर आने लगे तो समझना चाहिए कि गर्भ, गर्भाशय से अलग हो गया है।

यदि गर्भस्राव के लक्षण दिखलायी पड़ने लगें और पूरा निश्चय हो जाय कि गर्भस्राव होनेवाला है, तब उसके आरम्भमें ही यानी पीड़ा ही हो, रुधिरका निकलना शुरू न हुआ हो—यह उपचार करना हितकर हैः—

१—मुलहठी, देवदारु, और दुद्धी इन चीजोंके साथ दूधका सेवन करे।

२—शतावर और दुद्धीका काढ़ा पीवे।

इस प्रकार रुकावट हो जानेपर गो-दुग्धमें गूलरके पके फलका सेवन शुरू कर दे। गर्भवतीको ठण्ढे स्थानमें सुला दे और ठण्ढा पानी पिलावे। ठण्ढे पानीसे प्रसव-द्वारको धो डाले। यदि रुधिरका निकलना शुरू हो गया हो तो दूधके साथ कसेरू या सिंघाड़ा अथवा कमल औटाकर ठण्ढा हो जानेपर पिलावे। अथवा दो-तीन चावलभर अफीमका सत किसी सूखी वस्तुके साथ खिला देना चाहिए।

यदि पहले ही पहल गर्भाधान हुआ रहता है तो गर्भस्राव या गर्भपात छः-सात घण्टोंमें ही हो जाता है, देर नहीं लगती। किन्तु यदि स्त्री दूसरी या तीसरी बार गर्भ धारण किये रहती है तो दो-तीन दिन लग जाते हैं। जिस स्त्रीका गर्भ नष्ट हो जाय, उसे कम से कम पाँच-छः महीनेतक पतिके पास नहीं जाना चाहिए। क्योंकि इसके भीतर गर्भ रह जानेसे उसके भी नष्ट हो जानेकी आशंका रहती है। जिस स्त्रीका गर्भ बराबर नष्ट होता ही जाय, उसे गर्भकी रक्षाके लिए गर्भिणी होनेपर खूब सावधानीसे रहकर इस प्रकार दवाका सेवन करना चाहिए:—

पहले महीनेमें मुलहठी, दुद्धी और देवदारुकी पोटली बाँधकर दूधमें डाल दे। जब दूध पीनेके लायक पक जाय, तब उसे आगके ऊपरसे उतार ले और पोटलीको निकालकर फेंक दे। बाद उस दूधमें मीठा डालकर पिया करे।

दूसरे महीनेमें करंजवा, काला तिल, मँजीठ और शतावरकी पोटली डालकर ऊपरकी रीतिसे दूधमें पकाकर पिये।

तीसरे महीनेमें दुद्धी, कमलगट्टा, सरिवन और साँठीके चावल-की खीर खाया करे।

चौथे महीनेमें कटेरी, कम्भारी, दूधवाले वृक्षकी कोंपल दूधमें औटाकर पिये तथा घी या दहीसे भात खावे।

पाँचवें महीनेमें दूध-भात खाना बड़ा ही उपयोगी है।

छठे महीने में पृष्ठपर्णी, सहिजन, गोखरू और गिलोयको

दूधमें औटाकर उसे पीये। घी मिलाकर भात खाय। दूधकी लस्सीका सेवन करे। गोखरूको घीमें पकाकर खाय।

सातवें महीनेमें सिंघाड़ा, मुनक्का, केसर, मुलहठी और चीनी-को दूधमें औटाकर पिये।

आठवें महीनेमें कैथ, कटेरी, बेल, परवल और ईख, इन सबकी जड़को दूधमें पकाकर पीना चाहिए। या दूधमें रेंड़ीका तेल और मीठा मिलाकर कभी-कभी पी लेना उचित है।

नवें महीनेमें मुलहठी और देवदारु, दूधमें पकाकर सेवन करना हितकारी है।

दसवें महीनेमें सोंठ और दुद्धीको दूधमें पकाकर पीना चाहिए।

मुलहठी, सालवृक्षके बीज, देवदारु, नोनिया साग, काले तिल, राल, शतावर, पीपल, कमलकी जड़, जवासा, गौरीसर, बायसुरई, दोनों कटेरी, सिंघाड़ा, कसेरू, दाख और मिश्री तीन-तीन माशे ले और सात महीनेतक प्रति मासमें सात-सात दिन सेवन करे तो कभी भी गर्भ नष्ट न हो। यदि गर्भिणीकी कोष्ठ-शुद्धि न रहती हो तो थोड़ासा शुद्ध किया हुआ रेंड़ीका तेल (डाक्टरी दवाखानेमें मिलता है) चीनी मिले हुए दूधमें मिलाकर कभी-कभी पी लेना चाहिए। यह विरेचन बड़ा ही लाभदायक है, इससे गर्भिणी स्त्री के लिए भी लिखा जा रहा है। इसके सिवा दूसरी विरेचनकी दवा कभी नहीं खानी चाहिए। क्योंकि गर्भिणी स्त्रीके लिए वमन और विरेचन निषेध है। किन्तु ऊपरका दवा लेनेमें कोई हानि

नहीं है। इसलिए इसका सेवन करके कोष्ठ-शुद्धि करनेमें गर्भिणी स्त्रीको किसी बातकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

अब इसके बाद हम यह बतलाना चाहते हैं कि यदि गर्भावस्थामें अन्यान्य उपद्रव खड़े हों तो उनके लिए क्या करना उचित है।

पहला महीना

यदि पहले महीनेमें किसी प्रकारका कष्ट प्रतीत हो तो नीलोफर, कमल-ककड़ी, सिंघाड़ा और कसेरूको ठंढे पानीमें पीसकर गायके दूधमें पीना चाहिए। अथवा, मँजीठ, लाल चन्दन, कूट, और तगरको बराबर-बराबर लेकर दूधमें पीसकर दूध ही में पीना चाहिए।

दूसरा महीना

तगर, केसर, बेलगिरि और कपूरको समान मात्रामें लेकर बकरीके दूधमें पीसे और उसीको दूधमें छानकर पिये। या सालम मिश्री, नीलोफर, कसेरू, अदरख, सम मात्रामें लेकर जलमें पीस गायके दूधमें छानकर पीना चाहिए। अथवा सिंघाड़ा, कसेरू सफेद जीरा, बेलपत्र और छुहाड़ा सममात्रा में ले, पानीमें पीसकर दूधमें पिये।

तीसरा महीना

पद्माख, सफेद चन्दन, खस, तरगको सममात्रा में पानी से पीसे और बकरीके दूधमें छानकर पी ले। अथवा खस, सफेद चन्दन, नागरमोथा, पद्माख, कमलककड़ी को पानीमें पीसकर गायके दूधके साथ पीना चाहिए।

चौथा महीना

सिंघाड़ा, केलेका पत्ता, दाख, अनारकी कली और केलेके कन्दको पानीमें पीसकर बकरीके दूधमें पिये। या खस, कमल-ककड़ी और केलेकी जड़को पानीमें पीस बकरीके दूधमें पीनेसे कष्ट दूर हो जाता है।

पाँचवाँ महीना

नीलोफर, कमलककड़ी, कमलगट्टा और नागकेशरको बकरीके दूधमें पीस-छानकर पीना चाहिए। या नील कमलकी जड़, काक-माची, कमलककड़ीको पानीमें पीसकर दूधमें पिये।

छठा महीना

बच, इलायची, मुनक्का, नीलोफर और नागकेशरको दूधमें पीस-छानकर पीना चाहिए। या पीपल, पीपलामूल, कमलका फूल और कमलकी केशरको पानीमें पीस, बकरीके दूधमें पीना उचित और लाभदायक है।

सातवाँ महीना

सातवें महीनेमें यदि किसी तरहकी पीड़ा हो तो कैथकी गिरी, मूँगाकी शाख, धानकी खील और इन्द्रजौको सममात्रामें लेकर दूधमें पीस-छानकर पीना चाहिए। अथवा कैथ वृक्षके फलकी गिरी, सालममिश्री, धानकी खील और इन्द्रजौको बराबर-बराबर लेकर जलमें पीस, गायके दूधमें छानकर पीना चाहिए। या पीपलकी जड़, बड़की जड़, जल भंगरा, सूर्यमुखीकी जड़ और सोंठीकी जड़

तथा लाल चन्दनको सममात्रामें लेकर बकरीके दूधमें पीसकर उसीके दूधमें पीना भी विशेष लाभ पहुँचाता है ।

आठवाँ महीना

पद्माख, गजपीपल, कमलका फूल, कमलगट्टेकी गिरी और धनियाँ इन चीजोंको सममात्रामें लेकर पानीमें पीस डालना चाहिए, बाद उसे गायके दूधमें छानकर पीनेसे सब तरहके उपद्रव शान्त हो जाते हैं ।

नवाँ महीना

रेंड़की जड़, काकोली, पलासपापड़ा इनको सममात्रामें ले कूट-छानकर जलके साथ पीनेसे तत्क्षण आराम हो जाता है । या सोंठ, ढाकके पत्ते, इलायची, वायविडंग, सफेद जीरा और गजपीपल, इनको बराबर-बराबर लेकर बकरीके दूधमें पीस-छानकर पीनेसे भी कष्ट दूर हो जाता है और गर्भ नष्ट नहीं होता ।

—o—

इच्छानुकूल सन्तान पैदा करनेकी सुगम रीति

बहुधा लोग पुत्र या पुत्रीका होना तथा उसमें सुगुण और दुर्गुणका होना ईश्वराधीन मानते हैं। इसके विरुद्ध यदि कोई भी बात कही जाय तो अधिकांश लोग उसे मानना तो दूर रहा, सुननेके लिये भी तैयार न होंगे। किन्तु यदि विचार-दृष्टिसे देखा जाय तो यह काम मानवी सत्तासे बाहर नहीं है। परब्रह्म परमात्माने संसार-की सारी शक्ति मनुष्यमें भर दी है; ऐसा एक भी काम नहीं है, जिसे पूरा करनेकी शक्ति उसमें न हो। यहाँतक कि मृत्युको भी दूर भगानेकी शक्ति मनुष्यमें मौजूद है। इसे सुनकर साधारण बुद्धिके लोग अविश्वास करेंगे; किन्तु इसमें अविश्वास करनेकी कोई बात नहीं है। यदि आप दृष्टि पसारकर देखें—या स्वयं थोड़ा कष्ट करके संयम करें तो इसका प्रत्यक्ष अनुभव आपको हो सकता है। देखिये न, पितामह भीष्मको इच्छामृत्यु प्राप्त थी—यानी जब-तक जीना चाहते, जी सकते थे। क्या इस बातको आप झूठ मानते हैं? यदि हाँ, तो आप भूल करते हैं। वास्तवमें भीष्मपितामहने मृत्युपर विजय प्राप्त की थी, और उस प्रकारकी विजय हर एक मनुष्य पा सकता है। अच्छा तो वह कौनसा यत्न है, जिससे भीष्मजीने मृत्युको अपने वशमें कर लिया था? उस यत्नका नाम

है, अखण्ड ब्रह्मचर्य-ब्रत-पालन। भीष्मजीने यही यत्न किया था। पहले इनका नाम था—देवव्रत। पिताके दूसरे विवाहके लिए जन्म-भर ब्रह्मचारी रहनेकी कठिन प्रतिज्ञा करनेपर इनका नाम भीष्म पड़ गया। बाद वंशका नाश होते देखकर इनकी विमाताने इन्हें विवाह करनेकी आज्ञा दी। व्यासदेव जोकि इनके गुरु थे, उन्होंने भी इसके लिए बहुत समझाया-बुझाया; किन्तु दृढ़-प्रतिज्ञ और मनस्वी भीष्मने जरा भी अपना प्रण नहीं छोड़ा। दोनोंके बारम्बार कहनेपर ब्रह्मचारी महाराज भीष्मने अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया:—

त्यजेच्च पृथिवी गन्धमापश्चरसमात्मनः।
ज्योतिस्तथा त्यजेद्रूपं वायुः स्पर्श गुणंत्यजेत्॥
विक्रमं वृत्रहाजह्याद्धर्मं जह्याच्च धर्मराट्।
नत्वहं सत्यमुत्सृष्टुं व्यवसेव कथं च न॥

—महाभारत

अर्थात्—"चाहे भूमि अपने गुण-गन्धको छोड़ दे, जलमें तरलत्व न रह जाय, सूर्य अपने तेजको त्याग दें, वायु भी अपने स्पर्श-गुणको छोड़ दे, इन्द्र पराक्रम-हीन हो जायँ और धर्मराज धर्मको त्याग दें, किन्तु मैं कभी भी अपने प्रणसे विचलित नहीं हो सकता।" इस प्रकार भीष्मजी आजीवन अपने संकल्पपर डटे रहे। यही कारण है कि उन्होंने मृत्युपर विजय पायी थी। आज देशमें ऐसे कितने लोग हैं? शायद आप यही कहेंगे कि एक भी नहीं।

तो फिर आप ही बतलाइये कि इसके बिना मृत्युपर विजयी कौन हो सकता है ? किन्तु दुःख तो इस बातका है कि देशमें मूर्खताकी मात्रा इतनी बढ़ गयी है कि उक्त कार्यके लिये उद्योग करना, उस-पर तत्पर होना तो दूर रहा, लोग यही कहकर ऐसी बातोंको टाल देते हैं कि 'वह युग और ही ढंगका था, उस समयके लोग मनुष्य-कोटिमें नहीं थे, देवता थे।' कितने आश्चर्यकी बात है कि वह युग और यह युग क्या ? क्या युग कोई काम कर देता है ? काम तो मनुष्यहीको करना पड़ता है ! फिर युगकी दुहाई देना किस कामका ? रही दूसरी बात मनुष्य और देवताकी। हम भी मानते हैं कि भीष्म इत्यादि देवता-तुल्य ही थे। पर प्रश्न तो यह है कि वह लोग किन कामोंसे देव-तुल्य हुए। यदि यह कहा जाय कि उस समयके लोग ही देव-तुल्य थे, तो हम कहते हैं कि कंस, शिशुपाल, जरासिन्धु आदि महान अत्याचारी भी तो उसी युगमें थे, फिर इन्हें भी देवता क्यों न कहा जाय। इसलिए यह मानना पड़ेगा कि मनुष्य अपने कर्मकी उच्चता और नीचतासे ही पूज्य और निन्द्य समझा जाता है तथा भीष्मादि ने अपने कर्मके प्रतापसे ही मृत्युको वशमें कर लिया था।

कूप-मंडूकवत् विचार करनेसे काम नहीं चल सकता। मनुष्य को आंखें खोलकर संसारको देखना चाहिए। यदि आज वायुयान आपके ऊपरसे उड़ता हुआ दिखायी न देता—किन्तु दूसरे देशमें उड़ता होता, तो क्या आप कभी विश्वास करते ? मेरी समझसे

शायद आप यही कहकर यह समाचार कहनेवालेको दुतकार देते कि "क्या वाहियात बकते हो, ऐसा कभी नहीं हो सकता; अरे रामवतारमें पुष्पक विमान था, तो वह ईश्वर थे,—आज ऐसी चीज कौन बना सकता है, जो ऊपर-ऊपर उड़े।" किन्तु वही आश्चर्य्यजनक आविष्कार जब आप आँखों देख रहे हैं, तब कुछ नहीं सोचते। इन अनेक प्रकारके आविष्कारोंसे आपको उद्योगी होना चाहिए और हर कामके लिए साहस करना चाहिए। यह सोचकर अपनी उन्नति करनेके लिए कमर कसकर तैयार हो जाना चाहिए कि मनुष्य सब कुछ कर सकता है, ईश्वरने सब काम करनेकी शक्ति मनुष्य-शरीरमें भर दी है। देखिये महर्षियोंने क्या कहा है:—"उद्योगिनः किन्तु करोति साधनम्।" यानी उद्योगी मनुष्य संसारमें ऐसा कौनसा काम है, जिसे नहीं कर सकता? तात्पर्य्य यह कि उद्योगी पुरुष सब कुछ कर सकता है। शास्त्रमें ऐसे ऐसे अमूल्य पदोंको देखते हुए भी यदि देशकी आँखें न खुलें तो यह दुर्भाग्यके सिवा और क्या कहा जा सकता है? किन्तु यहाँ तो लोग "दैव-दैव आलसी पुकारा" को चरितार्थ करना ही जानते हैं।

जिस प्रकार और सब शक्तियाँ मनुष्यमें मौजूद हैं, उसी प्रकार अपनी इच्छाके अनुसार सन्तान पैदा करना भी मनुष्यके ही हाथ में है। यदि वह शक्तिके रहते हुए भी उसे काममें न लावे तो इसमें दोष किसका है? अब यह कहा जा सकता है कि अपनी

इच्छाके अनुसार किस रीतिसे सन्तान पैदा की जा सकती है ? अच्छा सुनिये :—

स्वेच्छानुसार सन्तान पैदा करनेके लिए सबसे बड़ी बात तो यह है कि विश्वास रखना। स्त्री-पुरुष दोनोंके मनमें दृढ़ निश्चय हो जाना चाहिए कि हमारी सन्तान अवश्य अमुक स्वभावकी और अमुक रूप-रंगकी ही होगी। जिस मनुष्यके मनमें ऐसी धारणा नहीं रहेगी, उसे कदापि सफलता नहीं मिल सकती। कारण यह कि प्रत्येक वस्तुकी सफलता-असफलता मनपर ही निर्भर करती है। मनोयोगका अभ्यासी इस बातको अच्छी तरह जानता है कि मनमें कितनी बड़ी और अपूर्व शक्ति है। गीतामें भगवान श्रीकृष्णने कहा भी है :—

मन एव मनुष्याणां कारणं वन्ध मोक्षयोः।

—गीता

मन ही मनुष्यको दास बनाता है, मन ही उसे डरपोक बनाता है और मन ही मनुष्यको स्वर्ग या नर्कमें ले जाता है। एक जगह भगवानने और भी कहा है कि जिस मनुष्यकी जैसी भावना होती है, वह उसी प्रकारका हो जाता है। इस कथनसे यह सिद्ध होता है कि परमात्मा कल्पवृक्ष हैं। जिस प्रकार कल्पवृक्षके नीचे बैठकर मनुष्य जिस वस्तुकी चिन्ता करता है, वह तुरन्त ही उसके सामने आ जाती है, उसी प्रकार परमात्माकी सृष्टिमें मनुष्य जैसी भावना करता है, वैसा ही उसे फल मिलता है। इसलिये स्त्री-पुरुषकी

जैसी सन्तान पैदा करनेकी इच्छा हो, वैसी ही दोनोंकी दृढ़ भावना होनी चाहिए ।

यह मनोबल कितना काम करता है, इसके लिए एक उदाहरण दिया जाता है। जिस समय बाबर अपनी वृहद् सेना लेकर भारत-को अपने अधिकारमें करनेके लिए आया है, उस समय स्वदेश-हितैषी और कर्त्तव्य-परायण महाराजा संग्रामसिंह देशकी रक्षाके लिए अपनी राजपूत सेना लेकर उसके सामने आये। महाराणाकी वीरता और रण-नीतिज्ञतासे मुसलमानोंके सर्वनाशकी तैयारी हो चली, इतनेमें अकस्मात् देशद्रोही भरतपुरके राजा—जोकि उस समय महाराणाके अधिकारमें होनेके कारण क्षुद्रक्षेत्रमें उनका साथ देनेके लिए आये थे, अपनी तीस हजार सेना लेकर बाबरसे जा मिले। इस बातको सुनते ही महाराणाकी सेनाका उत्साह घटने लगा; किन्तु ज्योंही यह बात महाराणाको मालूम हुई, अविलम्ब वह सेनाके आगे आये और वीरताके साथ ललकारते हुए उन्होंने अपने सैनिकोंको फिर उत्साहित कर दिया। सेनामें इतना जोश भर गया कि उसने फिर बड़ी तेजीसे शत्रु-सेनापर आक्रमण किया। फलतः शत्रुकी सेनाके पैर उखड़ने लग गये। शत्रु-सेना भागना ही चाहती थी कि भारतके अभाग्यसे एक तीर महाराणाके मस्तक पर लग गया। तीर लगते ही महाराणा मूच्छित होकर गिर गये। सेनामें चारों ओर यह बात विद्युत्-गतिसे फैल गयीः—"महाराणा-का शरीर-पात हुआ।" यह बात मालूम होते ही जो सेना अपने

पराक्रम और शूरतासे शत्रु-सेनाको भगाना ही चाहती थी, वही युद्धभूमिसे मनोबलका ह्रास हो जानेके कारण भाग खड़ी हुई। परिणाम यह हुआ कि भारत दासत्वकी बेड़ीमें जकड़ उठा।

अब पाठकगण समझ सकते हैं कि अकेले महाराणाके गिर जानेसे ही विजयिनी राजपूत-सेनाकी हार क्यों हुई। दूसरा उदाहरण नादिरशाहका दिया जा सकता है। एक बार वह शत्रु-सेनासे हार-कर भागा। उसकी सारी सेना तितर-बितर होगयी। शत्रु सेनाके दो सवार जोकि नादिरको पहचानते थे, इनाम पानेकी लालचसे, मारनेका भय प्रदर्शित करनेके लिए उसके पीछे हो लिये। नजदीक आनेपर नादिरशाहने उन दोनोंको देखा। पर वह अपने विचारोंमें इतना तल्लीन था कि उसने इन दोनोंकी कोई परवाह न की। थोड़ी ही देरमें सवार बिलकुल निकट आ गये। तब उसे जान बचानेकी सूझी। बड़ी विकट समस्या उसके सामने उपस्थित हुई। नाना प्रकारकी चिन्ताएँ करने लगा। इतनेमें उसे अपनी आज्ञा-शक्तिकी याद आ गयी। सोचा, आजतक मेरी आज्ञाका उल्लंघन कभी किसी-ने नहीं किया। क्या आज मैं इतना मामूली आदमी होगया कि मेरा वह प्रभाव जाता रहा? कहा कि नहीं, ऐसी किसीकी हिम्मत नहीं, जो मेरी आज्ञाका उल्लंघन कर सके। देखता हूँ, मेरी आज्ञाका उल्लंघन कैसे होता है। इस विचारको दृढ़ करते ही उसने अपने घोड़ेकी चाल धीमी कर दी। दोनों शत्रु-घुड़सवार उसपर हमला करना ही चाहते थे कि उसने एक सवारसे प्रभावान्वित शब्दोंमें

कह,—अपने साथीका सिर अभी काट ले। उसने ऐसा ही किया। फिर क्या था, नादिरकी हिम्मत बढ़ी और उसने अपनी बिखरी हुई सेनाको पुनः एकत्र करके युद्ध किया और विजय पायी। इसका नाम है मनोबल। कहावत भो है कि, "मनके हारे हार है, मनके जीते जीत।" मनुष्य जिस बातको अपने मनमें दृढ़ निश्चय कर लेता है, उसमें उसे अवश्य सफलता प्राप्त होती है—यह अटल बात है।

इसलिए यदि मनुष्य अपने मनमें दृढ़ निश्चय कर ले कि हम अमुक प्रकारकी ही सन्तान पैदा करेंगे और फिर शास्त्रविहित रीतिसे काम करे, तो अवश्य उसकी इच्छाके अनुसार ही सन्तान पैदा हो सकती है। इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है। अब हम मनोबलकी शक्तिको संक्षेपमें स्पष्ट करके आगे उन यत्नोंको भी लिख देना आवश्यक समझते हैं जिनके द्वारा मन-वाँछित सन्तान उत्पन्न की जा सकती है।

जिस रूप और चरित्रका बालक पैदा करना हो, उसी रूप और चरित्रवाले मनुष्यका स्त्रीको चिन्तन करना चाहिए। देखिये, हमारे पूर्वज बाग्भट्टजीने भी लिखा है:—

इच्छेतां यादृशं पुत्रं तद्रूप चरितांश्चतौ।
चिन्तयेतां जनपदांस्तदाचार परिच्छदौ॥

—बाग्भट्ट

अर्थात् जैसे पुत्रकी इच्छा हो वैसे रूप और चरित्रवाले

पुरुषका चिन्तन करना चाहिए। वैद्यक-शास्त्रने इस विषयपर एक जगह और भी लिखा है:—

पूर्वंपश्येदृतुस्नाता यादृशं नरमङ्गना ।
तादृशं जनयेपुत्रं ततः पश्येर्त्पति प्रियम् ॥

अर्थात्—ऋतुस्नानके बाद स्त्रीको वही आकृति देखनी चाहिए, जिस आकृतिकी सन्तान वह पैदा करना चाहती हो। पतिको अथवा जो अधिक प्रिय हो उसे ही देखना उत्तम है।

दूसरी बात है, दिनोंका विचार। जैसे कि पीछे लिखा जा चुका है, युग्म रात्रियोंमें गर्भाधान करनेसे पुत्र और अयुग्म रात्रियोंमें गर्भ रहनेसे कन्या पैदा होती है।

तीसरी बात है, प्रेम! इसके विषयमें पीछे बहुत कुछ लिखा जा चुका है। इच्छाके अनुसार सन्तान उत्पन्न करनेके लिए स्त्री-पुरुषमें प्रेमका होना नितान्त आवश्यक है। यदि दम्पतिमें प्रेम नहीं होता तो पहले तो गर्भ स्थित ही नहीं होता और यदि होता भी है तो उससे पैदा होनेवाली सन्तान झगड़ालू और क्रूर-स्वभाव की अवश्य होती है। उत्तम स्वभाव और गुणकी सन्तान पैदा करनेके लिए दम्पतिको एकाकार हो जानेकी बड़ी भारी जरूरत रहती है। और दोनोंके मन एक स्वरमें तभी बोल सकते हैं, जब दोनोंमें प्रेमकी अधिकता रहती है, दोनों एक दूसरेके स्वभावसे परिचित रहते हैं तथा एक दूसरेके मनमें पैदा होनेवाली बातको बिना प्रकट किये ही मनोबलसे जान लेनेकी शक्ति प्राप्त कर लेते

हैं। यदि इसका अभाव रहता है तो इच्छा पूर्ण होनेमें सन्देह रहता है। कारण यह कि पहले तो दोनोंके विचार मिलते ही नहीं और यदि इस कामके लिए विचार मिलानेकी चेष्टा भी की जाती है तो वह निष्फल होती है—चाहे ऊपरसे विचारोंकी एकता मालूम हो, पर उनका भीतरी मिलान कभी नहीं होता।

चौथी बात है, वीर्यकी अधिकता। मनु महाराजका कथन है:—

पुमान्पुन्सोऽधिकेशुक्र स्त्रीभवत्यधिकेस्त्रियः।

यानी पुरुषके वीर्याधिक्यसे पुत्र और स्त्री-रजकी अधिकतासे पुत्र उत्पन्न होता है। इसलिए दोनोंको अपने वीर्यकी पुष्टिके लिए पूर्ण रीतिसे यत्न करना उचित है और उसकी पुष्टि होती है। एकमात्र ब्रह्मचर्यसे। आयुर्वेदका मत भी मनु महाराजके कथन ही समर्थन करता है। वाग्भट्टजीने लिखा है:—

शुक्रस्यावाहुल्याज्जायते पुमान् रक्तस्यस्त्री।

अर्थात्—पुरुष-वीर्यकी बहुलतासे पुत्र और स्त्री-रजकी अधिकतासे कन्याकी उत्पत्ति होती है।

यहाँपर यह प्रश्न किया जा सकता है कि यह कैसे मालूम हो सकता है कि पुरुष-वीर्यकी अधिकता है या स्त्री-आर्त्तवकी? इसकी सबसे उत्तम और बोध-गम्य रीति यह है कि यदि पुरुषका दाहिना अंडकोष ऊपर और बायाँ नीचे रहे तो समझना चाहिए वीर्यकी अधिकता है। गर्भाधानके समय यदि ऐसा ही रहता है और गर्भाधान हो जाता है तो अवश्य ही पुत्र पैदा होता है; किन्तु

यदि बायाँ अंड ऊपर और दाहिना नीचे रहता है तो कन्या उत्पन्न होती है। स्त्री तथा पुरुष दोनोंके दो-दो अंडकोष होते हैं और दोनोंमें ही पुत्र-कन्या दोनोके पैदा करनेकी शक्ति होती है। पुरुषके दाहिने अंगमें पुत्र और बायेंमें कन्या पैदा करनेका वीर्य होता है। इसी प्रकार स्त्रीके दाहिने अंगमें पुत्र और बाँयेंमें कन्या उत्पन्न करनेवाला रज रहता है। पुरुषके दाहिने अंडकोषसे निकला हुआ वीर्य स्त्रीके दाहिने अंडकोषमें और बाँयेंसे निकला हुआ बायें में मिश्रित होता है। पुरुषका जो अंडकोष ऊपरको उठा रहता है, उसीसे होकर वीर्य बाहर निकलता है। यह डाक्टर पी० एच० सिक्स्ट एम० डी० का सिद्धान्त है। इस विषयके और भी बहुतसे अनुभवी विद्वानोंका कहना है कि पुरुषके दाहिने अंडकोषसे निकला हुआ वीर्य स्त्रीके बायें अंडकोषके रजके साथ तथा पुरुषके बायें अंडकोषसे निकला हुआ वीर्य स्त्रीके दाहिने अण्डकोषके रजके साथ न तो मिलता है और न मिल ही सकता है। यह जिस ओरके अण्डकोषसे निकलता है, उसी ओरके स्त्री-अण्डकोषमें मिलता है। यह बिलकुल तय बात है। इसलिए पुत्रकी इच्छावालेको संयोगके समय दाहिने अंडकोषसे और पुत्रीकी इच्छावाले मनुष्यको बायें अंडकोषसे वीर्य बाहर निकलना उचित है।

अब यह बात विचारणीय है कि दाहिने और बायें अंडकोषसे वीर्य निकालनेकी सरल युक्ति क्या है? मान लीजिये कि एक मनुष्य पुत्र उत्पन्न करना चाहता है, पर जिस समय वह गर्भाधान

करना चाहता है, उस समय उसका बायाँ अंडकोष ऊपरको उठा हुआ है और ऊपरके कथनानुसार मनोऽर्थकी सिद्धिके लिए उठा होना चाहिए दाहिना। अब ऐसी अवस्थामें उसे क्या करना चाहिए? इस दशामें उस मनुष्यके लिए डाक्टर सिक्स्ट तो सिर्फ़ विशेष रीतिसे सोनेके लिए कहते हैं; किन्तु डाक्टर ट्राल महाशय इतनेसे ही सन्तोष नहीं करते। उनका कथन है कि, सम्भव है, इस प्रकारसे इच्छित अंडकोषसे वीर्य न निकलकर उसके विपरीत दूसरेसे निकल जाय। इसलिए सबसे अच्छा और निरापद यत्न यह है कि, मनुष्यको जिस अंडकोषसे वीर्य बाहर निकालना हो उसको वह ऊपर उठा ले। ऐसा न करनेसे ऊपर उठा होनेके कारण वीर्य उसी अंडकोषसे होकर बाहर निकलेगा। ऊपर उठानेके सम्बन्धमें उक्त डाक्टरका कथन है कि जिस अण्डकोषको ऊपर उठाना हो, उसको ऊपर ऊठाकर लँगोटसे बाँध देना चाहिए और दूसरेको खुला रहने देना चाहिए। ऐसा करनेसे एक अंडकोष खुला रहनेके कारण स्वाभाविक ही नीचे उतर आवेगा और दूसरा कसा रहनेके कारण ऊपरको उठा रहेगा।

ऊपर जो रीति बतलायी गयी है, वह ठीक है और जहाँतक हो सके उसके अनुसार करना भी चाहिए। अब हम अपने पूर्वजों के बतलाये हुय यत्नकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित करते हैं। हमारी धारणा है कि हमारे महर्षियोंका बतलाया हुआ उपाय अधिक सुगम और उत्तम है। आर्य विद्वानोंका कथन है कि "यदि

नासिका का दाहिना छिद्र चलते समय गर्भाधान किया जाता है तो पुत्र और बायाँ छिद्र चलते समय गर्भाधान करनेसे कन्या के उत्पन्न होती है। जान पड़ता है कि हमारे पूर्वजोंके इस सिद्धान्त आधारपर पाश्चात्य विद्वानोंने ऊपरकी बात ढूँढ निकाली है और दोनों बातोंका तात्पर्य एक ही है। क्योंकि दाहिना श्वास चलते समय सदैव दाहिना अंड ऊपरको उठा रहता है और बायाँ श्वास चलते समय बायाँ। इस बातकी सत्यताको पाठकगण अनुभव करके देख सकते हैं। चूँकि भारतीय विज्ञानमें सूक्ष्मता अधिक थी, इसलिए उनलोगोंने श्वाससे परीक्षा करनेके लिए बतलाया और पाश्चात्य उन्नतिमें स्थूलता और बहिरंगता है अतः उन्होंने अंडकोषके द्वारा परीक्षा करनी बतलायी।

शास्त्रकारोंने स्त्रीको पुरुषके बाम भागमें रहनेके लिए आदेश किया है। यह भी युक्ति-शून्य कथन नहीं है। बात यह है कि इस प्रकार सोनेसे पुरुषका दाहिना श्वास अनायास ही चलने लगता है। इस विषयमें एक यूरोपियन पादरीने भी लिखा है कि "मैं हमेशा अपनी स्त्रीकी दाहिनी ओर सोया करता था। उन दिनों मेरे तीन बच्चा पैदा हुए और तीनों ही पुत्र थे। कुछ दिनोंके बाद किसी कारणवश मुझे विदेशमें रहना पड़ा और मैं अपनी स्त्रीके बाम भागमें सोने लगा। फल यह हुआ कि दो लड़कियाँ पैदा हुईं।" इसका कारण वही श्वास मालूम होता है। क्योंकि बायीं करवटसे सोनेपर बायाँ स्वर और दाहिनी करवटसे सोनेपर दाहिना स्वर चलता है।

इससे यह बात सहजहीमें जानी जा सकती है कि दाहिने अंडकोषसे वीर्य निकलनेके लिए दाहिना स्वर चलनेकी और दाहिना स्वर चलनेके लिए बायीं करवटसे सोनेकी आवश्यकता है। या यों कहिये बायीं करवटसे सोनेपर दाहिना स्वर चलता है और दाहिना स्वर चलनेसे दाहिना अण्डकोष ऊपरको उठता है तथा दाहिने अण्डकोषके ऊपर उठनेसे पुत्र उत्पन्न करनेवाला वीर्य निकलता है। कन्या उत्पन्न करनेके लिए ठीक इसका उल्टा करना उचित है। यद्यपि इस प्रकारसे सोनेमें स्त्रीका रज पुरुष-वीर्यसे भिन्न अण्डकोषमें पैदा होता दिखलायी पड़ता है, पर वास्तवमें यह बात नहीं है, इसे विद्वानोंने सिद्ध कर दिया है। इसके विषयमें मानव-सन्तति-शास्त्रके लेखक मुंशी हीरालाल जालोरीने अपनी उक्त पुस्तकमें अपने मित्र डाक्टर शिवप्रसादका कथन इस प्रकार उद्धृत किया है:—पुरुषके समान ही स्त्रीके भी दो अण्डकोष होते हैं; एक गर्भाशयकी दाहिनी ओर और दूसरा बायीं ओर। योनि और अण्डकोषको जोड़नेवाली एक और नली होती है। "यह नली प्रायः अण्डकोषसे जुदी रहती है और गर्भोत्पत्तिकालमें स्त्री-अवयवके रति-सेवनद्वारा उत्तेजित होनेपर अण्डकोषसे जा मिलती है तथा वीर्यको उत्पन्न करके योनिमें पहुँचती है।" आगे चलकर आप लिखते हैं कि "जिस प्रकार दाहिना श्वास पुरुषके दाहिने अण्डकोषको ऊपर बढ़ाता है और बायाँ बायेंको, उसी प्रकार स्त्रीका दाहिना श्वास चलते समय दाहिनी ओरकी नली

ऊपरको उठी हुई रहती है और ऊपर उठी हुई रहनेके कारण अण्डकोषसे नहीं मिलने पाती, इसलिए उससे वीर्य नहीं निकलने पाता। इसी प्रकार बायाँ श्वास चलते समय बायीं ओरकी नली ऊपर उठी रहनेके कारण अण्डकोषसे नहीं मिलने पाती; जब नहीं मिलती, तो उस अण्डकोषसे वीर्य कैसे निकल सकता है ? इससे सिद्ध हुआ कि जो नली श्वासद्वारा ऊपर खिंची हुई रहती है, तत्सम्बन्धी अण्डकोषसे न मिल सकनेके कारण वीर्य उत्पन्न कर योनितक लानेमें असमर्थ रहती है और जो नली खिंची हुई नहीं है—स्वतंत्र है—वह उससे सम्बन्ध रखनेवाले अंडकोषसे मिलती है और उसीसे वीर्य उत्पन्न कर योनिमें पहुँचा देती है।"

हमारे आचार्यों ने मनोबलको ही प्रधान माना है। स्थान-स्थानपर इस बातका प्रमाण मिलता है कि पुत्र प्राप्तिके लिए संयोगके समय पुरुषका मनोबल खूब बढ़ा हुआ होना चाहिए। मनोबलके बढ़ा हुआ होनेसे ही वीर्यकी पुष्टि हो जाती है। इसी प्रकार स्त्रीके खूब अधिक कामोत्तेजन होनेकी जरूरत रहती है। यानी पुरुषके मनोबल और स्त्रीके कामोत्तेजनसे पुत्रकी उत्पत्ति होती है। यदि विचारकर देखा जाय तो पता लगेगा कि पुरुषका मनोबल अधिक होनेसे ही वीर्य पुष्ट हो जाता है। पुरुषके कामासक्त हो जानेसे ही उसका वीर्य निबल पड़ जाता है। कारण यह कि अधिक कामोत्तेजना हो जानेसे बिना आवश्यक क्रिया किये ही पुरुषका वीर्य पतला होकर बाहर निकलने लगता है और मनोबल ठीक रहनेसे ऐसा नहीं होता।

पाँचवीं बात है, आठ-नौ दिन बिताकर गर्भाधान करना। ऋतु-कालसे आठ-नौ दिनतक स्त्रीमें अधिक कामोत्तेजना रहती है; बाद वह क्रमशः कम होती जाती है। इसलिए स्त्रीमें रजकी निर्बलता आ जानेके कारण स्वाभाविक ही पुरुष वीर्य बलवान रहता है और पुत्रकी उत्पत्ति होती है। इससे भी यही स्थिर होता है कि मासिक-धर्मसे आठ-दस दिनके बाद संयोग करना चाहिए और पुरुषको कामासक्त न होकर अपने मनोबलको खूब बढ़ाये रखना तथा स्त्रीमें कामोत्तेजना पैदा करके उसकी रज-शक्ति कम कर देना पुत्रार्थीके लिए अत्यन्त आवश्यक है।

एक लेडी डाक्टर (Francis Mammitor Yeory) का कहना है कि, पाँच रत्ती सोडा, दस छटाँक गरम जलमें डालकर सोल्यूशन तैयार कर ले। इस पानीसे स्त्रीको अपनी योनि धोकर साफ करनी चाहिए। ऋतुकालसे तीन दिन पहले मैथुन करे। शय्यापर सोनेके पहले ही मैथुनमें प्रवृत्त हो जाय। स्खलित होनेके बाद स्त्री-पुरुषको पाँच मिनटतक उसी दृश्यमें रहना चाहिए। स्त्रीको चाहिए कि वह अपने दाहिने कुचपर हाथ रक्खे रहे। पुरुषके अलग होते ही दाहिनी करवट होकर कुछ देरतक (यानी जितनी देर रह सके) इसी करवट केवल पड़ी रहे। पुत्रीकी इच्छा करनेवाली स्त्रीको पिछली रात गर्भ धारण करना चाहिए और दाहिनी करवटके बदले बायीं करवटसे ऊपरकी क्रिया करनी चाहिए।

गर्भके तीसरे महीनेमें स्त्री अपने गर्भस्थित पुत्रको पुत्री और

पुत्रीको पुत्र भी बना सकती है लेकिन यह बात तभी हो सकती है, जब कि स्त्रीकी संकल्प-शक्ति खूब बढ़ी हुई हो, अन्यथा एक तीसरी ही बात पैदा हो जानेकी सम्भावना रहती है। 'मानव-सन्तति-शास्त्र' के लेखकने उक्त पुस्तकमें लिखा है:—

मेरे परम मित्र डाक्टर शिवप्रसादजी जिस समय कोटाअस्पतालमें थे, अपनी आँखोंसे देखा हुआ हाल इस प्रकार बयान करते हैं—"कोटा राज्यके चीफ मेडिकल आफिसर मि० मेकवाट साहबके समयमें एक व्यक्तिको क्लोरोफार्म सुँघाकर मूर्च्छित किया गया, क्योंकि उसका आपरेशन (नश्तर) करना था। उसे मूर्च्छित करके ज्यों ही उसका शरीर खोला गया तो हमें यह देखकर महान् आश्चर्य हुआ कि उसके शरीरमें स्त्री और पुरुष दोनोंके चिह्न मौजूद हैं। ये दोनों अवयव मुँद नहीं गये थे, बल्कि ठीक दशामें सबल और सजीव थे। जब वह व्यक्ति होशमें लाया गया, तब-उससे पूछा गया। उसने कहा कि, मैंने दोनों अवयवोंका उपयोग किया है; किन्तु गर्भ रह जानेके भय और लज्जाके कारण स्त्री; अवयवसे काम लेना छोड़ दिया है।"

ऐसी ही एक और घटनाका भी उल्लेख किया है:—

मेरवाड़ा जिलामें एक लड़का पैदा हुआ। उसने वयस्क होनेपर मैट्रिक पास किया। इन्हीं दिनों उसके बापने एक कन्याके साथ उसका विवाह कर दिया; क्योंकि उसके पुरुष होनेमें किसी तरहका किसीको भी शक नहीं था। विवाह हो चुकनेपर मालूम हुआ
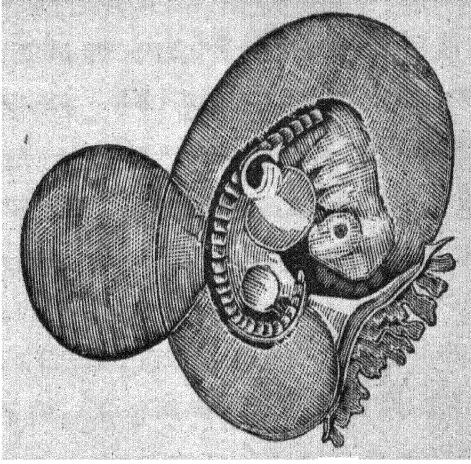
चित्र नं॰ ४, पहला महीना। पृष्ठ संख्या १२३
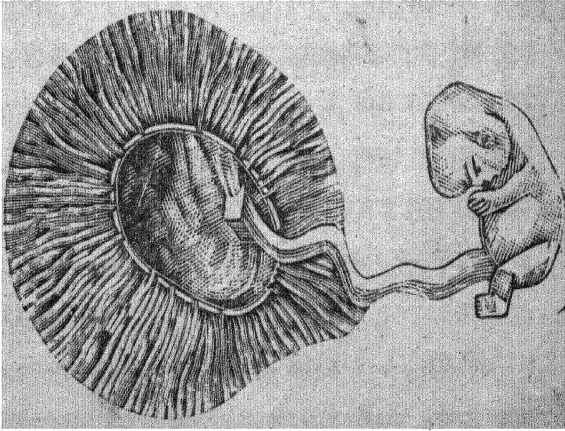
चित्र नं॰ ५ दूसरा महीना। पृष्ठ संख्या १२३

कि वह स्त्रीके कामका नहीं है । उसकी डाक्टरी परीक्षा करानेपर मालूम हुआ कि वह वास्तवमें स्त्री है। स्त्री-चिह्नपर नाम मात्रके लिए पुरुष-चिह्न बना हुआ है। पुरुष-चिह्न निरर्थक होनेके कारण काट दिया गया। इस कृत्रिम पुरुष-चिह्नके हटाते ही शुद्ध, निर्दोष स्त्री-चिह्न प्रकट होगया। वह व्यक्ति पुरुषसे अब स्त्री हो गया अतएव वह और उसकी विवाहिता स्त्रीकी एक अन्य पुरुषसे शादी कर दी गयी ।

उक्त घटनाओंसे सिद्ध होता है कि स्त्रीके मनमें निर्बलतापूर्ण सन्दिग्धात्मक भाव पैदा होनेके कारण ही ऐसे बच्चे पैदा होते हैं। इतना ही नहीं, कभी-कभी विकृताकारके बच्चे भी हो जाया करते हैं। ऐसे बच्चोंको बहुधा लोग राक्षस कहा करते हैं । वास्तवमें भिन्न आकृतिके बच्चे पैदा होनेका मूल कारण भी वही माताकी अस्थिरता ही है । यदि वह गर्भावस्थामें अपने विचारोंको ठीक रक्खे और मनःशक्तिद्वारा गर्भस्थ बालकके अंग-प्रत्यंगको खूब सावधानीसे तैयार करे तो ऐसा कभी न हो। इच्छा शक्तिके द्वारा स्त्री सब कुछ कर सकती है। इस शक्तिका परिचय इसी प्रकरणमें बहुत कुछ कराया जा चुका है, फिर भी यहाँ दो एक उदाहरणोंका दे देना अनावश्यक न होगा ।

अरबका प्रसिद्ध वैद्य एवीसेनाका कथन है:—"एक मनुष्य अपनी मनःशक्तिके द्वारा अपने शरीरके चाहे जिस अङ्गको जड़ बना देता था ।"

एक बार मैं इलाहाबादसे आ रहा था। ट्रेनमें हिन्दू यूनिवर्सिटी (काशी) के एक छात्रसे भेंट हुई। वह मेरे बगलमें ही बैठे हुए थे। नाम याद नहीं है। वार्तालाप होनेपर मालूम हुआ कि वह एक अच्छे तैराक हैं और एक साल चुनारसे तैरकर काशी आनेके लिए जो तीन इनाम रखा गया था, वह इनाम सब तैराकोंसे पहले या दूसरे नम्बरमें आनेके कारण उन्हें मिला था। मैंने पूछा, इतनी दूर तैरकर आनेमें आपलोग थकते नहीं? उन्होंने कहा,—"बात यह है साहब, कि अभ्यास करते-करते तैरनेवालोंकी मानसिक शक्ति (Mental Power) इतनी अधिक हो जाती है कि वे समूचे शरीरको निर्जीवसा बनाकर सारी शक्तिको चाहे जिस अंगमें ला सकते हैं। इस शक्तिसे ही तैराक अपने सब अंगोंको बारी-बारीसे अवकाश दिया करता है। हमलोग ऐसा ही करते हैं। हाँ, पीछे थकावट जरूर मालूम होती है। जिस वक्त हमलोग चुनारसे तैरकर काशी पहुँचे, उस वक्ततक तो चेतना बनी हुई थी। यह अच्छी तरहसे मालूम हुआ कि मैं गन्तव्य स्थानपर आ गया। पर ज्यों ही किनारे पहुँचा और मनःशक्तिको ढीली कर दी त्यों ही बेहोश होगया। अधिकारियोंने पकड़कर बाहर निकाला। डाक्टरी औषधियोंद्वारा शरीरका पानी निकाला गया। काफी वस्त्रसे ढँककर तथा अन्यान्य उपायोंद्वारा शरीरमें गर्मी पहुँचायी गयी। किन्तु ये सब बातें मुझे तब मालूम हुईं, जब होश हुआ और मित्रोंने सारा दास्तान कहा।"

जगद्गुरु श्रीमच्छंकराचार्यने जब दिग्विजय करना शुरू किया, तब वह विजय करते हुए उस समयके अद्वितीय विद्वान पं० मंडन मिश्रके पास पहुँचे। जब शास्त्रार्थमें उन्हें परास्त किया, तब उनकी विदुषी धर्मपत्नीने कहा कि महाराज अभी आपने आधे अंगको ही हराया है, जब मुझे भी शास्त्रार्थमें आप हरा देंगे, तब आपकी पूर्ण विजय मानी जायगी। शंकराचार्य थोड़ी देरके लिए मौन होगये। उन्होंने सोचा कि मैं काम-शास्त्रको बिलकुल नहीं जानता। यदि यह स्त्री इसी विषयमें शास्त्रार्थ प्रारम्भ कर देगी तो अवश्य मुझे हार माननी पड़ेगी। यही सोचकर उन्होंने उस विदुषीसे कहा कि छ: महीने या ऐसे ही कुछ दिनके बाद मैं आपसे शास्त्रार्थ करूँगा। यह कहकर भगवान शंकराचार्य वहाँसे चल दिये। जब उन्हें एक राजाकी मृत्युका समाचार मिला, तब उन्होंने एक मठमें जाकर अपने शवकी रक्षाके लिए अपने शिष्योंका कड़ा पहरा बैठा, शरीर त्यागकर मनोबलके सहारे उस राजाके मृत शरीरमें प्रवेश किया। चारों ओर हल्ला होगया कि राजा जी उठे। इस प्रकार उस राजाके शरीरमें प्रवेश करके शंकराचार्यजीने रानीके साथ रहकर कामशास्त्रकी शिक्षा ग्रहण की। यह है मनोबलका प्रभाव और उसका कार्य।

अधिक समय पहलेकी बात जाने दीजिये, अभी थोड़े ही दिन हुए, स्वामी रामकृष्ण परमहंस बंगालमें हो गये हैं। उनमें यह शक्ति थी कि वह बैठे-ही-बैठे दूर-दूरकी सैर कर आते थे।

उनके भक्तोंने उनका यहाँतक चमत्कार देखा है कि एक समयमें वह अपने एक भक्तसे हरिद्वारमें मिले हैं और एक भक्तसे बंगालके अपने आश्रममें। अभीतक तो पाश्चात्य विद्वान भारतके इन यौगिक चमत्कारोंको गपोड़ा मानते थे, पर अब उनके ध्यानमें भी यह बात भारतीय आचार्योंकी शिक्षासे जमने लगी। यंग स्टीलिंगने एक स्थानपर लिखा है कि,—"एक अमेरिकन अपनी मनःशक्तिके द्वारा दूर-दूरके स्थानोंमें बहुत जल्द चला जाता था और शरीर शवके रूपमें वहीं पड़ा रहता था। एक बारका जिक्र है कि एक जहाजका कप्तान कहीं चला गया था। जब बहुत दिन बीत गये और वह नहीं लौटा, तब उस कप्तानकी स्त्रीने इस पुरुष से अपने पतिका हाल पूछा। वह पुरुष तत्काल ही पासवाली कोठरीमें गया और वहाँ पहुँचकर उसने अपने शरीरको मूर्छित कर दिया। थोड़ी देरके बाद उसके शरीरमें चेतना आयी। बोला, मैं लन्दन गया था और तुम्हारे पतिसे मिला था। उसने कहा कि अब मैं शीघ्र घर वापस जाऊँगा। जब उसका पति घर आया, तब उसने इस सिद्ध पुरुषको देखकर कहा कि यह आदमी मुझे अमुक दिन लन्दनमें मिला था। उसके पतिका बतलाया हुआ दिन ठीक उस दिनसे मिलता था, जिस दिन कि उसने उसके पतिका समाचार सुनाया था।"

भारतके इतिहासमें तो मनोबलके हजारों-लाखों नहीं अगणित उदाहरण मौजूद हैं। पर हर्षकी बात है कि उसकी इस विद्याका

प्रचार अब पाश्चात्य देशोंमें भी कुछ-कुछ होने लगा है। जिस प्रकार महाभारत युद्धके समय दिव्य-दृष्टिके प्रभावसे संजय घर बैठे युद्धक्षेत्रका सारा दृश्य देखता और दोनों आँखके अन्धे कुरु-वंशावतंस धृतराष्ट्रको सुनाता जाता था, उसी प्रकारके एक उदाहरणका उल्लेख यंग स्टीलिंगने भी किया है। उसने लिखा है—१७५९ ई० के सितम्बर महीनेके अन्तमें स्विडनवर्ग एक दिन शामके ४ बजे इंगलैंडसे आया और गोथेनवर्गमें ठहरा। सन्ध्याके समय वह बाहर गया और उदास होकर वापस लौट आया। इस समय वह मि० स्टेकलेके यहाँ भोजन करने गया था, किन्तु उसका दिल उचटा हुआ था। व्याकुलताका कारण पूछनेपर उसने कहा,—स्टॉकहोममें आग लगी हुई है और क्रमशः भयंकर रूप धारण करती जा रही है। जहाँ वह बैठा था, वहांसे स्टाकहोम लगभग २०० मीलकी दूरीपर था। वह बहुत घबड़ा गया और क्षण-क्षणपर भीतरसे बाहर और बाहरसे भीतर जाने-आने लगा। उसने कहा कि इस समय मेरे एक मित्रके घरमें आग लगी हुई है। अब आग मेरे घरके पास पहुँचना चाहती है।' रात आठ बजे वह फिर अत्यन्त प्रसन्न होकर घरसे बाहर निकला और बोला,—"परमात्माकी दयासे अब आग बुझ गयी। मेरा घर जलनेमें सिर्फ एक ही घर बीचमें था।" तीसरे दिन स्टॉकहोमसे एक आदमी आया और उसने आग लगनेका समाचार कहा।

कहनेका तात्पर्य यह कि इस मनोबलके द्वारा मनुष्य ऐसे-ऐसे

अद्भुत कार्य करके दिखला सकता है, जिन्हें लोग दैवी कार्य छोड़कर मानवी कार्य कही नहीं सकते। हमारे पूर्वज ऐसी ही सन्तान उत्पन्न करते थे। देखिये महाराज पाण्डुकी पत्नी महारानी कुन्ती देवीने जब धर्मवेत्ता पुत्रकी इच्छा की तब धर्मराज युधिष्ठिरको पैदा किया; जब महाबली पुत्रकी अभिलाषा की, तब अतुल बलशाली भीमसेन उत्पन्न हुए; जब शास्त्रप्रवीण और युद्ध-कुशल पुत्रकी इच्छा की, तब गाण्डीव धनुषधारी महाधनुर्धर अर्जुन पैदा हुए। इसलिए गर्भिणीका कर्त्तव्य है कि वह इस पुस्तकमें बतलायी हुई रीतियोंके अनुसार काम करे और जिस महीनेमें बच्चेका जो अंग बनता हो, उस समय उसी अंगको सुन्दर और सुडौल बनानेके लिए पूर्ण रूपसे ध्यान रखे।

संसारमें सुन्दर और गुणवान सन्तानकी इच्छा सब लोग रखते हैं तथा ऐसा न होनेसे लोग दुःखी भी होते हैं—चाहे वे अपनी आन्तरिक व्यथा किसीसे न कहें। किन्तु ऐसा कार्य बहुत ही कम लोग करते हैं जिससे उत्तम सन्तान पैदा हुआ करती है। किसी कामको प्रारम्भ करनेके पहले यदि आगा-पीछा सोच लिया जाय, तो झगड़ा काहेका? हम एक धुनसे काम करते जाते हैं, आगा-पीछा नहीं सोचते, इसीसे दिनपर-दिन हमारी दशा बुरी होती जा रही है। अपने ही हाथों अपनी जड़ काटकर पछतानेकी हमारी आदतसी पड़ गयी। कामान्ध होकर हमलोग बच्चे पैदा करते हैं, इसलिए उन बच्चोंका दुर्गुणी होना स्वाभाविक ही है। फिर जब

वे बच्चे बड़े होकर कुमार्गगामी हो जाते हैं, माँ-बापको ही पीड़ा पहुँचाने लगते हैं, तब माथेपर हाथ धरकर प्रारब्धको दोष दिया जाता है; किन्तु अपने कर्मोंका दोष कोई नहीं देता। यदि मनुष्य विचारपूर्वक काम करे, मनुष्यकी मर्यादाके भीतर रहे—निरा पशु न बन जाय, निष्ठा-पूर्वक रहकर शास्त्रकी विधिसे सन्तान उत्पन्न करे, तो पीछे काहेको रोना पड़े और क्यों कुल-कलंकियोंका जन्म हो?

—–o–—

गर्भिणीकी इच्छा-पूर्ति

गर्भिणी स्त्रीकी कभी-कभी कुछ ऐसी चीज खानेकी इच्छा होती है, जिसे वह सुगमता से नहीं पाती। ऐसी दशामें उसकी जिस चीजपर इच्छा हो, वह चीज उसे अवश्य खिला देनी चाहिए। कितनी ही स्त्रियाँ मूर्खताके कारण अपनी इच्छाको प्रकट नहीं करतीं और लज्जा के कारण उसे दबा बैठती हैं; किन्तु यह बहुत बुरी बात है। इच्छाको रोकनेसे गर्भस्थ बालकपर बड़ा ही बुरा असर पड़ता है। ऐसी स्त्रियोंकी सन्तान बहुत असन्तोषी होती है। इस बातका हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि गर्भिणी स्त्रीके दो हृदय होता है, और जो इच्छा उत्पन्न होती है, वह एक प्रकार-से उसके भीतरकी माँग होती है। इसीसे गर्भिणी स्त्रीको दौहृदिनी कहा गया है:—

चतुर्थे सर्वाङ्ग प्रत्यङ्ग विभागोहृदयप्रव्यक्तभावाच्चेतन।
धातुरभिव्यक्तो भवत्यतः नारीं दौहृदिनीमाचक्षते॥

अर्थात्—गर्भस्थित होनेके चार महीनेके भीतर गर्भस्थ बच्चेके बच्चेके अंग-प्रत्यंगका विभाग हो जाता है। भ्रूणका हृदय बननेसे साफ प्रतीत होने लग जाता है। चौथे महीनेसे एक तो गर्भके बच्चेका हृदय और दूसरा स्त्रीका हृदय होनेके कारण स्त्रीको दौहृदिनी कहा जाता है।

दौहृद कहते हैं, दौहृदिनीके इच्छितको। लिखा है:—

दौहृदविमाननात् कुब्जं खञ्जनडं—

वामनं विकृताक्षं नारी जनयति ।

तस्मात् सा यद्यदिच्छेत् तत्तत् तस्मैदापयेत् ।

अर्थात्—स्त्रीको दौहृद न मिलनेसे, कुबड़ा, अंगभंग, पंगुल, बौना, मूर्ख, विकारयुक्त नेत्रोंवाला बालक पैदा होता है। इसलिए दौहृदा स्त्री जिस बातकी इच्छा करे, उसको अवश्यमेव पूर्ण करना चहिए। सुश्रुताचार्यने लिखा है कि—गर्भिणी स्त्री तथा गर्भके बच्चेके लाभार्थ गर्भिणीकी सारी इच्छाओंको जरूर पूर्ण करना चहिए। लिखा है:—

लब्धदौहृदा हि वीर्यवन्त चिरायुषं पुत्रं जनयति ।

अर्थात्—स्त्रीको दौहृद (यानी उसकी इच्छाके अनुकूल वस्तु) मिलनेसे पराक्रमी और दीर्घजीवी सन्तान पैदा होती है।

गर्भिणीमें उत्पन्न होनेवाली इच्छाओंसे भी गर्भस्थ बालककी बड़ी सच्ची पहचान की जा सकती है। वह जैसी वस्तुकी इच्छा करती है, वैसी ही उसकी सन्तान होती है। आयुर्वेदमें लिखा है:—

रजः संदर्शने यस्या दौहृदजायतेस्त्रियाः ।

अर्थवन्तं महाभागं कुमारं सा प्रसूयते ॥

*　　*　　*　　*

आश्रमे संयनात्मानं धर्मशील प्रसूयते ।

दर्शने व्याल जातीनां हिंसाशीलं प्रसूयते ॥

इसका तात्पर्य यही है कि गर्भिणी जैसी वस्तुकी इच्छा करती

है, वैसो ही सन्तान पैदा होती है। राजाके दर्शनकी इच्छा होनेसे भाग्यवान, तीर्थ और महात्माओंके दर्शनोंकी लालसा होनेसे धर्मात्मा सन्तान पैदा होती है।

यही कारण है कि हमारे पूर्वज इन बातोंपर बहुत ही ध्यान रखते थे। उस समय आजकलकी भाँति गर्भिणीको कूड़ाखानेकी वस्तु न समझकर बड़ी सुश्रुषा, यत्न और चावके साथ रक्खा जाता था। उनके सुख-दुःखपर उनकी आवश्यकता और इच्छाओं पर पूरा ध्यान रक्खा जाता था। पति बराबर पूछा करता था। स्त्रियाँ भी अपनी इच्छा स्पष्टतया प्रकट कर देती थीं, कहनेमें व्यर्थकी मूर्खतापूर्ण लज्जा नहीं करती थीं। किन्तु आजकल ठीक इसका उल्टा हो रहा है। जिस बातमें लज्जा करनी चाहिए उसमें तो महा निर्लज्जा और जिसमें लज्जा न करनी चाहिए उसमें सलज्जा बनना इस समय स्त्रियोंका स्वभावसा हो गया है। पतियोंकी भी ऐसी ही लीला है। उनमें इस बातका ज्ञान ही नहीं रह गया है कि गर्भिणीके साथ कैसा बर्त्ताव करना चाहिए तथा उनकी इच्छाओंको जानना चाहिए या नहीं। यहाँपर हमें भगवान रामचन्द्रकी एक घटना याद पड़ गयी। सम्भव है कि उससे पाठकगण इस बातकी शिक्षा ले सकें। प्राचीन समयमें पति किस प्रकार अपनी धर्मपत्नीसे प्रत्येक आवश्यक बातका पूछना अपना धर्म समझता था तथा स्त्रियाँ भी किस तरह अपने दिलका भाव साफ साफ कह दिया करती थीं। जगज्जननी जानकी जिन दिनों गर्भवती थीं,

उन दिनों मर्यादा पुरुषोत्तम महाराज श्रीरामचन्द्रजीने उनसे पूछा :—

अपत्य लाभो वैदेहि त्वय्ययं समुपस्थितम्ः ।
किमिच्छसि वरारोहे कामः किं क्रियतां तव ॥

अर्थात्—ऐ प्रिये ! इस समय तुमने गर्भ धारण किया है। कहो तुम्हें किस वस्तुकी इच्छा है ? मैं तुम्हारी कौनसी कामना पूर्ण करूं ?

स्वामीके मुखसे उक्त प्रिय वचन सुनकर महारानी जानकी-जीने कहा :—

तपो बनानि पुण्यानि द्रष्टुमिच्छामि राघव ।
गङ्गातीरो पविष्टानामृषीणामुग्रतेजसाम् ॥

अर्थात—हे प्रभो ! पवित्र तपोवनका दर्शन करनेकी मेरी उत्कट इच्छा है। गंगातटवासी उग्र तेजस्वी ऋषियोंकी पूजा करना चाहती हूँ।

यह सुनकर रामचन्द्रजीने दूसरे ही दिन जानकीजीको बनमें भेज दिया। यद्यपि लोकापवादके कारण उन्होंने सीताजीको फिर अपने घरमें वापस नहीं बुलाया और वह महर्षि बाल्मीकिके आश्रमपर ही रह गयीं, तथापि इच्छाकी पूर्त्तिके लिए उक्त घटना उदाहरण-स्वरूप अवश्य है, इसमें सन्देह नहीं।

उक्त घटनासे पाठक-पाठिकाओंको इतनी बातोंकी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए :—

१—पतिको किस प्रकार गर्भिणी धर्मपत्नीपर खयाल रखना और उससे पूछना चाहिए।

२—दूसरी इस बातकी शिक्षा लेनी चाहिए कि गर्भिणीकी इच्छासे किस प्रकार होनेवाले बच्चेका गुण-दोष स्पष्ट रीतिसे मालूम हो जाता है। देखिये, सीताकी ऋषिमुनियोंके दर्शनकी इच्छा हुई और उनके उस गर्भसे लव-कुश सरीखे वीर तथा धर्माचारी पुत्र पैदा हुए।

३—तीसरी शिक्षा यह लेनी चाहिए कि स्त्रियोंको सीताजीकी भाँति ही अपने मनकी बात कह देना उचित है।

४—चौथी इस बातकी कि श्रीरामचन्द्रजीकी तरह ही प्रत्येक पतिको अपनी सहधर्मिणीकी इच्छा आनन-फानन पूरी कर देनी चाहिए।

५—पाँचवीं यह कि यदि स्त्री उच्च-स्वभाव और उत्तम विचारवाली हो, तो वह अवश्य उत्तम वस्तुओंकी ही इच्छा कर सकती है और यशस्वी सन्तान पैदा कर सकती है; किन्तु जिस स्त्रीका विचार ऊँचा नहीं होता, वह कदापि अपनी उत्तम इच्छाद्वारा शुभ सूचना नहीं दे सकती।

यदि गर्भिणीकी इच्छा पूरी नहीं की जाती, तो बालक लालची, असन्तोषी, अधिक रोनेवाला तथा रोगी होता है। पैदा होनेपर भी वह उसी वस्तुके वास्ते रोया करता है, जिसे न बोल सकनेके कारण जानना कठिन हो जाता है। फल यह होता है कि रोते-रोते बालकका स्वास्थ्य एकदम खराब हो जाता है। एक बार कहीं इस प्रकारकी एक बात पढ़नेमें भी आयी थी। स्मरण नहीं

हो रहा है कि कहाँ और कब ! वह बात इस प्रकार थी :—एक स्त्री गर्भिणी थी। उसकी इच्छा किसी खास किस्मकी शराब पीनेकी हुई। पर उसका पति कारण-विशेषसे अपनी स्त्रीकी इच्छा पूर्ण न कर सका। अन्तमें बालक उत्पन्न हुआ। पैदा होते ही वह बच्चा रोने लगा और लगातार कई दिनोंतक वह रोता रहा। किसी तरह भी उसका रोना बन्द नहीं हुआ। अनेक तरहके उपचार किये गये, पर कुछ भी लाभ नहीं हुआ। फिर योग्य चिकित्सकोंने उसे शराब पिलाना शुरू किया; उससे भी कुछ नहीं हुआ। बाद जब उसे उसी प्रकारकी शराब पिलायी गयी, जिस प्रकारकी शराब पीनेकी इच्छा उसने गर्भावस्थामें माताद्वारा प्रकट की थी—तब उसका रोना तत्क्षण बन्द होगया।

इससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि गर्भिणीकी इच्छा पूरी न करना कितना अनिष्टकर होता है। मान लीजिये कि यदि बच्चेकी रुचि किसी प्रकार भी मालूम न हो—जोकि सर्वथा सम्भव भी है, तो क्या हो ? हम मानते हैं कि कभी-कभी गर्भिणी-को ऐसी चीजोंकी भी इच्छा होती है, जिनसे उसे बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ सकती है; किन्तु ऐसी इच्छाको भी रोकना भारी भूल है। हाँ, इतना अवश्य करना उचित है कि यदि गर्भिणीकी इच्छा कोई ऐसी चीज खानेकी हो जो उसके लिए वास्तवमें हानिकारक है, तो वह इतनी अल्प मात्रामें खानी चाहिए जिससे किसी प्रकारकी हानि भी न हो और इच्छाकी पूर्त्ति

भी हो जाय। इस अवस्थामें सोंधी चीजें खानेका बहुत जी चाहता है; बहुतसी स्त्रियाँ पके हुए मिट्टीके बर्त्तनोंके टुकड़े तोड़-तोड़कर खाया करती हैं। यह बहुत ही अनुचित है। क्योंकि यह चीज गर्भको बहुत बड़ी हानि पहुँचाती है। इसी समयकी आदतसे कितने ही स्त्रियाँ तो हमेशाके लिए इसके सेवन करनेका बुरा रोग पाल लेती हैं। उनसे बिना खाये रहा ही नहीं जाता। यदि बर्त्तनका टुकड़ा उन्हें नहीं मिलता तो वे व्याकुल हो जाती हैं और कुम्हारके आँवेंसे मँगाकर खाती हैं। इसका फल यह होता है, कि बच्चोंको तो वे नष्ट कर ही डालती हैं साथ ही अपने स्वास्थ्यको भी रसातलमें पहुँचा देती हैं। ऐसी स्त्रियोंके शरीरपर पीलापन छा जाता है और भयंकरसे भयंकर रोग आ घेरते हैं। अतः यदि कभी गर्भिणीकी यही चीज खानेकी इच्छा हो तो उसे चाहिए कि वह इसके स्थानपर बंशलोचन खा ले। इससे गर्भ भी पुष्ट होता है और सोंधी वस्तुका स्वाद भी मिल जाता है। यदि इतनेपर भी इच्छा पूरी न हो और चित्त सोंधी मिट्टीपर ही लगा रहे तो इच्छा पूरी करनेके लिए दवाकी तौरपर एक दिन बहुत थोड़ासा उसे खा लेना चाहिए। इससे कोई हानि भी नहीं पहुँच सकती। गर्भावस्था में यदि स्त्रियाँ गरी और मिश्रीका सेवन किया करें तो बड़ा ही लाभ हो सकता है। ये दोनों ही चीजें गर्भिणीके लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। इनका सेवन करनेसे गर्भस्थ बालककी छोटी आँखें भी अवश्यमेव बड़ी हो जाती हैं और तन्दुरुस्ती भी ठीक रहती है

चतुर्थ समुल्लास
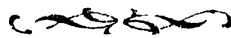
गर्भमें बालकको शिक्षा

यह बात पहले कही जा चुकी है कि माता जैसा आचरण करती है, वैसा प्रभाव गर्भस्थ बच्चेपर पड़ता है। गर्भमें बालकको माता जितनी शिक्षा दे सकती और उस शिक्षाका जितना असर पड़ सकता है, उतनी न तो और समयमें शिक्षा ही मिल सकती है और न उसका उतना असर ही पड़ सकता है। देखिये, जब अभिमन्यु गर्भमें थे, तब अर्जुनने उनकी मातासे चक्रव्यूह वर्णन किया था। पूरा वर्णन वह नहीं कर पाये थे कि अभिमन्युका जन्म हो गया। परिणाम यह हुआ कि चक्रव्यूहके युद्धमें जहाँ बड़े-बड़े योद्धा हृदयमें हार मानकर भययुक्त होगये, वहाँ कुमार अभिमन्यु बड़ी वीरताके साथ लड़े और फाटकपर फाटक जीतते चले गये। अन्तमें उस स्थलपर मारे गये, जिस स्थलका वर्णन उनके पिता

अर्जुनने नहीं सुनाया था। गर्भके बच्चोंपर इतना प्रभाव शिक्षाका पड़ता है।

प्राचीन समयमें हमारे देशकी देवियाँ जिस ढंगके बच्चे पैदा करना चाहती थीं, उसी ढंगका बालक पैदा करती थीं। ऐसे बहुत से उदाहरण हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं कि एक ही माता ने अपने एक बच्चेको सर्वस्वत्यागी बनाया, दूसरेको नीतिकुशल बनाया और तीसरेको शिल्प-कलामें दक्ष। वे माताएँ जिस गुण-वाली सन्तान पैदा करना चाहती थीं, गर्भधारण करनेपर मनोयोग-पूर्वक उसी विषयकी बातें सुन, समझ, पढ़ और विचारकर गर्भके बालकपर प्रभाव डालती थीं; किन्तु दुःख है कि आज हमारी माताओं में वे बातें नहीं रह गयीं और न उक्त विषयकी जानकारी ही रह गयी।

नैपोलियन बोनापार्ट * कितना बड़ा बहादुर था, यह सब लोग जानते हैं। जब वह अपनी माताके उदरमें था, तब उसकी माँ प्लूटार्ककी लिखी हुई जीवनीयों और ग्रीसियन वीरसाहित्यको मन लगाकर बड़े चावसे पढ़ा करती थी। नैपोलियन ऐसा क्यों हुआ, इसपर डाक्टर फाउलर ने एक स्थानपर लिखा है:—

---

* It is said that the mothers of Nepolian read Plutarch's lives and heroic literature and that her moods of mind were transferred to her son.

—Joseph Cook.

"Because of his mother's state of pregnancy she was carrying him all the time in exercising queenly power over her spirited charger and the subordinates of her husband and coming with the army. Her state of mind had ncthing to do with his ruling passion which was even strong in death ?" Dr. Fowler.

अर्थात्—क्योंकि उसकी माँ तेज घोड़ेकी सवारी करती, घोड़े तथा अपने पतिके अधीन सैनिकोंपर रानीकी तरह हुकूमत करती और उन्हें अधिकारमें रखती थी। क्या उसके इन कार्यों का प्रभाव उसके गर्भस्थ बच्चेपर न पड़ा होगा ?

आगे चलकर फाउलर महाशयने लिखा है कि, जिस समय नैपोलियन गर्भमें था, उसकी माँ अपने पतिके साथ लड़ाई पर गई थी। दिनभर युद्ध करनेके बाद जब उसके पति आते थे, तब वह लड़ाईका सारा हाल पूछा करती थी। इस प्रकार वह अपने पतिके मुखसे युद्ध-क्षेत्रकी वीरता-पूर्ण घटनाओंको बड़े प्रेमसे सुना करती थी। इन बातोंको देखते हुए कौन कह सकता है कि माताके कार्यों का प्रभाव गर्भस्थ बालकपर नहीं पड़ता ?

सन्तानके लिए माताका उदर महा विद्यालयके समान है। अथर्व वेदमें लिखा है:—

ब्रह्मचारी जनयन्ब्रह्मा पोलोकंप्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम्।
गर्भो भूत्वामृतस्ययोनाविन्द्रोहंभूत्वाऽसुरांस्ततर्ह ॥

जो ज्ञानामूलके केन्द्र-स्थानमें गर्भरूप रहकर ब्रह्मचारी हुआ, वही ज्ञान, कर्म, जनता, प्रजापालक राजा और विशेष तेजस्वी परमात्माको प्रकट करता हुआ इन्द्र बनकर अवश्यमेव राक्षसोंका नाश करता है।

अस्तु; इस विषयपर एक नहीं सैकड़ो-हजारों उदाहरण दिये जा सकते हैं कि गर्भस्थ बालकपर कैसा-कैसा प्रभाव पड़ा है और पड़ता है; किन्तु अधिक प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं। यहाँपर एक बात का और ध्यान रखना चाहिए। वह यह कि जिस प्रकार उत्तम शिक्षाओंका प्रभाव गर्भस्थ बालकपर पड़ता है, उसी प्रकार कुशिक्षाओंका भी। जो माता इस बातपर ध्यान नहीं रखती और टेढ़ा-मेढ़ा कार्य किया करती है, उसकी सन्तान किसी भी दशामें दुर्गुणोंसे खाली नहीं रह सकती। अब यदि इसके विषयमें भी दो-एक उदाहरण दे दिया जाय तो अनुमानतः लाभदायक ही होगा।

आँखों देखी बात है कि एक जगह स्त्री-पुरुषमें बराबर लड़ाई हुआ करती थी। स्त्री बड़ी फूहड़ थी। किसी भी कामको सफाईसे करना तो मानों उसके स्वभाव-विरुद्ध था। यदि कोई पास-पड़ोस-की स्त्री उससे कभी यह कहती कि तुम काम सफाईसे क्यों नहीं करतीं? तो वह फौरन ही जल-भुनकर खाक हो जाती और दिन-भर उस स्त्रीके प्रति कुछ-न-कुछ बड़बड़ाया करती थी। कहती,—"चली हैं मुझे सहूर सिखलाने। यह न जानें कहाँकी सहूरदार हैं।" संयोगसे उस स्त्रीके लड़का पैदा हुआ। बचपनमें वह बहुत रोता

और छैलाता था। जब पाँच वर्षका हुआ, तब तो ठीक उसमें उन सारी बातोंका प्रत्यक्ष दर्शन ही मिलने लगा, जो उसकी मांमें थीं। वह लड़का बड़ी म्लेच्छतासे रहता था। कभी-कभी तो वह यहाँ-तक किया करता था कि अपने ही अंगरखे या गमछेपर टट्टी फिर देता और उसे गठरीकी तरह बनाकर दिनभर अपने पास लिये रहता था। यदि कोई लड़का उसे टोंकता तो वह फौरन ही बिगड़ खड़ा होता और कहता,—"ई साला आमको कैता है और आप गू काता है (खाता) है।" इतना ही नहीं, वह अपने मा-बापको भी गालियाँ दिया करता था। इस प्रकार हूबहू वह लड़का अपनी माँके समान ही काम करता था और ठीक उसीकी तरह बातें भी करता था।

वही स्त्री जब दूसरी बार गर्भिणी हुई तो उसके पतिका देहान्त होगया। पतिके मरते ही उस स्त्रीमें अपूर्व परिवर्त्तन होगया। दिन-रात रोया करती, न किसीसे कुछ बोलना न चालना, अकेलेमें बैठी रहती और रह-रहकर 'आह राम' कहा करती थी। अब उसका झगड़ना बिलकुल ही बन्द होगया। वास्तवमें यदि विचार-पूर्वक देखा जाय तो कभी-कभी मानसपर आकस्मिक चोट लगनेके कारण मनुष्यके स्वभावमें विचित्र ही परिवर्त्तन हो जाता है। अन्तमें उसके गर्भसे कन्या उत्पन्न हुई। तीन वर्षकी अवस्थामें वह लड़की हमेशा और बच्चोंसे अलग चुपचाप बैठी रहा करती थी और यदि कोई बालक उसे छेड़ता था; तो झट वह रोने लगती

थी। एकान्तमें बैठना उसे बहुत प्रिय था। अब तो वह लड़की सयानी होगयी होगी, बिना देखे, यह कहना कठिन है कि अब उसका स्वभाव कैसा है; पर अनुमानसे मालूम होता है कि अवश्य ही वह उसी स्वभावकी होगी।

इसलिए गर्भिणीको उचित है कि वह अपने गर्भस्थ बालकपर अच्छा संस्कार डाले। जिस विषयकी शिक्षा देनी हो, उस विषयको ध्यानसे सोचे-समझे और अपने मनमें यह धारणा रक्खे कि इस विषयकी शिक्षा मेरे गर्भस्थ सन्तानको मिल रही है। यदि बालकको गणित शास्त्रकी शिक्षा देनी हो, तो गणित शास्त्रपर, पदार्थ-विज्ञानकी शिक्षा देनी हो तो पदार्थ विज्ञानपर, खगोल विद्याका धुरन्धर बनाना हो तो खगोल विद्यापर, इतिहासज्ञ बनानेकी रुचि हो तो इतिहासपर, रसायनशास्त्रका ज्ञाता बनाना हो तो रसायन-शास्त्रपर, आध्यात्मिक शिक्षा देनी हो तो अध्यात्म-विषयक, आयुर्वेदकी शिक्षा देनी हो तो आयुर्वेदपर, योद्धा बनाना हो तो वीरतापूर्ण घटनाओंपर, कृषि-विद्यामें प्रवीण बनाना हो तो खेतीके विषयपर ही गर्भिणीको बातें करनी चाहिए, उसी विषयका चिन्तन करना चाहिए और उसी विषयमें मन लगाना चाहिए। इसी प्रकार यदि उत्तम कन्या उत्पन्न करना चाहे तो सती-साध्वी देवियोंकी वीरता-पूर्ण जीवनी आदि पढ़नी तथा सुननी चाहिए। उदाहरणके लिए यहाँ देवी दुर्गावतीकी जीवनी लिख भी दी जाती है। आशा है कि इसे पढ़कर हमारी बहनें यह ज्ञान प्राप्त कर सकेंगी कि

किसी देवीका जीवन-वृत्तान्त कैसा होना चाहिए और उसे किस ढंगसे सुनना सुनाना चाहिएः—

——o——
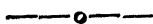
देवी दुर्गावती

अभी १०० वर्ष पहलेतक मध्य-प्रदेशके जबलपुर, मंडला आदि जिलोंमें गोंड़-राजोंका राज्य था। एक समय यह राज्य बहुत विस्तीर्ण था और इसके अन्तर्गत ५२ गढ़ या छोटे प्रान्त थे। राजा संग्राम शाह ने इस राज्यकी बहुत उन्नति की थी। ये गोंड़-राजा कभी गढ़में और कभी मंडलेमें रहा करते थे। रानी दुर्गावतीने इन दोनों स्थानोंको छोड़कर चौरागढ़में रहना पसन्द किया, जो कि वर्त्तमान नरसिंहपुर नामक जिलेमें था।

ये गोंड़-राजा बड़े ठाट-बाटसे रहते और अपनेको राजपूत मानते थे। ये सनातनधर्मके अनुयायी थे और ब्राह्मणोंपर बड़ी श्रद्धा रखते थे।

इसी राजघरानेके अत्यन्त पराक्रमी राजा संग्रामशाहके पोते दलपतिशाहकी रानी दुर्गावती थी। यह परम सुन्दरी वीरांगना चन्देल-राजा शालिवाहनकी कन्या थी। दलपतिशाहके विवाहके योग्य होनेपर इसी उच्च वंशीया राज-कन्याके साथ उसके पाणि-ग्रहणकी बातचीत होने लगी। दुर्गावतीने मन-ही-मन उसे अपना

वर स्वीकार कर लिया। बाद उसके पिता शालिवाहनने यह विवाह अपने उच्च वंशके विचारसे अनुचित समझ उसका विरोध किया। उसने बहाना किया कि मैं इससे पहले एक दूसरे ही राजकुमारको कन्या-दानका संकल्प कर चुका हूँ।

पिताकी यह इच्छा देख सती दुर्गावती बड़े धर्म-संकटमें पड़ गयी। एक बार वरण करके फिर दूसरे ही पुरुषको पति रूपसे स्वीकृत करना वह सती-धर्मके विरुद्ध समझती थी। निदान उसने माता-पिता आदि सबको त्यागकर अपने धर्मकी रक्षा करना ही सर्वोपरि कर्त्तव्य समझा और दलपति शाहको पत्र लिखा कि दूसरे को कन्या-दान का संकल्प करनेकी पिताजीकी बात सत्य नहीं है। वह कुलमें कलंक लगानेके भय से ही ऐसा बहाना करते हैं। मैं तो तन-मनसे आपकी दासी बन चुकी; अब आपको अधिकार है, पाणिग्रहण करें या न करें। यदि आप मुझे त्याग भी देंगे, तो मैं अपने सती-धर्मका पालन तो करूँगी ही। और यदि आप मुझे अब भी स्वीकार करना चाहते हैं, तो युद्ध करके मुझे यहाँसे ले जाइये और मेरे धर्मकी रक्षा कीजिये।

दलपति शाह रूप, साहस, युद्ध-कौशल आदि सभी गुणोंमें चौहान-वंशावतंस दिल्ली-पति पृथ्वीराजका मानो अवतार था। इस प्रकार दुर्गावती भी संयोगिताकी मानो प्रतिमूर्त्ति थी। दलपति शाहने राज-कन्याका सन्देश पाते ही चतुरंगिणी सेना लेकर महोबेपर चढ़ाई कर दी और चन्देलके राजा शालिवाहनको युद्धमें परास्त कर

रानी दुर्गावतीको लेकर वह सिंगोलगढ़ नामक अपने निवासस्थान-को लौट आया। घर पहुँचनेपर बड़े समारोहके साथ इन दोनों सच्चे प्रेमियोंका विवाह हुआ। इसी समय उसने गढ़ेसे राजधानी उठाकर इस गढ़में कर दी। इसे एक ऊँची पहाड़ीपर किसी चन्देल वंशी राजाने बनवाया था। उस प्रान्तको चन्देलोंसे जीतकर गोंड़-राजोंने अपने अधिकारमें कर लिया था।

विवाहके बाद दम्पति अपना समय बड़े सुखसे बिताने लगे। पर यह सुख अधिक दिनों तक न रहा। यों तो संसार ही क्षणभंगुर है, पर अलौकिक प्रेम तो और भी चिरस्थायी नहीं हुआ करता। विवाहके चार-पाँच वर्ष बाद एक पुत्रका मुख देखते ही दलपति शाहका परलोकवास होगया। युवती दुर्गावतीपर मानो बज्रपात होगया। वह कुछ समयके लिए शोकसे विह्वल होगयी। बाद अपने पुत्र वीरनारायणका मुख देखकर उसने धैर्य धारण किया और उसके प्रति अपने कर्त्तव्यका स्मरण कर वह अन्य राजपूत-रमणियोंकी तरह सती नहीं हुई। उसका यह काम शास्त्र-विहित था। देवी दुर्गावती अपने शिशुके लालन-पालन तथा शिक्षा-दीक्षामें अपना कालक्षेप करने लगी।

जिस अल्हड़ अवस्थामें रानी दुर्गावतीको अपने विशाल राज्यकी बागडोर हाथमें लेनी पड़ी, उस अवस्थाके पुरुष भी यह दुस्तर भार संभालनेमें बहुधा असमर्थ हुआ करते हैं। पर धन्य है इस रमणी की बुद्धि, धैर्य, शासन-कौशल, साहस आदि गुणोंको, जिनके

बलपर उसने अपने प्रिय पुत्रके राज्यको सुरक्षित ही नहीं रक्खा बल्कि नया देश जीतकर उसका बिस्तार और भी बढ़ा दिया। मालव पति बाज-बहादुरको परास्त करके उसने उसका देश गोंड़-राज्यमें मिला लिया। तभीसे भोपाल आदि प्रान्त गोंड़-राजोंके अधिकारमें आगये। युद्धक्षेत्रमें देवी दुर्गावती केवल अपनी सेना भेजकर ही सन्तुष्ट नहीं होती थी बल्कि वह स्वयं भी हाथीपर चढ़कर वहां सेनापतिका कार्य बड़े कौशलसे किया करती थी। ऐसी वीरांगनाओंका कर्त्तव्यनिष्ठ पवित्र चरित्र अन्यान्य सभ्य देशोंमें बड़े सम्मानको दृष्टिसे देखा जाता है। और उनके तरह-तरह के स्मारक बनाये जाते हैं। पर अभागे भारतमें देवी दुर्गावती सदृश आदर्श-नारीकी जीवनी कितने लोगोंको मालूम है? खास जबलपुरमें ही कितने लोग हैं जो जानते हों कि "दुर्गावती रानीका चबूतरा" नामक भग्न स्मारक कहाँ और किस अवस्थामें है?— या जबलपुरके समीपका विशाल जलाशय 'रानीताल' इसी दुर्गावती देवीका बनवाया हुआ है। यदि हमलोगोंमें सच्चे राष्ट्रीय भाव होते, तो हमलोग अवश्य ही अपने इतिहासप्रसिद्ध वीर पुरुषों तथा स्त्रियोंके ऐसे स्मारकोंका जीर्णोद्धार करते; नये नये स्मारक खड़े करते; उनके जीवन-चरित्रोंका संकलन करते; उनकी कीर्त्तिको याद रखनेके लिए उनकी जयन्तियां मनाते!

शासन-कार्यका भार देवी दुर्गावतीने अपने हाथोंमें रक्खा था। यद्यपि उसने चुन-चुनकर योग्यसे योग्य कर्मचारी रक्खे थे,

तथापि वह प्रत्येक विभागका निरीक्षण बड़ी सावधानीसे करती थी। उसके प्रधान मंत्रीका नाम अधारसिंह था। यह कायस्थ बड़ा ही चतुर था, पर कुरूप भी कुछ कम न था। इसका खुदवाया हुआ तालाब जबलपुरसे कुछ मीलकी दूरीपर अब भी 'अधार-ताल' के नामसे प्रसिद्ध है। पर यह कितने लोगोंको मालूम है कि यह एक धुरन्धर राजनीतिज्ञ स्मारक है? कहते हैं, अकबरने यह समझकर कि जब तक अधारसिंह दुर्गावतीकी सहायतामें रहेंगे, तब तक मेरी एक न चलेगी, इन्हें दिल्ली बुलवाकर कैद कर लेनेकी ठानी थी। दुर्गावतीके बहुत रोकनेपर भी वह मुगल दरबारमें जानेको तैयार हो गये। जाते ही उन्होंने बादशाहको रेशमी वस्त्रमें लपेटी हुई एक वस्तु नजरानेमें दी। खोलनेपर उसमें एक पका करेला निकला। अकबर बड़ा क्रुद्ध हुआ पर अधारने समझाया कि गोंड-रानीके पास ऐसी कौनसी वस्तु थी, जिसे वह दुनियाके शाहंशाहके पास भेजती? उसने अपना सारा राज्य ही बादशाहके चरणोंपर समर्पण करना चाहा, पर उस राज्यको उठाकर लाना असम्भव देखकर उसने यह पका हुआ करेला भेजा है, जो उसके राज्यका खासा नमूना है। जिस तरह इसके ऊपर लकीरें हैं, उसी तरह गढ़ा-मण्डलेके राज्यमें कई नदियाँ बहती हैं, और इसपरकी ऊँची रेखायें वहाँके पर्वतोंका निदर्शन करती हैं। अब अकबरको कोई उत्तर न सूझा और विवश हो उसे चुप रह जाना पड़ा। शतरञ्जके खेलमें ही अधारने अकबरको हराया होता, यदि रातको

शाहज़ादो मोहरे न बदल देती। कहते हैं, एक तेज घोड़ेके पैरोंमें उलटे नाल लगवाकर अधार दिल्लीकी नजर-कैदसे, पाखानेके रास्ते भागकर अपने देशमें आ गये थे।

अन्तमें दुर्गावतीकी अपार सम्पत्तिका वर्णन सुनकर अकबरने इस विधवा स्त्री और उसके अनाथ बच्चेको लूटनेकी ठान ली। उसने यह देखा कि बड़े-बड़े राजपूत-नरेशोंने तो मेरा लोहा मान लिया, पर यह गोंडरानीका राज्य अब भी स्वतन्त्र है; जिससे मैं शाहंशाह नहीं कहा जा सकता। इसलिए उसने अपने सेनापति आसफखाँको कड़ा-मानिकपुरसे इस देशपर चढ़ाई करनेकी आज्ञा दे दी। बादशाहकी आज्ञा पाते ही आसफखाँने गढ़ा-मण्डलेके राज्यपर चढ़ाई कर दी।

आसफखाँकी चढ़ाईकी खबर पाकर राज्यभरमें खलबली मच गयी। प्रजा भयभीत होकर जंगलों तथा पहाड़ोंकी गुफाओंमें जा छिपी। पर इस वीर नारीने निर्भय होकर शत्रुका सामना किया। वह अपनी सेनाके सामने हाथीपर चढ़कर, सिरपर मुकुट और हाथमें धनुष और भाला लिए, शत्रुसे युद्ध करनेको आगे बढ़ी। उसे इस प्रकार युद्धके लिए अग्रसर देखकर सैनिकोंका हृदय वीर-रससे परिपूर्ण होने लगा। साथ ही उसकी भव्य-मूर्त्ति देखकर शत्रु-दल आप-ही-आप निस्तेज हो गया। आसफखाँने यह प्रसिद्ध कर रक्खा था कि दुर्गावती निरी गोंड-अबला है; वह शाहीसेनाका आगमन सुनते ही भाग जायगी और हमलोग उसके अतुल धनको

लूटकर मालामाल हो जायँगे। इस विश्वाससे आये हुए मुगल-सैनिकोंने जब उस गोंड-अबलाको इस प्रकार सेना-सहित अपना सामना करनेको तैयार देखा, तो उनकी सारी आशाओंपर पानी-सा फिर गया। थोड़ी-सी लड़ाईके बाद ही मुगल-सेनाके पैर उखड़ गये और वह भाग खड़ी हुई। दिनभर रानीने उनका पीछा किया। शामको थोड़ी देरतक अपनी सेनाको आराम कराकर फिर शत्रुका पीछा करनेकी आज्ञा दी; जिसमें वह फिर सँभल न सके, पर दुःखकी बात है कि अनायास ही विजयी हो जानेसे ये लोग असावधान हो गये और रानीकी आज्ञाका उल्लंघन कर बैठे। रातको रानीने बहुत जगाया, पर आलस्यने उन्हें न उठने दिया। लाचार होकर रानीको थोड़ी-सी सेना लेकर आगे बढ़ना पड़ा। पर इससे भी उन आलसियोंको लज्जा न आयी।

उधर आसफखाँ पड़ा-पड़ा यही सोचता था कि शाही-दरबार-में मैं क्या मुँह दिखलाऊँगा। लोग मेरी बड़ी हँसी करेंगे। कहेंगे कि खाँ साहब एक गोंड-स्त्रीसे ऐसा डरे कि भागनेका रास्ता न मिला। वह बड़ी राततक इसी उधेड़बुनमें लगा था कि उसके गुप्त-चरोंने हिन्दुओंके आज्ञा भंग करनेकी खबर सुनायी। यह सुनकर उसके जीमें जी आया। बाद वह निश्चिन्त होकर सो रहा।

सवेरा होते ही आसफखांने अपनी सेनको रानी दुर्गावतीपर फिरसे चढ़ाई करनेकी आज्ञा दी और तोपखानेके आजानेपर उसे जंगमें सामने लाया। पहली लड़ाईमें उसकी तोपें नहीं आयी थीं,

किन्तु अबकी बार वे आगयीं। निदान जब मुगल-सेना हिन्दुओंके पड़ावके बहुत समीप आगयी, तब हिन्दू-सैनिकोंकी नींद खुली और वे आँखें मलते हुए शत्रुसे भिड़नेकी तैयारी करने लगे। वे समझते थे कि हम पहलेकी ही भाँति बातकी बातमें मुगलोंको मार भगायेंगे। उन्हें यह खबर न थी कि अबकी बार तोपोंका सामना करना पड़ेगा। शत्रुके अचानक पहुँच जानेसे हिन्दू सेना ही नहीं बल्कि वीर रानी भी कुछ देरके लिए घबड़ासी गयी और उससे भी कुछ न बन पड़ा। शीघ्र ही रानीने अपनेको संभालकर अपनी सेनाको एक तंग घाटीमें खड़ी होनेकी आज्ञा दी। इसपर मुसलमान लोग आगे बढ़े बिना ही उनपर गोलावृष्टि करने लगे। जब रानीने देखा कि यहाँ रहनेसे कोई लाभ न होगा, तो पासके एक मैदानमें उसने अपनी सेना खड़ी की। वहाँ शत्रुपर आक्रमण करना और उसके आक्रमणसे बचना कुछ सुगम था। उसने अपने मनका व्यूह (मोर्चा रचकर शत्रुको युद्धके लिए ललकारा। यह देखकर राजकुमार वीरनारायण लड़ाई छोड़ अपनी माताके पास आ गया। और उसे जोखिमसे बचनेके लिए स्वयं प्रधान सेनापतिका काम करने लगा। उसने अपने रण-कौशलसे—शत्रु-मित्र सबको चकित कर दिया। दुर्गावती भी अपने पुत्रकी वीरता देखकर गद्गद् हो गयी। इस वीरने दो बार मुगलोंपर आक्रमण कर उन्हें दूर तक खदेड़ा; जिससे आसफखांकी बहुत बड़ी जन-हानि हुई। जब तीसरी बार उसने फिर आक्रमण किया तब मुगलोंने उसे ऐसा

घेर लिया कि उसका तलवार उठना भी कठिन हो गया। उस कठिन समयमें हिन्दुओंको वीर अभिमन्युकी याद आगयी। एक वीरपर हजारोंका वार करना धर्म-युद्ध नहीं कहा जा सकता। पर भला आसफखां कब धर्म-युद्ध करनेवाला था! निदान लड़ते-लड़ते राजकुमार घायल होकर घोड़ेसे गिर पड़ा। यह भीषण कांड देखकर हिन्दू सेना निराश और व्याकुल हो उठी। पर उस वीर नारी दुर्गावतीने अपना धैर्य नहीं छोड़ा। अपने एकलौते पुत्रको इस शोचनीय दशामें देखकर भी वह कर्त्तव्य-विमुख नहीं हुई। फौरन पुत्रको चौरागढ़ नामक किलेमें भेजकर आप बराबर शत्रुसे लड़ती रही। वीरनारायणके जानेपर उसीने सेनापतिका भार-ग्रहण किया। किन्तु थोड़ेसे आदमियोंको छोड़कर उसके तमाम सैनिकोंने उसका साथ छोड़ दिया। मुगलोंकी तोपोंने हिन्दुओंका गहरा नुकसान किया। क्योंकि उनके पास तोपें नहीं थीं। इससे बहुतसे हिन्दू सैनिक अपनी जान लेकर भाग गये। जब रानीने देखा कि अब केवल ३०० सैनिक रह गये हैं और वे भी शत्रुपर आक्रमण करनेमें साथ नहीं देना चाहते, तो उसने उन्हें उसी तंग घाटीके पीछे जानेकी आज्ञा दी; और वह उनके साथ एक टीलेपर खड़ी होकर शत्रुकी प्रतीक्षा करने लगी। उसे अब भी आशा थी कि जैसे-जैसे थोड़े-थोड़े शत्रु इस घाटीमें प्रवेश करेंगे वैसे-वैसे वे मारे जायँगे और अब भी विजय होगी। वास्तवमें यह कोई असम्भव बात थी भी नहीं; क्योंकि 'थर्मापली' की घाटीमें वीर लियोनिडसने ३०० स्पार्टन

वीरोंके साथ हजारों इरानियोंके दाँत खट्टे कर दिये थे। पर, खेदकी बात है कि गढ़ा-मंडलेकी स्वतंत्रताके दिन पूरे हो चुके थे, गोंड़-राजोंके दुर्दैवने इस तेजस्विनी वीरबालाको नष्ट कर देनेकी ठान ली थी। इसीसे ऐसे कठिन समयमें उसकी आँखमें मुगल-सेनाकी ओरसे आया हुआ एक तीर आकर घुस गया। किन्तु इतनेपर भी उस देवीको मूर्च्छा तक न आयी और उसने उस प्राण-घाती तीरको मामूली कांटेकी तरह निकालकर फेंक दिया। दुर्भाग्यवश तीरकी 'अनी' उसकी आँखमें रह गयी। इस घोर कष्टको सहन करते हुए भी उस देवीने अपने कर्त्तव्यका पूर्ण रीतिसे पालन किया। उसके सैनिकोंने उसे बहुत समझाया कि "आपके जीवित रहनेपर ही इस राज्यकी स्वतंत्रता अवलम्बित है, इसलिए आप चौरागढ़ जायँ और हमलोगोंको यहाँ लड़ने दें। हम आपकी शपथ खाकर विश्वास दिलाते हैं कि हममेंसे एक भी जब तक जीता रहेगा, तब तक लड़ाई बन्द न होगी।"—पर रानीने यह उत्तर दिया कि शत्रुके सामनेसे भागना राजपूतोंका धर्म नहीं है।

इस वीर नारीकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। शीघ्र ही उसके साथियोंको उसे छोड़कर भागनेका अवसर न रहा। इतनेमें एक दूसरा तीक्ष्ण तीर उसकी गर्दनमें आ लगा। अब उसे निश्चय हो गया कि मेरे सैनिक शत्रुको नहीं रोक सकते, और यहाँ ठहरनेसे व्यर्थ मारे जायँगे। अतएव जितने सैनिक बचे हैं, उनकी प्राण-रक्षा करना ही मेरा कर्त्तव्य है। उसने देखा कि जब तक मैं जीवित

यहाँ खड़ी रहूँगी तबतक ये लोग मेरा साथ न छोड़ेंगे और व्यर्थ ही मारे जायँगे। अतएव महावतके हाथसे अंकुश छीनकर उसने अपने पेटमें मार लिया और स्वदेश-स्वातंत्र्यकी वेदीपर बलि होगयी। धन्य हो देवी दुर्गावती! धन्य है तुम्हारी कर्त्तव्य-निष्ठा, सहन-शीलता और वीरताको!

दुर्गावतीकी मृत्युके समय उसके साथ केवल ६ सैनिक बचे थे। शोक और क्रोधसे व्याकुल होकर उन्होंने अपने प्राण महँगे बेचनेका दृढ़ संकल्प कर लिया और शत्रु दलपर घोर आक्रमण किया। उन्होंने अनेकों मुगल-सैनिकोंके सिर काट-काटकर पवित्र वीर गति प्राप्त की।

महारानी दुर्गावतीका दाह-कर्म उसी पहाड़ीपर किया गया। जहाँ उसने स्वदेशकी स्वतंत्रता खो जानेके पूर्व ही आत्मोसर्ग किया था। उस स्थानपर एक साधारण चबूतरा आजतक बना हुआ है और केवल यही उस प्रातस्मरणीया देवीका स्मारक है। इस पहाड़ीपर असंख्य कंकड़ पड़े रहते हैं, जो वहाँके चट्टानोंके भीतरसे निकलते और नमक या मिश्रीकी डलीके समान होते हैं। उस मार्गसे जानेवाला प्रत्येक पथिक एक कंकड़ उस पवित्र चबूतरे पर फेंक देता है, पास ही दो बड़ी चट्टानें भी हैं, जो रानीकी दुन्दुभीके नामसे प्रसिद्ध हैं। आस-पासके गाँववालोंका कथन है कि मध्यरात्रिमें सन्नाटा छा जानेके बाद इन दुन्दुभियोंके बजनेका शब्द सुनायी दिया करता है। इस चबूतरेके समीप कई कबरें हैं,

जिनसे स्पष्ट है कि इस युद्धमें दोनों पक्षके बहुतसे वीर काम आये होंगे।

इस युद्धमें विजय पाकर आसफखां आगे बढ़ा और चौरागढ़ का मुहासरा किया। वीर नारायणने बराबर दो मासतक उसकी रक्षा की। जब वीर माताका वह वीर पुत्र भी युद्धमें मारा गया तो दुर्ग-रक्षकोंकी हिम्मत टूट गयी। उन्होंने प्राचीन राज-प्रथानुसार 'जौहर' कर डाला; अर्थात् कई तो केसरिया जामा पहनकर नंगी तलवारें चमकाते हुए बाहर निकल आये और कुछ शत्रुओंको मारकर स्वयं कट मरे, और स्त्रियोंने अपने बच्चों सहित अग्नि-देवकी शरण ली।

रानी दुर्गावतीका नश्वर शरीर तो इस संसारसे चला गया, पर उसकी ईश्वर-भक्ति, प्रजा-प्रेम, धर्म-निष्ठा, वीरत्व आदि गुणों-की कीर्त्ति अबतक कायम है।

—०—

यदि गर्भिणी स्त्री शान्तिके साथ रहे, कभी किसीसे झगड़ा न करे, क्रोध न करे, बुरा भाव मनमें फटकने न दे, ईश्वरको समूचे विश्व-ब्रह्मांडका रचयिता और जीवमात्रमें शक्ति प्रदान करनेवाला समझकर उसपर पूर्ण भक्ति रक्खे, किसी तरहकी कठिनाई पड़नेपर घबड़ा न जाय, हमेशा सत्य बोले, मनमें किसी तरहका कपट-छल न रक्खे, झूठ न बोले, प्राणि-मात्रपर दया भाव रक्खे, दीन-दुखियों के प्रति सहानुभूति-सूचक शब्द मुखसे निकले, कभी किसीको कड़ी बात न कहे, दूसरोंकी भलाई करनेमें सदा तत्पर रहे, गर्भकी

चित्र नं० ६, तीसरा महीना । पृष्ठ संख्या १२३

रक्षा करते हुए परिश्रमसे मुख न मोड़े, किसी काममें आलस्य न करे, सदा प्रसन्नचित्त रहे, बड़ोंका हमेशा आदर करे, यदि कोई कुछ कह दे तो प्रसन्नतापूर्वक उसे सहन कर ले—प्रत्युत्तरमें कोई कड़वी बात न कहे, हँसी-दिल्लगीमें समय न बितावे, गम्भीरतासे रहे, अधिक व्यसन न करे, सादगीसे रहनेमें ही अपना गौरव समझे, सदा स्वच्छ रहे, पहले हानि-लाभको सोच लिया करे, पीछे उस कामको करे, लकठा न लगावे, स्वदेश, स्वजाति और स्वकुटुम्बपर प्रेम रक्खे, चापलूसी न करे, हर काममें और हर बातमें सन्तोष रक्खे, सदा निर्भीक रहे, सच बोलनेमें किसीसे न डरे, प्रतिदिन सोते-जागते ईश्वरका स्मरण किया करे, प्रत्येक कार्यको नियमित समयपर किया करे, सात्त्विक भोजन करे, गन्दे गीत और गन्दी बातें न तो कभी अपने मुखसे निकाले और न कानसे सुने, ओछी और तुच्छ बातोंपर ध्यान न दे, सदा ऊँचे-ऊँचे विचारोंपर मन लगावे, कभी किसी कामसे हताश न हो, अपने मनमें बड़ेसे बड़े कामोंको बिना किसीकी सहायताके कर डालनेकी हिम्मत रक्खे, जो काम सामने आये उसे पूरा करके छोड़े, अपनेको तुच्छ न समझे, किसी बातका घमंड न करे, जो बात कहे, उसका पालन करे तथा सबके साथ मित व्यवहार रक्खे, तो अवश्यमेव उसका बालक सर्वगुणसम्पन्न, माता-पितापर भक्ति रखनेवाला और देशमें कीर्ति फैलानेवाला हो सकता है। उक्त बातोंपर पूर्ण रीतिसे ध्यान देना तदनुकूल चलना ही गर्भस्थ बालकको शिक्षा देना है।

उत्तम सन्तानोत्पत्तिके लिए स्त्री-शिक्षाका प्रयोजन

उत्तम सन्तान पैदा करने तथा बालकको उत्तम शिक्षा देनेके लिए स्त्री-शिक्षाकी बहुत बड़ी आवश्यकता है। क्योंकि यह बात पहले ही लिखी जा चुकी है कि शिशुके लिए माता ही आदि गुरु है और शिशु एक बार सबको होना पड़ता है, बाद लोग अन्यान्य अवस्थाओंमें प्रवेश करते हैं, इसलिए माता ही जगत्की आदि गुरु है। यह कितने दुःखकी बात है कि हमारे देशकी माताएँ बिलकुल अशिक्षिता हैं। जिस स्त्री-जातिके ऊपर इतनी बड़ी जिम्मेदारी है, जो स्त्री-जाति अपने गुण और दोषसे समूचे देशको आनन-फानन समुन्नत और पतित बना सकती है, उसकी आज ऐसी शोचनीय दशा हो रही है कि सोचकर हृदय हिल जाता है। गुरुके अनभिज्ञ होनेपर शिष्यके पंडित होनेकी आशा करना दुराशा नहीं तो और क्या है? यदि आज हमारे देशमें स्त्री-शिक्षाका काफी प्रचार होता, स्त्रियाँ शिक्षिता होतीं, अपने दायित्त्वको समझती होतीं तो देशकी इतनी पतित और घृणित दशा कदापि न होने पाती। उन्हींके मूर्खा होनेके कारण आज चारों ओर स्कूलोंमें कालेजोंमें, घरोंमें, शहरोंमें, गाँवमें, खेतोंमें, कारखानोंमें, राहमें, तीर्थोंमें, धर्मशालाओंमें सब जगह पापाचार हो रहा है, सुधारक

चिल्लाते-चिल्लाते अपने जीवनकी आहुति दे रहे हैं, लेखकगण, लेखनी रगड़ते-रगड़ते आँखें फोड़ रहे हैं; किन्तु फल कुछ भी नहीं हो रहा है। कारण? कारण वही स्त्री-शिक्षाका अभाव। यदि आज हमारी माताएँ शिक्षिता होतीं, तो यह अनर्थ कभी भी न होता। क्योंकि वे बचपनसे बच्चोंको उचित शिक्षा देतीं जिससे स्वाभाविक ही सब लोग सदाचारी और कर्त्तव्यपरायण होते। 'न रहता बाँस और न बाजती बाँसुरी।' फिर न तो ऐसे नीचतापूर्ण कार्य ही होते और न उनके सुधारनेकी आवश्यकता ही पड़ती।

बच्चे अपनी माताकी देख-रेखमें ही अधिक रहते हैं। उनकी देख-भाल जितनी माता कर सकती है, उतनी और कोई नहीं कर सकता। माताओंकी अशिक्षाके कारण बच्चे अपनी तबीयतके अनुसार खेलते-कूदते और कुसंगतिमें पड़कर बुरी आदतें डाल लेते हैं। माताएँ उधर ध्यान नहीं देतीं। यदि उनमें शिक्षाकी कमी न होती और सन्तान-शिक्षा आदिकी विधियाँ वे जानतीं होतीं तो इस ओर उनका पूरा ध्यान रहता, हर वक्त वे बच्चोंपर कड़ी नजर रखतीं और अपने पास उन्हें बैठाकर अच्छी-अच्छी बातोंकी शिक्षा देतीं। उस अवस्थामें बचपनसे ही प्रत्येक जीवन आदर्शके साँचेमें ढला हुआ निकलता और अपूर्व ही दृश्य दिखलायी पड़ता। तब न तो देशमें इतना दुराचार ही फैला हुआ दिखलायी पड़ता और न इस प्रकारके शक्तिहीन तथा अल्पायु मनुष्य ही होते। महाकवि कालीदासने लिखा है:—

सन्तान-विज्ञान

"शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम् ।"

स्माइल्सने लिखा है कि,—"भावी सन्तानकी स्वास्थ्यरक्षाका भार ईश्वरकी ओरसे स्त्रियोंको ही सौंपा गया है। शारीरिक स्वास्थ्य में ही चरित्र बल और मानसिक शक्तिकी पवित्रता निहित है।"

किन्तु आज ऐसी कितनी स्त्रियाँ हैं जो ईश्वरकी ओरसे सौंपे गये इस भारको वहन करनेमें समर्थ हैं ? वे इस बातको जानतीं ही नहीं कि किस प्रणालीसे सन्तानका पालन तथा उसकी शिक्षा का विधान होना चाहिए। इसलिए कभी-कभी अपनी सन्तानकी भलाई करती हुई भी वे अपनी अनभिज्ञताके कारण उसकी बुराई कर डालती हैं। सभी माताएँ यह चाहती हैं कि हमारे बच्चे सुन्दर हों, दसमें गिने जानेके लायक हों, दीर्घजीवी हों। इसके लिए अपनी विद्या-बुद्धिके अनुसार वे कोई यत्न उठा भी नहीं रखतीं; किन्तु जिस बातको वे स्वयं ही नहीं जानतीं, उसमें वे बेचारी क्या कर सकती हैं ? अपनी इस अभिज्ञताके कारण आज वे भी महान दुःख भोग रही हैं। एक तो नासमझीके कारण उनके कितने ही बच्चे असमयमें ही कालकवलित हो जाते हैं और दूसरे जो जीवित भी रहते हैं उनमें बहुत ही कम ऐसे निकलते हैं, जो माता-पिताको सुख पहुँचाते, विद्वान तथा सदाचारी होते हैं। यदि स्त्रियाँ शिक्षिता बना दी जायँ तो हमारा दृढ़ विश्वास है कि वे अपने बच्चोंको तन-मन-धनसे योग्य बनानेमें कोई भी बात यथाशक्ति उठा न रक्खें। पुरुष सन्तान-पालनकी विधि जानते हुए भी

लापरवाही कर सकता है, पर स्त्री ऐसा कभी भी नहीं कर सकती, यह निश्चय है।

हाय! सन्तान-पालन ही स्त्रियोंका मुख्य कर्त्तव्य है और उसे ही वे अबलायें नहीं जानतीं। एक बंगीय विद्वानने लिखा है:— "मातृत्त्व ही नारी-जीवनका प्रधान उद्देश्य और चरमलक्ष्य है। उनके लिए सबसे बढ़कर गौरवकी बात यही है कि वे मातायें हैं। गर्भ-धारण तथा सन्तान-पालनसे बढ़कर महत्त्वपूर्ण कार्य नारी-जीवनके लिए दूसरा नहीं है; क्योंकि इन्हीं दो बातोंसे सृष्टिकी रक्षा होती है। इसीसे इनका महत्त्व और गौरव भी अधिक है।

किन्तु खेदके साथ कहना पड़ता है कि हिन्दू-जाति आज अपनी कन्याओंको इस योग्य होने ही नहीं देती कि वे समय आनेपर सच्ची माताएँ बन सकें और माताकी तरह जीवन यापन कर सकें। क्या यह समाजके लिए अत्यन्त लज्जाकी बात नहीं है? नाथ! प्रभो!! भगवान!!! वह दिन कब आवेगा, जब हिन्दू जातिको अपनी यह भद्दी भूल स्पष्ट रीतिसे दिखलायी पड़ेगी, और वह इस त्रुटिको दूर करनेके लिए स्त्री-शिक्षा-प्रचार करनेमें जी-जानसे, कमर कसकर तैयार होगी? क्या देशकी दुर्दशाकी आह भरी पुकार तुम्हारे कानोंतक अभी भी नहीं पहुँची? कितना सतावोगे जगदीश्वर! तुम्हारे इस प्रकार सोते रहनेसे इस अनाथ देशकी रक्षा कौन करेगा दीनबन्धु! क्या कलिके प्रभावसे तुम भी असमयमें ही सोने लग गये? तुम तो प्रलय कालमें सोया करते

थे, फिर यह क्या कर रहे हो ? क्या सृष्टिका काम कर ते-क तुम्हें भी थकायी आ गयी ? किन्तु वेद तो कहता है कि तुम सदा एकरस रहते हो ? सब कुछ करते हुए भी अकर्त्ता हो ? जरा इधर भी निगाहें फेरो लला ! देखो हिन्दू-समाजकी दुर्दशासे, दुर्दशाकी भी दुर्दशा हो रही है—वह भी चिल्लाने लग गयी है ! यदि तुम विश्राम ही करना चाहते हो तो करो विश्राम, मुझे कुछ नहीं कहना है; पर एक बात इस अकिंचनकी सुन लो ! यही कि यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो प्रलय करके चैनसे विश्राम करो, व्यर्थ ही अपने सिरपर यह पहपट क्यों कराते हो ! तेज स्वरूप होकर डरो न नाथ ! अन्धकार तो तुम्हारे दृष्टि-निक्षेपसे ही भाग जायगा। तनिक अपने बचनको ओर निगाहें फेरो :—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

* * * *

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।

—श्रीमद्भगवद्गीता

कहो, अब इससे बढ़कर उपयुक्त समय और कौनसा आवेगा ? बता दो न ? भारतीय देवियाँ अज्ञताके कारण नाना प्रकारकी यंत्रणायें भोग रही हैं, बाल-विवाह, वृद्धि-विवाह तथा बेमेल विवाहका दमन-चक्र जोरोंसे चारों ओर चल रहा है, दुराचारका

प्रचंड प्रवाह प्रलय करनेके लिए विकराल स्वरमें 'हू-हू' कर रहा है, फिर भी अभी तुम किसी अलक्षित समयकी प्रतीक्षा कर रहे हो ! उतना ही गुदगुदाओ, जितना नीक लगे लला !

ओफ ! आदि गुरुकी खराबीसे ही आज हम दासत्वकी श्रृंखलामें भी जकड़े हुए हैं। हममें शक्ति नहीं, बल नहीं, भ्रातृत्व-बन्धुत्त्व नहीं, देश-प्रेम नहीं, स्वाभिमान नहीं, एक स्वरमें बोलने का साहस नहीं—कुछ भी नहीं ! है एक वस्तु—कायरता ! यदि हमारी माताओंमें बुद्धि होती, जानकारी होती, तो पहलेहीसे उनके द्वारा उक्त वस्तुएँ हमें प्राप्त रहतीं और अवसर पड़नेपर सिंहकी तरह दहाड़कर भारतमाताकी इकतीस कोटि सन्तान रण-भूमिमें शत्रुपर विजय प्राप्त कर जननी-जन्म-भूमिके नत-मस्तकको ऊपर उठानेमें समर्थ होती। फिर संसार हमारी वीरताके गीत गाता और हम मस्त कानोंसे उन गीतोंका आनन्द लेते ! पर अभी तो यह सब दुराशामात्र ही है। जमीनपर रहकर बादल चाटनेकी कोशिश करना निरी मूर्खता है। यदि ऐसी अभिलाषा देशवासियों के मनमें हो कि 'हम मर मिटेंगे, पर दास बनकर जीवित कभी भी न रहेंगे' तो सबसे पहले आवश्यकता इस बातकी है कि देशमें स्त्री-शिक्षाका प्रचार किया जाय—ताकि देशमें वीर, साहसी और स्वाभिमानी बच्चे पैदा हों। किन्तु यदि ऐसा भाव देशवासियोंका हो जाय तो फिर दासता टिक ही कैसे सकती है। ऐसी अभिलाषा तो वीर साहसी देशके लोग ही कर सकते हैं।

याद रहे कि सारे विषयोंकी शिक्षा केवल मातासे ही प्राप्त हो जाती है। शिशुके जीवनपर माताका ही प्रभाव सबकी अपेक्षा अधिक पड़ता है। यदि माता पढ़ी-लिखी हो तो वह गर्भसे लेकर पाठशाला या स्कूलमें जानेके योग्य होनेतक अपने बच्चेको इतनी शिक्षा दे सकती है, कि उस बच्चेको देखकर लोगोंको दंग रह जाना पड़े। जिस प्रकार बालक थोड़ी ही उम्रमें सुनते-सुनते अपनी मातृभाषाका ज्ञान प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार वह बड़ी-बड़ी बातोंको आसानीसे माताके पास रहकर ही सीख सकता है। बचपनमें पड़े हुए संस्कार कितने पुष्ट होते हैं, यह किसीसे बतलानेकी आवश्यकता नहीं; क्योंकि इस बातको सभी लोग जानते हैं, कि कोई भी वस्तु कोमल रहनेपर ही अपनी इच्छाके अनुकूल झुकाय य ।बनायी जा सकती है; पर कठोर हो जानेपर उसके झुकानेक प्रयत्न करना व्यर्थ जाता है—बल्कि कभी-कभी वह अधिक जोर दे देनेके कारण टूट भी जाती है; ठीक यही हाल मानव-शरीरका है। बचपनमें तो चाहे जैसा उसे बनाया जा सकता है, पर शुद्ध हृदयपर वाहियातके कुसंस्कारोंकी मैल़ बैठ जानेपर उसका बनाना कठिन हो जाता है। इसलिए माताका पूण विदुषी होना जरूरी है। केवल स्तन-पान कराकर बच्चेका पोषण करने और लाड़-प्यारसे उसकी तबीयत खुश रखनेसे ही बच्चेकी उन्नति कभी नहीं हो सकती। बच्चेको योग्य बनानेके लिए माँकी सहायता मिलना विशेष प्रयोजनीय है।

सन्तान-विज्ञान

रामायण और महाभारतके उपाख्यान हमारे देशकी स्त्रियोंको अत्यन्त प्रिय हैं। इन दोनोंको छोड़कर गार्हस्थ्य-धर्मकी शिक्षा देनेवाले ऐसे उत्कृष्ट ग्रन्थ इस देशमें अन्य नहीं। सीता और सावित्रीके दुःख, दमयन्ती और चिन्ताका पातिव्रत्य एवं नाना प्रकारके कष्टोंके विवरण आँसुओंसे लिखे गये हैं। इन कथाओंको पढ़कर स्त्रियोंका स्वाभाविक कोमल हृदय पिघले बिना नहीं रहता। उपन्यासोंके पढ़नेसे भी कितनी ही बार कारुणिक घटनाओंपर आँखसे आँसू लुढ़क पड़ते हैं। किन्तु पौराणिक कथाओं और वर्त्तमान उपन्यासोंमें अन्तर है। आधुनिक लेखक-मण्डली कहीं-कहीं केवल पाठकोंके मनमें कष्टको जागृत करनेके लिए ही किसी परिवार-की घटनाका वर्णन करते हैं, केवल दुःख-पूर्ण घटनाओंको पढ़कर मनमें दुःख पैदा करनेसे क्या लाभ है? जिस प्रकार छोटे लड़के उड़ने ओर फुदकनेवाले जन्तुओंको पकड़कर उनके पंख और पैरोंमें खोदकर आमोद पाते हैं, आजकलके अधिकांश लेखक भी उसी प्रकार किसी सुन्दरी युवती या युवकके एक दुःखसे दूसरे दुःखमें पड़नेके दास्तानको कारुणिक भाषामें वर्णनकर सन्तुष्ट होते हैं। किन्तु इस प्रकार दुःखद घटनाओंसे क्या लाभ? यदि धर्मके लिए अथवा किसी महत्त्वपूर्ण कार्यके लिए कोई आत्मोत्सर्ग करे और कष्ट भोगे, तब तो उस घटनासे पाठक-पाठिकाओंका मन समुन्नत होता है और हृदयमें धर्मभाव उत्पन्न हो जाता है, अन्यथा कुछ नहीं। स्वामीको प्राप्त करनेके लिए बेहुला अथवा सावित्रीने जिन

कष्टोंको स्वीकार किये थे, उन्हें पढ़कर किस स्त्रीका मन विस्मय और उच्च भावोंसे पूर्ण नहीं हो उठेगा ? पौराणिक उपाख्यानोंमें कोई तो पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिए बन गया है, कोई बाल्यावस्था-में ही सर्वस्व त्यागी योगी होकर ईश्वराराधनमें प्रवृत्त हुआ है और किसीने नाना प्रकारके ऐश्वर्य-प्रलोभनोंको पैरोंसे ठुकराकर पातिव्रत्य-धर्मका पालन करके जगत्के सामने अपनेको उदाहरण स्वरूप रख दिया है; किन्तु आजकलके उपन्यासोंमें कहीं तो बहूने अपनी सासको विष देकर निष्ठुरता-पूर्वक मार डाला है और कहीं सासने ही बहूकी हत्या की है। ऐसे वृत्तान्तोंके पढ़ने या सुननेसे क्षणभरके लिए मानसमें उत्तेजना या कष्ट पैदा हो सकता है, किन्तु इनसे लाभ कुछ भी नहीं हो सकता। ऐसे ग्रन्थोंकी रचना करनेसे लेखकों को तो दूर रहना हो चाहिए, साथ ही पढ़ो-लिखी देवियों-को भी जोरोंके साथ उक्त प्रकारके ग्रन्थोंके प्रचार और सृजनका विरोध करना चाहिए। क्योंकि ऐसे ग्रन्थोंके प्रचारका दुष्परिणाम भविष्यमें स्त्री-समाजको ही भोगना पड़ता है। देखिए बंग-साहित्य में श्रद्धेय उपन्यास-सम्राट् स्वर्गीय श्री बङ्किमचन्द्र चटर्जी-रचित सर्वगुण-सम्पन्न उपन्यास हैं; किन्तु उन्होंने अपने प्रायः सभी सामाजिक उपन्यासोंमें दो-एक स्त्रीकी आत्महत्याका वर्णन किया है। उसका प्रभाव बंगीय देवियोंपर यह पड़ा है कि आजकल बंगालमें जितनी स्त्रियाँ आत्महत्या कर रही हैं, उतनी भारत के किसी भी प्रान्तमें नहीं हो रही है। इसलिए स्त्री-समाजको उत्त-

मोत्तम शिक्षाप्रद ग्रन्थोंका अवलोकन करना चाहिए और अच्छे-अच्छे उपाख्यानोंको आपसमें कहना सुनना चाहिए ।

अब हम यहाँपर थोड़ासा इस बातपर भी विचार करेंगे कि स्त्री-शिक्षा किस ढंगकी होनी चाहिए। वास्तवमें यह विषय बड़ा ही कठिन है। यहाँकी विद्वन्मण्डली अभीतक एक राय नहीं हो सकी है। इसलिए अभी हम सिर्फ इतना ही कहेंगे कि स्त्रियोंमें प्रत्येक विषयकी साधारणतया जानकारी होनी चाहिए। जैसे, गणितका साधारण ज्ञान भी होनेसे वे अपने बच्चोंको हँसाते-खेलाते, गिनती, पहाड़ा, सवैया, पौना, ड्योढ़ा, जोड़, बाकी आदि जबानी पढ़ा सकती हैं। उदाहरण लीजिये, एक पैसेका ३ आम तो ३० आमके कितने पैसे अथवा दो आनेकी पावभर जलेबी, तीन आनेकी तरकारी, दस आनेका फल और तीन पैसेकी स्याही खरीदनेपर कुल कितने पैसे खर्च हुए आदि इस प्रकारकी शिक्षासे बच्चे छोटी अवस्थामें सौदा वगैरह ला सकते हैं और बिना भूल किये सारी चीजें उचित मूल्यमें खरीद सकते हैं।

सांसारिक कामोंके लिए स्त्रियोंको इतिहासकी जानकारी रखनेकी तो कोई विशेष आवश्यकता नहीं है, पर सन्तान-सुधारकी दृष्टिसे थोड़ा इतिहासका ज्ञान रखना भी जरूरी है। तभी वह सम्राट् अशोक, महाराणा प्रताप, महाराज शिवाजी प्रभृति बड़े-बड़े राजाओंकी कीर्ति कथा एवं शंकराचार्य, बुद्ध, चैतन्य, कबीर, नानक आदि धर्म गुरुओंकी जीवनी अपने बच्चेको बचपनमें हो

कण्ठ करानेमें समर्थ हो सकती हैं। इतिहासकी तारीख और सन् अथवा मामूली घटना जाननेकी स्त्रीको विशेष आवश्यकता नहीं है। साधारणतया भारतवर्षका इतिहास धारावाहिक रूपसे जानना ही बहुत है। इसके लिए इतिहासकी बड़ी-बड़ी जिल्दें यदि स्त्रियाँ न भी पढ़ें तो कोई आपत्ति नहीं, जिस पुस्तकमें गल्प रूपमें भारतका इतिहास थोड़ेमें लिखा हो, वही पढ़कर जान लें। इस ढंगकी पुस्तकें अंग्रेजीमें तो बहुतसी हैं। बँगलामें भी इधर कुछ पुस्तकें निकली हैं; पर हिन्दीमें अभी ऐसी पुस्तकोंका एक प्रकारसे अभावसा है। इसलिए हिन्दी-प्रेमियोंका ध्यान इस ओर अवश्य जाना चाहिए। यह काम जितने शीघ्र किया जाय उतना ही अच्छा है।

भूगोलके सम्बन्धमें भी वही बात है; गोलमटोल पृथ्वीका नकशा जान लेना, बड़े-बड़े राज्य और उसकी राजधानी, पर्वत, समुद्र और नदियोंका जान लेना ही स्त्रियोंके लिए पर्याप्त है। यदि वे इससे अधिक जान लें तो और भी अच्छा, नहीं तो इतना तो जरूर ही जानना चाहिये। इसी प्रकार अन्यान्य विषयोंका भी स्त्रीको विशेषरूपसे नहीं तो साधारण रीतिसे अवश्य ज्ञान होना चाहिये।

पंचम समुल्लास
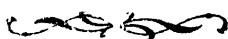
प्रसवकाल

बच्चा पैदा होनेके समयको प्रसवकाल कहते हैं। जिस घरमें बच्चा पैदा होता है, उसे 'प्रसूति-गृह' या ग्रामीण भाषामें सौर कहते हैं और जब बच्चा पैदा हो जाता है, तब उसी गर्भिणी स्त्रीका नाम प्रसूता हो जाता है। इस प्रकरणमें प्रसवकालके सम्बन्धमें कुछ लिखना आवश्यक है। क्योंकि इस समय स्त्रियोंका नया जन्म होता है। जरा भी गलती करनेसे इस समय अनेक तरहके रोग, जैसे प्रसूतका दुःख, योनिका बाहर निकलकर बढ़ आना आदि—हो जाते हैं। इसलिए जब देखे कि गर्भके दिन पूरे हो गये, तब किसी चतुर दाईको पहलेहीसे बुलाकर घरमें रख ले। यदि कोई दाई न मिले तो घरकी स्त्रियोंको ही खूब सावधानीसे इस कामको करनेके लिए तैयार हो जाना चाहिए।

पहले कहा जा चुका है कि गर्भमें बालक प्रायः नौ महीनेके लगभग रहता है। कभी नौ महीनेमें कुछ दिन पहले ही वह पैदा हो जाता है और कभी दस-पाँच दिन बाद। जब प्रसवकाल निकट आ जाय, तब गर्भिणीको प्रसूतिका-गृह निश्चय कर लेना चाहिए। वह घर पवनीक यानी हवादार हो तथा दुर्गन्ध-रहित हो। प्रकाश भी उस घरमें अच्छी तरह होना जरूरी है। उस कमरेमें सील भी न होनी चाहिए। आजकल सूतिका-गृह बहुधा ऐसा चुना जाता है, जो घर मकानभरमें सब कमरोंसे रद्दी और खराब होता है। किन्तु ऐसा करना बहुत ही बुरा है। वाग्भट्टजीने लिखा है:—

प्राकूचैव नवमात्मास्तात् सूतिका गृहमाश्रयेत्।
दशै प्रशस्ते सम्भारै सम्पन्नं साधकेऽहति॥

अर्थात्—नवाँ महीना शुरू होते ही शुभ दिन देखकर अच्छे स्थानमें बने हुए स्थानको सूतिका-गृह चुनना चाहिए। उसमें सारी आवश्यकीय वस्तुएँ मौजूद रहना जरूरी हैं। ऐसे ही मकानमें गर्भिणी स्त्रीको प्रसव करना चाहिए।

अविद्याके कारण आज हमारी गृह-देवियाँ सूतिका-गृहसे सम्बन्ध रखनेवाली बातोंको बिलकुल ही नहीं जानतीं। पुरुष-जाति भी इस विषयमें बिलकुल कोरी है, इसलिए वह भी उन्हें कुछ शिक्षा नहीं दे सकती। यही कारण है कि इस कामके लिए हमारे यहाँ ऐसा ही कमरा चुना जाता है जो अन्धकारमय और गन्दा

रहता है। हवा जानेकी बिलकुल ही जगह नहीं होती। यदि उस कमरेमें एकाध खिड़की या सूराख हो तो उसे स्त्रियाँ बन्द कर देती हैं। जब कमरेमें कोई सूराख ही नहीं, तो प्रकाश आवे कहाँ-से? वे समझती हैं कि हवा आनेसे प्रसूता स्त्री बीमार हो जाती है। उन्हें इस बातका ज्ञान ही नहीं है कि शुद्ध हवासे स्वस्थ मनुष्य बीमार नहीं होता, बल्कि निरोग होता है; हवा ही जीवमात्रका जीवन है। यदि हवा न हो तो कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता।

सफाईपर जरा भी ध्यान नहीं दिया जाता। एक तो सूतिका-गृह योंही छोटा और गन्दा चुना जाता है, दूसरे उस तंग स्थानमें चार-पाँच गन्दी स्त्रियाँ भी घुसी रहती हैं। उनमें एक चमाइन तो अवश्य ही होती है। क्योंकि नार काटनेका काम चमाइनें ही करती हैं। चमाइनोंका यह हाल है कि एक तो वे स्वाभाविक ही बड़ी गन्दगीसे रहती हैं, दूसरे जब उन्हें इस कामके लिए जाना होता है, तब वे निहायत मैला बदबूदार फटा-चिथड़ा वस्त्र पहन लेती हैं। उनका यह वस्त्र खासकर इसी समयके लिए रक्खा रहता है। इस विषयकी शिक्षा तो उनमें नाममात्रकी भी नहीं होती। चाहे बालक अपनी आयुकी पुष्टिसे भले ही बच जाय, पर सामान सूतिका-गृहमें सब ऐसे ही चुन-चुनकर एकत्र किया जाता है, जिससे बच्चेकी मृत्यु-होनेमें किसी तरहका संदेह नहीं रह सकता। नव-जात शिशुका अङ्ग-प्रत्यङ्ग

कितना कोमल होत है, यह कहनेकी जरूरत नहीं। उनका फेफड़ा कितना नाजुक होता है, यह सबको मालूम है। जब कभी-कभी गन्दी हवासे हृष्ट-पुष्ट और अधिक उम्रवाज़ोंका दम घुटने लगता है, तब उस तंग स्थानकी बदबूसे शिशुका क्या हाल होता होगा, यह स्वाभाविक ही अनुमान किया जा सकता है। उस कोमल हृदयको अस्वस्थ बनानेके लिए तो इतनी ही गन्दगी यथेष्ट है। प्राचीन समयमें इस कामको अनुभवी वैद्य लोग कराते थे; किन्तु अब वह प्रथा नहीं रही। इसलिए कमसे कम इतना तो अवश्य होना चाहिए कि यह काम करनेवाली स्त्रियाँ इस विषयका अच्छा ज्ञान रखनेवाली हों। अतएव इस विषयकी शिक्षाका प्रचार करना अत्यन्तावश्यक है।

अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि सूतिका-गृह कैसा होना चाहिए। ऊपर कहा जा चुका है कि इस घरका साफ-सुथरा और हवादार रहना बहुत जरूरी है। इसके सिवा यह घर कम-से-कम ८-९ हाथ लम्बा और ५-७ हाथ चौड़ा होना चाहिए। इस घरमें बहुत तेज हवा आनेकी आवश्यकता तो नहीं है, पर मन्द-मन्द हवा अवश्य आनी चाहिए। घरमें ठण्ढ बिलकुल न होनी चाहिए। यदि जाड़ेका दिन हो, तो इस घरमें बिना धुएँकी आग हरवक्त दहकती रहनी चाहिए। सुबह-शाम कमरेके दरवाजोंको बन्द कर देना उचित है; इससे कमरेमें शीतका प्रवेश नहीं हो पाता। बाकी समयमें जाड़ेका दिन होते हुए भी दरवाजोंको खुला रक्खे। गर्मीके

दिनोंमें दरवाजोंको बराबर खुला रखना उचित है। वर्षामें यदि घटा घिरी हुई हो तो इन्हें बन्द करके थोड़ासा खुला रहने दे। सौरमें सर्दी लगनेसे मसान आदि रोग हो जाते हैं। घरमें दीपक ऐसे स्थानपर रखना चाहिए जो जच्चाके सन्मुख न हो। सिरहानेकी ओर रखना सबसे उत्तम है। अच्छा हो यदि उस घरमें मिट्टीके तेलका दीपक न जलाया जाय। कारण यह कि इस तेलमें धुआँ होता है और वह धुआँ जीवनके लिए हानिकारक है।

सौरके घरमें बहुतसी स्त्रियाँ न रहने पावें, स्त्रीके पतिको तो उस समय वहाँ रहना ही नहीं चाहिए। घरमें ऐसी स्त्रियाँ उस समय रहें, जो प्रसूताकी प्रेमपात्री हों और प्रिय वचन बोलनेवाली हों—साथ ही इस विषयकी जानकार हों। उस समय भय-युक्त बात भूलकर भी मुखसे नहीं निकालना चाहिए, अधिक-से अधिक चार स्त्रियाँतक प्रसवके समय सूतिका-गृहमें रह सकती हैं। क्योंकि इससे अधिक स्त्रियोंके रहनेसे एक शोर-गुल होता है दूसरे घरकी वायु भी खराब हो जाती है।

इस समय वेदना दो तरहकी होती हैं; एक तो प्रसवकी वेदना और दूसरी किसी अन्य कारण से। प्रसव वेदनाके चिह्न ये हैंः—कोखमें शिथिलता आ जाती है, हृदय बन्धन-रहित जान पड़ने लगता है, दोनों जंघोंमें पोड़ा होने लगती है, कमर या पीठके चारो ओर दर्द होती है, प्रसवद्वारसे कफके समान पानी निकलने लगता है तथा बार-बार मूत्र त्याग करनेकी इच्छा होती है, पर मूत्र

उतरता नहीं। इनके अतिरिक्त प्रसव-वेदना रुक-रुककर होती है। प्रसव-वेदना पहले धीरे-धीरे होती है फिर कुछ समयके लिए रुक जाती है। बाद हलकासी पीड़ा होकर २५-३० मिनटतक रहती है। इसके बाद अधिक देरतक ठहरनेवाली तीव्र वेदना आरम्भ हो जाती है। डाक्टर ट्रालने लिखा है:—

"And there is certainly no reason except in abnormal habits and conditions why parturition should be painful."

अर्थात्—विपरीत आदतों तथा विकृत दशाओंके कारण ही प्रसव-वेदना होती है। इसके अतिरिक्त प्रसव-वेदनाका और कोई भी कारण नहीं है।

वास्तवमें उक्त कथन बहुत ही ठीक है। यदि गर्भिणी स्त्री खाने-पीनेमें व्यतिक्रम न करे, कोष्ठ-शुद्धिपर हमेशा ध्यान रक्खे और अपनी शक्तिके अनुसार बराबर परिश्रम करती जाय—आराम-तलब न हो, तो उसे अधिक प्रसव वेदना नहीं हो सकती। यही कारण है कि मजदूरीका पेशा करनेवाली स्त्रियोंको प्रसवकी पीड़ा बहुत ही कम होती है। अकसर देखनेमें आया है कि गर्भिणी मज-दूरिन पूरा गर्भ हो जानेपर भी काम किया करती है और जब उसे प्रसवके चिह्न दिखलायी पड़ते हैं तब वह काम छोड़कर घर चली जाती है और दो-तीन घण्टेमें ही बच्चा पैदा हो जाता है। प्रसव-वेदना एक रोग है। जिन स्त्रियोंमें यह रोग नहीं होता, उन्हें प्रसव-

वेदना नहींके बराबर होती है। चंगड़ोंकी स्त्रियाँ चली जाती हैं और मार्गमें ही प्रसव कर लेती हैं; बाद बालकको लेकर फिर अपनी राह लेती हैं। उन्हें इस कामके लिए दस मिनटसे अधिक नहीं ठहरना पड़ता। इसी प्रकार अफ्रिकाकी जंगली जातियाँ, जो हमेशा नंगी रहा करती हैं और जिन्हें असभ्य कहा जाता है, बिना किसी विशेष कष्टके बड़ी आसानीसे प्रसव कर लेती हैं, इसका कारण विद्वानोंने यह बतलाया है कि वे काम-काज किया करती हैं और गर्भाधान हो जानेके बाद मैथुन एक बार भी नहीं करतीं।

प्रसव-वेदनाके समय मल-मूत्रके वेगको कभी भी न रोकना चाहिए। यदि इनकी रुकावट हो गयी हो तो फौरन यत्न करना उचित है। यदि इस समय भूख लगे तो गायका गरम दूध थोड़ा कुनकुना रहनेपर पिलाना चाहिए; प्यास लगनेपर ठण्ढा पानी देनेमें कोई हानि नहीं है। कुछ लोगोंका कहना है कि प्रसवका समय निकट आ जानेपर गर्भिणीको मल तो त्याग आने दे, पर पेशाब लगनेपर मूत्र-त्याग न करावे—क्योंकि मूत्रको रोकनेसे प्रसवमें बड़ी सहायता मिलती है। किन्तु हमारे खयालसे मूत्रका वेग रोकना भी ठीक नहीं है।

जब लक्षणोंसे यह निश्चय हो जाय कि वेदना प्रसवकी ही है, तब उसको खूब कसी हुई लम्बी-चौड़ी चारपाईपर सुला देना चाहिए। यदि तख्ता हो तो और भी अच्छा। गर्भिणीको भूमिपर कभी न लेटना चाहिए; क्योंकि धूलमें हजारों रोगोत्पादक कीटाणु

होते हैं। ये कीटाणु शिशुके ऊपर चढ़ जाते हैं और उसे रोगी बना देते हैं। प्रसवके समय प्रायः स्त्रियोंके लिए फटे, पुराने और मैले चिथड़े दिये जाते हैं; किन्तु यह ठीक नहीं है। स्वच्छताकी ओर पूरा ध्यान रखना चाहिए। ऐसे कपड़ोंसे प्रसविणी और नव-जात शिशुके बीमार होनेकी पूरी सम्भावना रहती है; क्योंकि यह अवस्था बड़ी ही नाजुक होती है। कभी-कभी वस्त्रोंकी गन्दगीके कारण भी बच्चोंका दम घुटने लगता है और वे मर जाते हैं।

यदि सूतिका-गृहमें रखनेवाली चारपाई या तख्तेको गरम जल-से धोकर सुखा लिया जाय और बाद सूतिका-घरमें बिछावे तो बड़ा ही अच्छा हो। जिस प्रकार उत्तम चारपाईकी जरूरत है, उसी प्रकार सूतिका-गृहमें उत्तम, स्वच्छ, कोमल और सुखद बिछौनेकी भी जरूरत है। सूतिका-गृहमें एक भी फालतू चीज न रहने दे। प्रसूताकी चारपाई दीवारके पास खिड़की-के सामने बिछानी चाहिए। उस घरमें हरवक्त गरम पानी तैयार रहना चाहिए। दाईको प्रसवके वक्त इस पानीसे हाथ धोकर प्रसूताकी सुश्रूषा करनी चाहिए। जो दाई काम करनेके लिए नियत की जाय, उसे साफ वस्त्र पहना देना चाहिए और उसकी अँगुलियोंके नाखून भी कटवा दे। क्योंकि नाखूनसे गर्भस्थानमें चोट लग जानेका भय रहता है।

जब प्रसवकाल बिलकुल निकट आ जाय, तब खूब सावधानी से यह देखना चाहिए कि बच्चा पेटमें किस प्रकारसे है। सिर नीचे

है या पैर अथवा आड़े तो नहीं है। पहचाननेकी रीति यह है कि प्रायः सभी बालकोंका सिर नीचेकी ओर होता है और सिरके बल ही वे पैदा होते हैं। जब बालकका सिर नीचेको ओर होता है, तब वह बायीं ओरसे दाहिनी ओरको घूमता है और स्त्रीको बायीं ओर भारी मालूम होता है; किन्तु जिस स्त्रीको दाहिनी ओर भारी रहे और बालक दाहिनी ओरसे बायीं ओर घूमे तब समझना चाहिए कि बालकके पैर नीचेकी ओर हैं और वह पैरके बल उत्पन्न होगा। यदि दोनों ओर भारी रहे और घूमे न, तो समझ ले कि बालक आड़े पड़ा हुआ है और हाथके बल उत्पन्न होगा। इसमें स्त्रीको बहुत कष्ट होता है। यहाँतक कि सौमें पंचानबे स्त्रियाँ मर जाती हैं।

बहुधा दाइयाँ वेदनाके समय गर्भिणीसे काँखनेके लिए कहती हैं। इसमें उनका उद्देश्य यह होता है कि इस प्रकार जोर लगानेसे बच्चा जल्द बाहर निकल आवेगा; किन्तु ऐसा करना अत्यन्त घातक है। इस समय यदि गर्भिणीको रुचे तो थोड़ा घी डाला हुआ दूध पिलाना चाहिए। हाँ यदि प्रसव हो रहा हो, तब तो थोड़ा जोर लगाना ठीक होता है, पर उस समय तो अधिकांश स्त्रियोंको चेत ही नहीं रहता। प्रसवके समय इतनी वेदना होनेका कारण यह है कि गर्भाशयका मांस धीरे-धीरे सिकुड़ने लगता है और प्रसव द्वार चौड़ा होने लगता है। गर्भाशयके सिकुड़नेकी लहरें उठती हैं, इन्हीं लहरोंके कारण स्त्रीको इतना कष्ट होता है।

गर्भाशयके भीतर बच्चा और कुछ तरल पदार्थ होते हैं।

इस समय बहुतसी स्त्रियाँ अपना दिल एकदम छोटा कर लेती हैं। वे यह समझती हैं कि अब जान नहीं बचेगी। इसीसे प्रसव-कालमें पासमें रहनेवाली स्त्रियोंका बुद्धिमती होना आवश्यक बतलाया गया है। क्योंकि चतुर स्त्रियाँ गर्भिणीको सान्त्वना दे सकती हैं और अपनी बुद्धि-चातुरीसे उसके दिलको बहला सकती हैं। इस समय गर्भिणीमें हिम्मत पैदा करना उसकी जीवन-रक्षाके लिए बहुत ही आवश्यक होता है। विचारोंका प्रभाव मनुष्यपर बड़ा ही गहरा पड़ता है। इस विषयकी जाँच एक बार अमेरिकाके कुछ विद्वानोंने की थी। उनलोगोंने इस बातकी जाँच करनेके लिए कि—"मनुष्यपर विचारोंका प्रभाव कितना पड़ता है और पड़ सकता है।" "तथा मनुष्यको जिस बातका दृढ़ निश्चय हो जाता है, उसका वैसा ही प्रभाव होता है या नहीं ?" एक ऐसे व्यक्तिको लिया जो न्यायालयसे फाँसीका दंड पाये हुए था। उक्त विद्वानोंने अदालतको इस बातका विश्वास दिलाया कि, "न तो इसे छोड़ा जायगा और न इसे जिन्दा ही रक्खा जायगा। हमलोग बिना इसे किसी प्रकारका कष्ट पहुँचाये ही एक विशेष रीतिसे मार डालेंगे।" यह सुनकर जजको बड़ा आश्चर्य हुआ और साथ ही उस रीतिको जाननेके लिए वह उत्कण्ठित भी हुए। फिर क्या था, जज महाशय भी वहाँ जा पहुँचे, जहाँ यह प्रयोग किया जानेवाला था। उक्त विद्वानोंने दर्शकोंसे संकेत द्वारा यह कहकर कि आप

लोग कुछ न बोलें जो कुछ किया जाय, उसे चुपचाप देखते रहें,—अपना प्रयोग इस प्रकार आरम्भ किया :—

पहले उस आदमीको एक मेजपर लिटाकर उसके दोनों हाथ पीठपर चढ़ाकर बाँध दिये गये। यह काम इसलिए किया गया जिसमें वह अपने शरीरको टो न सके। साथ ही उसकी आँखोंपर पट्टी भी बाँध दी गयी। बाद एक आदमीने अपने साथीसे कहा,—"मैं इसकी गर्दनकी मुख्य रक्तवाहिनी नाड़ीमें नश्तर लगाता हूँ, उससे इसके शरीरका सारा खून निकल जायगा और यह अत्यन्त क्षीण तथा निर्बल होकर मर जायगा।" साथियोंने इस कथनका समर्थन किया। पश्चात् उस मनुष्यने उसकी गर्दन टटोलकर एक नसके ऊपर ऐसी चुटकी ली, जिससे उस बँधे हुए आदमीको यह विश्वास हो गया कि "मेरे नश्तर लगा दिया गया।" पासहीमें एक रबरकी नली तैयार थी; उससे नीचे रक्खे हुए बर्त्तनमें बूँद-बूँदकर पानी गिराया जाने लगा और उसे सुनाकर कहा जाने लगा कि खून निकलना शुरू हो गया। बूँदोंकी आवाजसे उस मनुष्यको निश्चय हो गया कि मेरे शरीरका खून गिर रहा है। थोड़ी देरके बाद एकने कहा, इस तरहसे तो शरीरका सारा खून निकलनेमें बड़ी देर लगेगी। यदि आपलोगोंकी राय हो तो मैं इस नाड़ीका मुँह और चौड़ा कर दूँ। सबलोगोंने कहा, हाँ यही ठीक है। अतएव उसी नसपर पहलेकी भाँति फिर ऐसा दबाया गया, जिससे उसे यह मालूम हुआ कि नश्तर गहरा कर दिया गया। तबतक

एक आदमीने कहा भी कि, अब इस नसका मुख काफी खुल गया है, इसके शरीरका सब खून अब थोड़ी ही देरमें गिर जायगा। साथ ही उस रबरकी नलीसे पानी भी अधिक गिराया जाने लगा। एक साथी उसकी नाड़ी और हृदयकी गति देखकर कहने लगा कि, इसकी नाड़ी अब मन्द होती जा रही है; हृदयकी धड़कन भी अब बिलकुल कमजोर हो चली है। उस बेचारेको क्या मालूम कि यह सब झूठी कार्रवाई की जा रही है? उसने समझा कि अब मैं थोड़ी देरमें ही मर जाऊँगा। इस प्रकार उसका दिल छोटा होता जानेसे उसकी शारीरिक चेष्टाएँ भी अपने-आप शिथिल होती गयीं। यहाँतक कि अब उसकी शक्ति सचमुचमें कम हो चली और निर्बलताके कारण उसके सब अंगोंमें सनसनाहट शुरू हो गयी। इस प्रकार विचारोंमें निमग्न होते-होते वह प्रायः चेतना-रहित हो चला। प्रयोग करनेवाले विद्वानोंने क्रमशः रक्तस्रावको रोक करके कहा कि अब इसके शरीरमें एक बूँद भी खून नहीं रह गया। यह सुनकर उसका दिल और भी छोटा हो गया। डाक्टरोंने बारी-बारीसे उसकी नाड़ी देखी और यह ज्ञान प्राप्त किया कि मनुष्यके विचारोंका उसपर कितना गहरा असर पड़ता है। सब डाक्टरोंको यह बात अच्छी तरह मालूम हो गयी कि अब यह कुछ ही देरका मेहमान है। सचमुचमें वही बात हुई जो डाक्टरोंने कहा। तीन-चार मिनटमें ही उसकी नाड़ी और हृदयपर उन डाक्टरोंने हाथ रक्खा तो उसे बिलकुल ठण्ढा पाया।

इस घटनासे हमारी माताएँ और बहनें समझ सकती हैं कि विचारोंका कितना गहरा प्रभाव मनुष्यपर पड़ता है और गर्भिणीका अपने जीवनसे निराश हो जाना उसके जीवनके लिए कितना हानि-कारक है। इसलिए पासमें रहनेवाली स्त्रियोंको खूब बुद्धिमानीसे गर्भिणीको उत्साहित रखना उचित है। इस समय बहुतसी दाइयाँ भीतर हाथ डालकर देखती हैं; किन्तु यह बहुत ही बुरा काम है। इससे प्रसूताको बहुत कष्ट होता है। गर्भाशयके भीतर बालक एक झिल्ली से मढ़ा रहता है। बच्चेके बाहर निकलते-निकलते यह झिल्ली फट जाती है। झिल्लीके फटनेका शब्द भी होता है। इसके फटते ही गर्भोदक बहने लगता है। इससे बच्चेके निकलनेके मार्गमें चिकनाहट पैदा हो जाती है। कभी-कभी यह झिल्ली नहीं भी फटती और बच्चा झिल्ली सहित बाहर निकल आता है। इस समय होशियारीकी जरूरत है। चतुर दाईको उचित है कि खूब सावधानीसे उस झिल्ली को नाखूनसे या चाकूसे फाड़कर बालकको निकाल ले। इस काम-में यदि देर की जाती है तो बच्चा मर जाता है। क्योंकि गर्भमें बच्चे के फेफड़े साँस लेने अथवा छोड़नेका काम नहीं करते; किन्तु ज्योंही वह बाहर निकलता है, त्योंही उसकी श्वास-प्रच्छ्वास क्रिया जारी हो जाती है। झिल्ली, उसके इस काममें रुकावट डालती है, इसलिए उसके हटानेमें विलम्ब होनेसे बच्चा मर जाता है। इस काममें सावधानी रखनेके लिए इस वास्ते कहा गया है कि कहीं

झिल्ली फाड़नेके समय चाकू या नाखून बच्चेके शरीरमें न लग जाय ।

कभी-कभी बच्चे पेटमें ही मर जाते हैं। पेटमें बच्चेके मर जानेकी पहचान यह है कि मरा हुआ बच्चा पेटमें घूमता नहीं है। पेटमें मांसका लोथासा हो जाता है। स्त्रीके स्तनोंका दूध सूख जाता है और उसमें ढिलाई आ जाती है। यदि बच्चा मर जाय तो फौरन किसी अच्छे डाक्टरसे उसे निकलवानेका प्रबन्ध करना चाहिए। देर करनेसे स्त्रीकी जान खतरेमें पड़ जाती है।

प्रसवकालकी साधारणतया तीन अवस्थायें होती हैं। पहली अवस्थामें तो बालक धीरे-धीरे और रुक-रुककर प्रसव द्वारकी ओर आता है और दूसरी अवस्थामें वह पैदा होने लगता है। तीसरी अवस्था वह है, जो बालक उत्पन्न होनेके पीछे प्रसूताके पेटमेंसे पानीको तरह कोई पदार्थ निकलता रहता है। पहली दशामें प्रसूताको खड़ी रखे या सँभालकर टहलाती रहे। परन्तु उतना टहलाना उचित है, जितनेसे उसे थकावट न मालूम हो। यदि थकावट आने लगे तो बैठा दे और यदि नींद आती हो, तो बेधड़क सो जाने दे। क्योंकि नींद उचटनेके बाद जब वेदना शुरू होती है तब बहुत जल्द प्रसव हो जाता है। प्रसूताको चित्त या पट न लिटाकर बायीं करवटसे या जिस ओरसे लेटनेमें उसे आराम मिले उसी ओर लिटाना अधिक उत्तम है। दोनों घुटनोंके बीचमें कोमल तकिया रख देना चाहिए, ताकि दोनों जाँघें अलग-अलग रह सकें। अब इस अवस्थामें प्राणवायुको भीतर रोककर जोर लगाना

प्रसूताके लिए लाभदायक है, इस समय भी जोर उतना ही लगाना चाहिए जितना स्वाभाविक रीतिसे मल त्याग करनेमें—अधिक नहीं। किन्तु मूर्ख दाइयाँ पहली ही अवस्थामें जोर लगवा-लगवाकर प्रसूताको थका डालती हैं, जिससे हानि होती है। पहली अवस्थामें सिर्फ टहलानेके और कोई काम नहीं लेना चाहिए। टहलानेसे वेदना तीव्र हो जाती है, जिससे प्रसव होनेमें शीघ्रता होती है। यदि वेदना मन्द पड़ जाय तो स्त्रीको थोड़ासा गरम दूध पिलाना चाहिए। इससे जरायुका मुख शीघ्र खुल जाता है। कोई-कोई स्त्रीको दो चार दिनतक प्रसव-वेदना सहनी पड़ती है। उस समय घरकी स्त्रियाँ भोजन नहीं देतीं; किन्तु ऐसा करना उचित नहीं। गरम दूध या साबूदाना अथवा मखानेकी खीर आदि हलकी चीजें अवश्य खानेको देनी चाहिएँ।

प्रसव होते समय एक चतुर स्त्रीको प्रसविणीके पीछे बैठ जाना चाहिए। उसे अपना हाथ प्रसूताकी पीठपर धीरे-धीरे फेरना चाहिए। जिस स्त्रीको पहलौठीका बालक होता हो, उसको तो बड़ी ही सावधानी होनी चाहिए। इससे जननीको शान्ति मिलती है। जबतक बच्चा पैदा न हो जाय, तबतक उस स्त्रीके पीछेसे नहीं हटना चाहिए और हलका हाथ भी फेरते जाना उचित है। जब बालकका सिर बाहर निकल आवे तब उसकी गर्दनके चारो ओर हाथ फेरकर यह देख लेना जरूरी है कि नाल गर्दनमें तो नहीं लिपटा है। पैदा होते ही यदि यह नाल शरीरसे न निकाला जाय

तो बच्चेके मर जानेका भय रहता है। बालकका मस्तक निकल आनेपर बहुतसी मूर्ख दाइयाँ बच्चेका मस्तक पकड़कर खींचती हैं। किन्तु ऐसा कभी न करना चाहिए। मस्तकके साथ एक नस होती है, उसके खिंच आनेसे बालककी मृत्यु हो जानेका भय रहता है। इसलिए दाईको चाहिए कि स्त्रीके पेटपर धीरे-धीरे हाथ फेरे। ऐसा करनेसे फिर प्रसव-वेदना शुरू हो जाती है और बच्चेका शेष अंग भी बाहर निकल आता है, खींचनेको जरूरत नहीं पड़ती।

ऊपर जिस नालकी चर्चा की गयी है, यदि वह नाल बच्चेकी गर्दनमें लिपटा हुआ हो तो धीरे-धीरे हलके हाथोंसे उसे खोलकर सिरके ऊपरसे उतारकर भीतर कर देना चाहिए। यदि नालमें उलझन अधिक हो तो उसमें समय लगाना ठीक नहीं है। यदि सिर निकल आनेके बाद प्रसवकी वेदना पेटपर हाथ फेरनेसे भी न पैदा हो, तो समझना चाहिए कि अभी बच्चेका समूचा शरीर निकलनेमें कुछ देर लगेगी। इसलिए ऐसे समयमें चतुर दाई बालकको खींचकर निकाल ले, यही अच्छा है। क्योंकि देर लगने से भी बच्चेकी मृत्युकी आशंका रहती है। परन्तु इतने पर भी सिर पकड़ कर दाई कभी न खींचने पावे। उसे चाहिए कि वह अपने दोनों हाथोंकी अँगुलियाँ भीतर डालकर बालकके बगलोंमें अँकुशकी तरह अड़ाकर खींचे। खींचते समय पीछे बैठी हुई स्त्रीको चाहिए कि वह प्रसूताका पेट दबाये रहे। पेटके दबाये रहनेसे रक्त नहीं निकलने पाता। रक्त निकलनेसे बालकको हानि पहुँचती

है। क्योंकि वह रक्त बालकके कान, नाक, और मुखमें भर जाता है ।

किसी-किसी स्त्रीको बालक पैदा होते समय बड़ा कष्ट होता है, जल्द प्रसव होता ही नहीं। कई दिनोंतक असह्य वेदना होती रहती है। ऐसी दशामें नीचे लिखे यत्नोंसे काम लेना चाहिए। किन्तु यत्न करनेके पहले इस बातको अच्छी तरहसे जान लेना चाहिए कि प्रसव-वेदना ही है या और कुछ। जब यह निश्चय हो जाय कि प्रसव-वेदना ही है, तब नीचे लिखे उपायोंको काममें लाकर गर्भिणीके कष्टको दूर करना चाहिए:—

करं की भूत गोमूर्द्धां सूतिका भवनोपरि।
तत्काल निहितं नार्याः सुख प्रसव कारकम् ॥
करंज पत्र बीजानां कल्केनचभिषग्वरः।
तैलं पक्त्वाह्यजाक्षीरे योनिलिम्पेत्प्रसूतये ॥

—बालतन्त्रम्।

अर्थात्—१—गाय या बैलके शिरका करक बालक पैदा करनेवाली स्त्रीके मकानकी छतपर रख देनेसे फौरन बच्चा पैदा हो जाता है। या करंजुवाके पत्तों और बीजोंका कल्क बनाकर या बकरीके दूधमें तिलके तेलको पकाकर प्रसव स्थानमें मलनेसे बच्चा पैदा हो जाता है, विशेष कष्ट नहीं होता।

२—अथवा जो पीछे भँड़भाड़की जड़ कपड़ेमें लपेटकर प्रसविणीकी कमरमें बाँधनेके लिए लिखा गया है, वह करे। यह दवा परीक्षित है, शर्तिया प्रसव हो जाता है।

३—रेंड़ीका तेल पेड़ूपर धीरे-धीरे मलनेसे बहुत जल्द प्रसव हो जाता है।

४—सेहुँड़का दूध नख और टूँड़ी पर मले।

५—सवातोला अमलतासका छिलका पानीमें औटाकर ऊपरसे चीनी मिलाकर पि[illegible]ा देनेसे भी प्रसव जल्द हो जाता है।

६—यदि चुम्बक पत्थरको प्रसूता अपने हाथमें लिए रहे, तब भी प्रसव जल्द हो जाता है।

७—फालसेकी जड़ अथवा शालपर्णीकी जड़को पानीमें पीसकर नाभी, वस्ति और योनिपर लेप करनेसे भी लाभ होता है।

८—अपामार्ग (इसे ग्रामीण भाषामें चिरचिटा या चिचिड़ी कहते हैं) की जड़ महीन पीसकर नाभिके नीचे योनि और जंघोंपर लेप कर देनेसे भी प्रसव सुखपूर्वक हो जाता है।

९—अपामार्ग बड़ी ही तीक्ष्ण वस्तु है। यदि बहुत आवश्यकता आ पड़े और बालक किसी तरह भी बाहर न निकलता हो, तब इसकी जड़ (ताजी) जिसकी लम्बाई तीन-चार अँगुल हो, बड़ी सावधानीसे प्रसूताकी योनिमें रख दे। साधारण दशामें इसका प्रयोग कभी नहीं करना चाहिए, नहीं तो गर्भाशयतक बाहर निकल पड़ेगा।

१०—मनुष्यके बाल जलाकर गुलाब जलमें मिला दे, बाद उसे स्त्रीके तलवेपर मलनेसे भी जल्द प्रसव हो जाता है।

११—प्रसूता अपने लटको मुखमें डाल ले। इससे भी शीघ्र प्रसव हो जाता है।

१२—'अर्पाका' नामक अंग्रेजी दवा एक-एक रत्ती तीन बार देनेसे सहजहीमें प्रसव हो जाता है।

१३—बचको उबालकर पीनेसे भी बहुत ही लाभ होता है।

१४—गर्भिणीके शरीरमें अच्छी तरहसे तेल लगाकर गरम जलसे स्नान कराना भी हितकर है।

१५—थोड़ीसी मूँगकी खिचड़ी गरम-गरम खिलाना या गरम दूध पिलाना भी फायदेमन्द है।

१६—साँपकी केंचुरकी धूनी गुह्य स्थानमें देनेसे भी प्रसव होनेमें बड़ी सहायता मिलती है।

१७—छींक आनेके लिए कोई दवा देनेसे भी बच्चा शीघ्र बाहर निकल आता है।

१८—पाँच तोले गुड़में एक तोला अजवाइनका काढ़ा बनाकर कुनकुना पिलानेसे भी प्रसव हो जाता है।

१९—रेंडीकी गिरी, पोपल और बचको तिल्लीके तेलमें पीसकर नाभिके ऊपर लेप करनेसे कितना ही कष्ट क्यों न हो, फौरन दूर हो जाता है और सुखसे सन्तान पैदा होती है। अथवा—

मयूरमूलासन शिग्रुपाठा व्याघ्री बला लांगलिका समेताः।
पिष्टवार नालेन विलिप्य नाभौ सुखेन नारी प्रसव करोति॥
शालिपर्ण्या भवंमूलं पिष्टं तंडुल वारिणा।
नाभि वस्ति भगे लेपात्प्रसूते प्रमदा सुखम्॥ वालतंत्रम्॥

उक्त श्लोकोंके अनुसार मोरशिखाकी जड़, विजयसार, सहिजनकी जड़, पान, कटाली और खरेंटी इन चीजोंको बराबर-बराबर लेकर काँजीके जलमें पीस, नाभिमें लेप करनेसे शीघ्र प्रसव हो जाता है। या शालपर्णीकी जड़को चावलके पानीमें पीसकर नाभि, भग और वस्तिमें लेप करनेसे सुखसे बालक उत्पन्न हो जाता है। या—

> कृत्वा दशधा खंडं गुंजा निबद्य कटिदेशे।
> सूत्रैः सप्तभीरक्तैः सुखप्रसूतिं हि भामिनी लभते।
>
> बालतंत्रम्।

अर्थात्—चिरमिटीकी जड़को दस टुकड़े कर डाले। बाद सात तारके लाल धागेमें उनको अलग-अलग बाँधकर कष्टवाली स्त्रीकी कमरमें बाँध देनेसे सन्तान तत्क्षण उत्पन्न हो जाती है।

गाजरके बीज, सौंफ, सोया, मेथीके दाने, बटवृक्षकी जड़, बनकशा और मुलहठी प्रत्येक तीन-तीन माशे लेकर क्वाथ बनावे। फिर उसे छानकर गर्भिणीको पिलानेसे सुखसे प्रसव हो जाता है।

साधारणतः जिस प्रकार प्रसव होता है और प्रसवकालमें जिन बातोंका जानना आवश्यक है, उनका वर्णन यहाँतक किया जा चुका; किन्तु कभी-कभी ऐसी विकट समस्या उपस्थित हो जाती है कि बालक और प्रसूता दोनोंकी जान जानेका भय रहता है। जैसे, पहले सिर न निकलकर बच्चेका नितम्ब बाहर निकल आता है। यह भयंकरताका चिह्न है। इस समय चतुर दाई ही काम कर सकती है। कभी-कभी बच्चा अधिक मोटा होने अथवा

चित्र नं० ७, चौथा महीना । पृष्ठ संख्या १२४

मर जानेके कारण बाहर नहीं निकलता। बच्चेका गर्भमें मर जाना बड़ा ही भयंकर है। ऐसी दशामें फौरन डाक्टरको बुलाना चाहिए। कभी-कभी आँवल पहले ही निकल आती है। यह भी भयंकर बात है। इसको बच्चा पैदा होनेके बाद निकलना चाहिए; किन्तु कभी-कभी यह गर्भाशयके मुखके पास लग जाती है। इसीसे पहले यही निकल पड़ती है। जब रज पाँचवें अथवा छठे महीनेमें प्रवाहित हो, तब समझना चाहिए कि आँवल गर्भाशयके पास ही है। आँवल गर्भाशयके मुखके पास है या नहीं, यह जाननेके लिए छठे महीने जब रुधिर बहे और इसी तरह बिना किसी कारणके कभी-कभी बहने लगे, तब अँगुली डालकर यह देखना चाहिए कि कोई, मुलायम चमड़ेकी तरह चीज तो नहीं है। यदि ऐसी चीजका अँगुलीसे स्पर्श हो, तो समझ लेना चाहिए कि आँवल गर्भाशयके मुखके पास ही है। इसका निश्चय हो जानेपर प्रसवके समय दाईको खूब सावधानीसे काम करना चाहिए। प्रसव-पीड़ा शुरू होनेपर चतुर दाईको चाहिए कि वह अपना हाथ गरम पानीसे खूब साफ करके भीतर डालकर आँवलको रोक दे और बच्चेको पहले बाहर निकल आने दे।

कभी-कभी गर्भमें एकसे अधिक बच्चे भी रहते हैं। इसमें भी दाईको खूब सावधानीसे काम लेना चाहिए। क्योंकि इसमें भी प्रसूताको बहुत कष्ट होता है। कभी-कभी पाँच-सात बच्चेतक गर्भमें एक साथ रहते हैं।

नवजात शिशु

बालक उत्पन्न हो चुकनेपर दो बातोंकी ओर ध्यान देना चाहिए। एक तो उसके रोनेपर और दूसरे मल त्यागपर। बच्चा पैदा होते ही रोने लगता है। यह उसकी स्वस्थ्यताकी खास पहचान है। रोनेसे यह सूचित होता है कि उसके फेफड़े हवासे भर गये और श्वासप्रच्छ्वास क्रिया आरम्भ हो गयी। यदि बालक न रोवे तो समझना चाहिए कि अभी वह हाँफ रहा है।

बच्चेके पैदा होते ही सबसे पहले उसके गलेके नालको देखना उचित है। बहुधा बच्चोंके गलेमें नाल (नार) लिपटा हुआ आया है। इसलिए यदि वह लिपटा हुआ हो तो उसे छुड़ा देना चाहिए। कभी-कभी थैलीमें ही लिपटा हुआ भी बच्चा पैदा होता है, जिसके लिए पहले लिखा जा चुका है कि तुरन्त झिल्लीको फाड़कर बच्चा निकाल लेना उचित है। बाद यह देखे कि बालक हाँफता तो नहीं है। यदि हाँफता हो तो पहले उसके मुखमें सावधानीसे अँगुली डालकर लार निकाल डाले। बाद ठण्ढे पानीमें अपना हाथ डुबाकर बच्चेकी छातीपर बहुत धीरेसे हथोसना चाहिए। थोड़ा हथोसनेपर ही बालक रोने लगेगा। यदि इससे भी बालक न रोवे तो थोड़ेसे ठण्ढे जलका हल्का छींटा उसके मुखपर देना चाहिए अथवा बालककी पीठपर हल्की थपकियाँ लगाकर रुलाना चाहिए। यदि इतनेपर भी बालक न रोवे तो उसे गोदमें चित लिटा ले और

उसके दोनों हाथ पकड़कर जरा ऊपर उठावे तथा उसके मुखमें दो-चार फूँक लगावे। किन्तु फूँक लगानेवाली स्त्रीका मुख बदबूदार न हो, नहीं तो बच्चेके बीमार हो जानेका भय रहेगा। बहुतसी स्त्रियाँ बच्चेको रुलानेके लिए ठण्ढे पानीमें उसका सिर डुबा देती हैं, पर यह काम अच्छा नहीं है। बल्कि इससे अच्छा तो यह है कि बालकको रुलानेके लिए एक बार उसे ठण्ढे पानी में और फिर दूसरी बार जरा कुनकुने पानीमें बहुत थोड़ी देर रक्खे।

यदि बालक होकर नीला पड़ जाय; तो उसकी नाभिसे तीन अँगुल छोड़कर नालको काट दे। जब पैसे भरके अन्दाज खून गिर जाय, तब उसे फौरन बाँध दे; बहुत खून न गिरने पावे। ऐसा करनेसे मुख, आँखका नीलापन दूर हो जाता है। कितनी ही दाइयाँ बच्चेको रुलानेके लिए काली मिर्च चबाकर उसके मुखमें फूँकती हैं, किन्तु इससे बच्चेकी बहुत हानि होती है।

इस प्रकार पहले बच्चेको रुलाकर तब उसका नाल काटना चाहिए। नाल काटनेकी रीति यह है:—नालको नाभिसे तीन अँगुल छोड़कर बाँध दे। फिर उस बन्धनसे आधा अँगुल छोड़कर एक बन्धन और लगा दे। बाद दोनों बन्धनोंके बीचमें तेज औजार-से काट दे। नाल काटनेके पहले बन्धन लगाना इसलिए बहुत जरूरी होता है कि जिसमें बच्चेके शरीरका खून न निकलने पावे। क्योंकि खून निकलनेसे बच्चा मर जाता है। नालमें दूसरा बन्धन इसलिए लगाया जाता है कि, शायद प्रसूताके पेटमें दूसरा बालक

हो। यदि वह बन्धन न लगाया जाय और पेटमें दूसरा बच्चा हो तो रक्त निकल जानेके कारण वह तुरन्त ही मर जाय। फिर तो प्रसूताका बचना भी कठिन हो जाता है। इसीसे दूसरा बन्धन लगा देना भी आवश्यक है। क्योंकि पेटमें जितने बच्चे होते हैं सबका नाल एक ही होता है। यदि पेटमें दूसरा बच्चा हो तो प्रसूता स्त्रीसे इसका हाल कभी न कहे। नहीं तो घबड़ा जानेके कारण प्रसूताकी जान खतरेमें पड़ जानेकी सम्भावना रहती है।

नाल काटनेसे पहले एक बातपर ध्यान अवश्य देना उचित है। यह कि, बच्चा निर्जीव तो नहीं है। यदि वह निर्जीव यानी कमजोर अधिक हो, तो नाल काटनेसे पहले नालको माँकी ओरसे दुहकर बालककी नाभितक ले आवे। ऐसा करनेसे कुछ खून बच्चेके शरीरमें चला जाता है। इतना करनेके बाद नालको काटना उचित है। कमजोर बालकके लिए कुछ दाइयाँ नालके खूनकी चार-पाँच बूँदें चटा देती हैं; किन्तु यह क्रिया हमें अच्छी नहीं जँचती— यद्यपि इससे भी बालककी कमजोरी दूर हो जाती है, क्योंकि माँका खून बच्चेके लिए बहुत ही लाभदायक है, चाहे वह किसी भी रूपमें उसके शरीरमें प्रवेश कराया जाय। सबसे अच्छा तरीका वही ऊपरवाला नालको दुहकर बच्चेके शरीरमें रक्त पहुँचाना है। नाल काटनेसे पहले उसे शहद, घी और सेंधा नमकसे मलकर शुद्ध कर लेना बहुत ही उत्तम है। या सोने अथवा चाँदीके बुझे हुए जलसे नालको शुद्ध करके तब काटे।

नालोच्छेदन करनेके बाद पहलेसे पीसकर रक्खी हुई एक माशे लकड़ीके कोयलेमें दो चावल कस्तूरीकी बुकनी मिलाकर उसपर लगा देनी चाहिए। ऐसा करनेसे बच्चेको मसानका रोग नहीं होत। पश्चात् घी, शहद, अनन्तमूल और ब्राह्मीके रसमें थोड़ासा सोनेका चूर्ण मिलाकर चटा दे; यह बहुत ही गुणदायक है।। इससे एक तो बालकका मल गिर जाता है और दूसरे बच्चे की तन्दुरुस्तीपर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है, यदि ये चीजें न मिल सकें, तो बच्चेको शहद और घी चटाना चाहिए।

यदि बालक सतमासा या गर्भ पूरा होनेके कुछ पहले ही पैदा हो जाय और वह निर्बल अधिक हो तो उसके लिए एक यत्न और करना चाहिए। वह यह कि धुनी हुई रुई कड़वे तेलमें भिगोकर उसमें दो या चार दिनतक बच्चेको रक्खे। इससे बच्चेका उतना ही पोषण होता है, जितना कि माताके पेटमें।. ऐसा करनेसे सतमासे बच्चे भी बहुतसे जी जाते हैं।

जिस छुरी या कैंचीसे नालोच्छेदन करना हो, उसे पहले खूब खौलते हुए पानीमें डालकर गरम कर लेना चाहिए। बाद उसको ठंढा करके काममें लाना उचित है। ऐसा करनेसे लोहेके औजारमें कोई विकार नहीं रह जाता और नाल जल्द सूख जाता है। नाल काटनेके बाद बच्चेके शरीरमें बेसन लगाकर उसे किंचित गरम जलसे नहला देना चाहिए। ऐसा करनेसे बच्चेके शरीरकी मैल छूट जाती है। बालकके उत्पन्न होते ही चतुर दाईको यह देख

लेना चाहिए कि उसका अंग-प्रत्यंग सब ठीक है या कोई अंग विकृत अथवा जुड़ा हुआ है। क्योंकि बहुतसे बच्चोंकी हाथ-पैरकी अँगुलियाँ एकहीमें जुड़ी हुई होती हैं। इसलिए यदि ऐसा हो तो फौरन तेज छुरेसे उसे अलग कर देना चाहिए। ऐसा न करनेसे अँगुलियाँ जुड़ी हुई ही रह जाती हैं। इसी प्रकार यदि आँखोंकी पलकें बन्द हों यानी जुड़ी हुई हों तो उन्हें भी नश्तर देकर ठीक कर देना चाहिए। यदि गुदाका छिद्र बन्द हो तो उसे भी खोल देना चाहिए। आजकल बहुतसी दाइयाँ काँचकी चूड़ीको तोड़कर उसकी नोकसे चीर देती हैं; परन्तु यह बहुत ही वाहियात काम है। इससे बहुत भय और हानि है। यह काम तेज छुरेसे ही होना उचित है। किन्तु इसके लिए बहुत ही चतुर दाई की आवश्यकता है। इसी प्रकार यदि कोई अंग बेडोल हो तो उसे तुरन्त ठीक कर देना चाहिए। जैसे, यदि नाक चिपटी हो तो उसे दुहकर ऊपरको उठा देनी चाहिए; यदि मस्तक टेढ़ा हो तो उसे दोनों हाथोंसे दाब कर सुडौल कर देना चाहिए। इस समय थोड़ी सावधानी और उपायसे बेडौल अंग सुडौल हो सकता है; क्योंकि शरीरकी हड्डियाँ बहुत ही कोमल रहती हैं। परन्तु बच्चेके शरीरमें ज्यों-ज्यों हवा लगती है, त्यों-त्यों उसकी हड्डियाँ कड़ी होती जाती हैं।

कभी-कभी बच्चा उत्पन्न होनेपर चुपचाप पड़ा रहता है, उसका कोई भी अंग नहीं हिलता-डोलता। ऐसी दशामें बच्चेको होशियारी से उल्टा अर्थात् सिर नीचे और पैर ऊपर करके १०-१५ सिकेंड

तक रखना चाहिए और उसकी छातीको धीरे-धीरे दबाकर फेफड़ोंमें चैतन्यता लानी चाहिए। इस समय बच्चेके मुँहमें अँगुली डालकर बलगम वगैरह निकाल लेना उचित है। कारण यह कि उल्टा करनेसे बच्चेके गलेका बलगम मुखमें आ जाता है।

नाल काटनेके बाद बच्चेको करवटके बल लिटा देना चहिए और उसे स्नान करानेका प्रबन्ध करना चाहिए। इस समय बालक के समूचे शरीरमें यदि शहद पोत दी जाय तो बहुत ही उत्तम हो। शहद लगानेसे बच्चा सदाके लिए रोग-मुक्त हो जाता है। कुछ देर के बाद शहदको कोमल तथा साफ कपड़ेसे पोंछकर बालकको नहला देना चाहिए। तीन अंगुल बचे हुए नालको भी पानीमें उबाले हुए मलमलके टुकड़ेसे लपेट देना चाहिए। बच्चेको नहलाते समय उसके नालपर मैला पानी जरा भी न पड़ने दे। क्योंकि उसके भींजनेसे पक जाने या सड़ जानेका भय रहता है। नाल काटते समय यदि रुधिरको पीछे हटाकर १२ अनबिंधे मोती उसमें भर दिये जायँ और ऊपरसे बाँधकर नालको काटा जाय, पश्चात् एक मोती नित्य-प्रति बच्चेको खिलाया जाय तो आमरणपर्यन्त उसे चेचक रोग नहीं हो सकता—ऐसा किसी ग्रन्थकारने लिखा है।

बच्चेको स्नान करानेके लिए जो पानी गरम किया जाय, उसमें यदि पीपल, गूलर या वटवृक्षकी छाल डाल दी जाय तो बड़ा लाभ होता है। यदि उक्त वृक्षोंकी छाल समयपर न मिल सके तो तपाई हुई चाँदी या सोनेको पानीमें बुझाकर उसी जलसे

बच्चेको नहलाना उचित है। बच्चेको प्रतिदिन कुनकुने पानीमें जरासा नमक मिलाकर स्नान करानेसे बड़ा फायदा पहुँचता है।

बालकको पैदा होनेके बाद दस्त होता है। इस दस्तका होना बहुत जरूरी है। यह दस्त जितना शीघ्र हो जाय उतना ही अच्छा। इसके होनेसे बच्चेका पेट साफ हो जाता है और भूख खूब ठिकानेसे लगती है। यह मल गर्भमें बहुत दिनोंका जुटनेके कारण बड़ा हानिकारक होता है। यदि दस्त न हो तो शुद्ध किया हुआ दस बूँद रेंड़ीका तेल शहदमें मिलाकर या योंही पिला देना उचित है। इससे अवश्य दस्त उतर आता है और बच्चेको आराम मिलता है। जबतक यह पहला दस्त नहीं हो जाता, तबतक बच्चा बड़ा ही बेचैन रहता है। इसके होते ही उसे फुरसत मिल जाती है। यदि यह मल बच्चेके पेटमें दो-चार दिन रह जाता है, अर्थात् दो-चार दिनतक बच्चेको दस्त नहीं होता, तो वह बालक रोगी हो जाता है और पेटकी बीमारियाँ तो उसे बहुधा हुआ करती हैं। इसलिए इसमें जरा भी ढिलाई नहीं करनी चाहिए। बालकका पेट साफ करनेके लिए उसकी माताका दूध सबसे अधिक गुणकारी है। अतः पहले माताका दूध ही पिलाना चाहिए। यदि माताके स्तनोंमें दूध न उतरा हो तो रेंड़ीका तेल और मधु मिलाकर चटाना चाहिए।

यदि नालसे रुधिर निकलता हो तो उसे रेशमसे बाँध देना चाहिए। नालसे रुधिरका निकलना बहुत ही हानिकर है। आठ-नौ

दिनमें नाल अपनेसे सूखकर गिर जाता है। यदि वह आप ही न गिरे तो उसे भूलकर भी खींचना नहीं चाहिए। यदि बालककी खाल कहीं सिकुड़ी हुई हो और उसके पास कुछ मैल या छिला हुआ अथवा कटा हुआ दिखलायी पड़े तो उसको नरम कपड़े या स्पञ्जसे धो दिया करे तथा चिकनी खड़िया और चावलका आटा या मैदा-मिलाकर उसपर लगा दिया करे।

कभी-कभी बच्चोंका नाल पक भी जाता है। इसलिए चतुर दाईका कर्त्तव्य है कि वह ऐसे ढंगसे सब काम करे कि उसके पकनेकी नौबत ही न आवे। यदि किसी कारणवश पक ही जाय तो उसपर सफेदा या कलई लगा देना चाहिए। यदि नाल सूज आया हो तो अफीमको तेलमें घिसकर लगानेसे अच्छा हो जाता है। नाल काटनेके बाद तुरन्त ही यदि कठका तेल लगा दे तो उसके पकने या सूजनेका भय नहीं रहता। कठ-तेल इस प्रकार बनता है कि तेल और पानीको बराबर-बराबर लेकर उसमें कठका चूर्ण डाल आगपर पकावे। जब सब पानी जल जाय और सिर्फ तेल रह जाय, तब उसे उतारकर कपड़ेसे छान डाले और शीशीमें रख दे यही कठ-तेल कहलाता है। यदि कठ-तेल न हो तो तिलका तेल ही लगा देना चाहिए। इसके लगानेसे भी पकनेका भय बहुत कम रहता है।

अब हम इसी प्रकरणमें यह भी लिख देना चाहते हैं कि बालकको कब-कब और कितना-कितना दूध पिलाना चाहिए।

क्योंकि आजकल बहुधा स्त्रियाँ मूर्खताके कारण बच्चेको दूध अधिक पिला देती हैं जिससे वह रोगी हो जाता है। जहाँ बच्चेने रोना शुरू किया, तहाँ दूध ही पिलाना उसके चुप करानेका उपाय समझा जाता है। स्त्रियाँ यह नहीं सोचतीं कि बच्चा केवल भूख लगनेपर ही नहीं रोता, बल्कि किसी प्रकारका कष्ट होनेपर भी वह रोने लगता है। इसलिए बालककी खूराककी मात्राका ज्ञान होना बहुत ही आवश्यक है। नीचे लिखी खूराक उन बच्चोंके लिए है, जो न तो अत्यन्त निबल हों और न बहुत सबल। इसलिए यदि बालक अधिक निबल हो तो नीचेकी मात्रासे कम और अधिक हृष्ट-पुष्टको तो अधिक मात्रा करना आवश्यक है।

स्वस्थ बालकको कब-कब दूध देना चाहिए, इसकी सूची:—

१ सप्ताहके बच्चे को	१ महीनेके बच्चे को	२ महीनेके बच्चे को	५ महीनेके बच्चे को	७ महीनेके बच्चे को	९ महीनेके बच्चे को	१० महीनेके बच्चे को
दिनके—	दिनके—	दिनके—	दिनके—	दिनके—	दिनके—	दिनके—
६ बजे	६ बजे	६॥ बजे	७ बजे	६॥ बजे	७ बजे	७ बजे
८ बजे	८॥ बजे	९ बजे	१० बजे	९ बजे	१० बजे	१० बजे
१० बजे	११ बजे	११॥ बजे	१ बजे	१०॥ बजे	१ बजे	१ बजे
१२ बजे	१॥ बजे	२ बजे	४ बजे	२ बजे	४ बजे	४ बजे
२ बजे	३ बजे	४॥ बजे	रातके—	४॥ बजे	रातके—	रातके—
४ बजे	५॥ बजे	रातके—	७ बजे	रातके—	७ बजे	८ बजे
सन्ध्याके—	रातके—	७ बजे	१० बजे	७ बजे	१० बजे	
६ बजे	८ बजे	१० बजे	३ बजे	१० बजे		
रातके—	१०॥ बजे	३ बजे				
८ बजे	२॥ बजे					
१० बजे						
२ बजे						

ऊपरकी तालिकासे पाठिकायें यह जान सकती हैं कि बच्चेको कब-कब दूध पिलाना अच्छा है; किन्तु यह बात मालूम नहीं हो सकती कि एक बार कितना दूध पिलाना चाहिए। अतः यह बात जाननेके लिए दूसरी सूची दी जाती है:—

अवस्था	कितनी बार पिलाना होगा	गायका दूध	पानी	एक बार कितना	दिन भरमें कितना
१ हफ्ता	१०	॥ औंस	१॥ औंस	२ औंस	२० औंस
१ मास	९	१॥ ,,	२॥ ,,	४ ,,	३६ ,,
२ मास	८	३ ,,	३ ,,	६ ,,	४८ ,,
३ मास	८	३॥ ,,	२॥ ,,	६ ,,	४८ ,,
४ मास	८	४ ,,	३ ,,	७ ,,	५६ ,,
५ मास	७	५ ,,	३ ,,	८ ,,	६६ ,,
६ मास	७	६ ,,	२ ,,	८ ,,	५६ ,,
७ मास	७	७ ,,	२ ,,	९ ,,	६३ ,,
८ मास	७	८ ,,	१ ,,	९ ,,	६३ ,,
९ मास	६	९ या १०	——	९ या १०	५४—६०
१० मास	६	१० या ११	——	१० या ११	६०—६६

यदि बालककी माताके स्तनोंमें दूध न हो या उसकी माँ मर जाय तो नीचेकी तालिकाके अनुसार मात्रा कर देनी चाहिए।

अवस्था	कितनी बार	दूध	क्रीम (मलाई)	बार्ली जल*	दिनभरमें कितना	हरदफे कितना
		ड्राम	ड्राम	ड्राम	औंस	औंस
३ दिन	१०	१॥	१	६॥	१०	१
७ ,,	१०	३	१	८	१५	१॥
१४ ,,	१०	४	१	११	२०	२
२१ ,,	१०	६	२	१२	२५	२॥
२८ ,,	१०	८	२	१४	३०	३
३५ ,,	९	१०	३	१६	३२-५	३-५
४२ ,,	९	१३	३	१८	३८	४
४९ ,,	९	१६	३	२१	४४	५
५६ ,,	८	२०	४	२४	४८	६

बालकके लिए गायके दूधसे बढ़कर गुणकारी दूसरा दूध नहीं है; अगर है तो केवल माताका दूध; किन्तु माताका दूध तो अमृत तुल्य है अतः उसे दूधकी श्रेणीमें रखना ठीक नहीं। गायका दूध हलका, पुष्ट, नीरोग और फुर्तीला होता है, इसलिए बालकको सदा गायका दूध ही पिलाना चाहिए। फिर भी खालिस दूध पिलाना

* जौको पीसकर या कूटकर थोड़े पानीमें पकाये हुए पदार्थको बार्ली जल कहते हैं। यह बड़ा ही पुष्ट, ठण्डा और हल्का होता है। जिस बच्चेको प्यास अधिक लगे उसे यह जल पिलाना बड़ा ही लाभ-दायक है। —लेखक

ठीक नहीं। इसीसे ऊपरकी तालिकाओंमें पानी भी दिया गया है। कारण यह कि खालिस दूध बच्चा नहीं पचा सकता। दूधमें ऊपरके अनुसार पानी मिलाकर अच्छी तरहसे गरम करके उसमें थोड़ी मिश्री मिलाकर पिलाना उचित है। बच्चा ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाय त्यों-त्यों पानीकी मात्रा कम करते जाना चाहिए। जब बच्चा नौ महीनेका हो जाय, तब उसे जल-रहित शुद्ध दूध पिलाना उचित है। क्योंकि नौ मासके बालकमें शुद्ध दूध पचानेकी शक्ति आ जाती है।
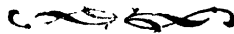
प्रसूताके लिए उपचार

बालक उत्पन्न होनेके बाद स्त्रीके पेटसे एक मांसकी-सी थैली निकलती है जिसको विभिन्न प्रान्तोंमें 'आँवल' 'औनार' 'खेढ़ी' आदि नामोंसे सम्बोधित किया जाता है। जैसे गाय-भैंसके बच्चा पैदा होनेके बाद खेढ़ी गिरती है उसी प्रकार स्त्रीके भी। इसका न निकलना बड़ा ही हानिकारक है। जबतक यह न गिरे, तबतक स्त्रीके पेटपरसे हाथ नहीं हटाना चाहिए। यदि यह अपनेसे न गिरे तो खींचकर कभी भी निकालनेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि खींचकर निकालनेसे गर्भाशयको बड़ी हानि पहुँचती है। प्रसव होनेके आधा घण्टा बाद यह थैली अपने-आप ही बाहर निकल आती है। यदि प्रसवके बाद एक घण्टा बीत जाय और वह थैली बाहर न निकले, तब उसे बाहर निकालनेका यत्न करना आवश्यक है।

दाईको प्रसूताके पेटपर हाथ फेरते रहना चाहिए। ऐसा करनेसे पेटमें पीड़ा होने लगती है और वह थैली बाहर निकल आती है। ऐसा करनेपर भी यदि वह न गिरे तो नीचे लिखे आयुर्वेद शास्त्रके यत्नोंको करना चाहिए।

१—भोजपत्र और गुग्गलको कूटकर प्रसूताकी कमरमें उसका धुआँ देना चाहिए।

२—लाँगलीकी जड़को पानीमें पीसकर प्रसूताके हाथ-पैरमें

लेप करनेसे वह थैली शीघ्र गिर पड़ती है।

यदि इस तरह भी वह बाहर न निकले तो खुद दाईको चाहिए कि वह अपने हाथमें नारियलका तेल पोतकर खूब सावधानीसे उसे इकट्ठा करके निकाले और एक हाथसे प्रसूताके पेटको दबाये रहे। यदि पेट दबाया नहीं जायगा तो खून बहुत निकलेगा और प्रसूता बिलकुल कमजोर हो जायगी। इसलिए इस बातकी ओर पूरा ध्यान रखना चाहिए। इसका थोड़ा अंश भी पेटमें रह जानेसे प्रसूताका स्वास्थ्य आजन्मके लिए नष्ट हो जाता है; उसे विषैला ज्वर आने लगता है।

जब वह बाहर निकल आवे तब एक दुपट्टा चौपर्तकर पेडूसे कलेजेतक कसकर लपेट देना चाहिए। इससे खूनका गिरना बन्द हो जाता है, प्रसूताका पेट नहीं डोलता, गर्भाशय डिगने नहीं पाता तथा स्त्रीको आराम मिलता है। इस कपड़ेको दूसरे-तीसरे दिन खोलकर बाँधते रहना चाहिए। ऐसा करनेसे नसें खिंचने नहीं पातीं।

बहुतसी दाइयां बच्चा पैदा होनेके बाद प्रसूताको बिठा देती हैं। उनका कहना है कि इससे खून बाहर निकल जाता है। किन्तु ऐसा कभी न करना चाहिए। क्योंकि इस प्रकार खून निकालनेसे प्रसूता निर्जीव हो जाती है।

प्रसूताकी जठराग्नि कमजोर रहती है। इसलिए उसके लिए दूध सबसे अच्छा भोजन है। दुःखकी बात है कि हमारे देशमें

अनभिज्ञताके कारण प्रसूताको गरिष्ट चीजें अधिक खिलायी जाती हैं; किन्तु उसे ऐसा भोजन देना चाहिए जो हल्का हो और साथ ही पौष्टिक। यदि सोंठको पीस-छानकर उसकी एक फँकी लगाकर ऊपरसे प्रसूता दूध पिये तो उसे बहुत ही लाभ पहुँचे। इस बातको हमेशा ध्यानमें रखना चाहिए कि देरमें पचनेवाला भोजन प्रसूताके लिए बहुत ही हानिकारक है। उसके खान-पानमें विशेष सावधानी रखनेकी जरूरत होती है। कारण यह कि बच्चा पैदा होनेके बाद प्रसूता अत्यन्त निर्बल हो जाती है। उसके शरीरके रक्तमें रोगोंके कीटाणुओंका सामना करनेकी शक्ति नहीं रहती; इसलिए वह सहजहीमें रोगाक्रान्त हो जाती है। ज्यों-ज्यों प्रसूताकी पाचन-शक्ति बढ़ती जाय, त्यों-त्यों अधिक पुष्टिकारक भोजन देना तो ठीक है; पर शुरूमें ही गरिष्ट भोजन देना कदापि ठीक नहीं।

प्रसव होनेके दो-तीन घण्टे बाद प्रसूताको कुछ खिलाकर सुला देना उचित है। इस समय किसी प्रकारका हल्ला-गुल्ला करना प्रसूताके लिए दुःखदायी होता है। हमारे यहाँ लड़का पैदा होने-पर बन्दूकोंकी आवाजें कीजाती है, स्त्रियाँ गाना बजाना करती हैं; किन्तु उस समय यह सब करना अच्छा नहीं। इन कामे से प्रसूताकी बेचैनी बढ़ जाती है। इस समय ऐसी शान्ति रखनी चाहिए, जिससे प्रसूताको फौरन नींद आ जाय। जब वह सोकर उठे, तब उसे पेशाब कराना चाहिए; किन्तु उसे उठाकर पेशाब न करावे, लेटे-ही-लेटे, क्योंकि हिलने-डोलनेसे प्रसूताको बड़ा ही

कष्ट होता है। उठने-बैठने या हिलने डोलनेसे रक्त-स्राव होने लगता है। पारसियोंके घरोंकी स्त्रियाँ प्रसव होनेके चालिस दिन बाद बाहर निकलती हैं। इतना नहीं तो कम-से-कम १५-२० दिनतक तो अवश्य ही नियमका पालन करना प्रत्येक प्रसूताका कर्त्तव्य होना चाहिए। इस समय गर्भाशय सिकुड़कर इतना छोटा नहीं होगया रहता कि वह उदर-गह्वरमें जा सके। वह कहीं १५-१६ दिनमें उदर-गह्वरमें जानेके योग्य होता है। इसलिए इतने दिनोंतक विशेष सावधानीकी जरूरत रहती है। यही कारण है कि लेटे-ही-लेटे पेशाब करानेका आदेश किया गया है।

यदि मूत्र न उतरे तो गरम पानीमें साफ कपड़ा भिगोकर उसे निचोड़ डाले और उसे पेटपर रक्खे। थोड़ी देरतक ऐसा करनेसे पेशाब हो जायगा। किन्तु यदि इससे भी पेशाब न हो तो किसी अच्छे वैद्यसे उपाय पूछना चाहिए। क्योंकि इस समय मूत्र-त्याग करना प्रसूताके लिए बहुत ही आवश्यक है। इस समय पेशाब न उतरनेसे रोग उत्पन्न हो जाता है। प्रसूताको मल-त्याग भी करना चाहिए। यदि मल न गिरे तो रेंड़ीके तेलमें या दूधमें सनाय या और कोई हल्के विरेचनकी चीज औटाकर देना चाहिए।

सौरके घरमें राइ, सफेद सरसो, नीमके पत्ते या इसबन्दकी धूनी देनी चाहिए; किन्तु इतना धुआँ न करना चाहिए कि बच्चे या प्रसूताकी आँखें दुखने लगें। प्रसूता तथा उसके व्यवहारके कपड़ोंमें भी यह धुआँ देना आवश्यक है। बहुधा स्त्रियाँ प्रसूताकी

चारपाईके नीचे धधकती हुई आग रख देती हैं—चाहे गर्मी हो या बरसात। इससे प्रसूताको तो कम, पर नाजुक बच्चेको बड़ा कष्ट होता है। इसलिए ऐसा कभी न करना चाहिए।

कहीं-कहीं बच्चा पैदा होनेके पाँच-छः दिन बाद ही स्नान करा दिया जाता है। यद्यपि स्वास्थ्यके लिए स्नान बहुत ही लाभदायक काम है; तथापि प्रसूताके लिए दस-बारह दिनसे पहले स्नान लाभदायक है, यह नहीं कहा जा सकता। इतने शीघ्र स्नान करानेसे प्रसूताको ज्वर होने तथा सर्दी लगनेकी सम्भावना रहती है—जोकि इस समयके लिए घातक है। यदि स्वच्छता रखना हो तो और ढंगसे रक्खे, स्नान न करावे।

चालीस दिनतक प्रसूताके शरीरमें प्रतिदिन तैल-मर्दन करना चाहिए। यदि लाक्षादि तेल मला जाय तो और भी उत्तम हो। क्योंकि इससे वायु नहीं बढ़ पाती और शरीरमें बल खूब बढ़ता है। दस दिन बीत जानेपर तेल मलकर सबेरे गरम जलसे प्रसूताको स्नान करा देना चाहिए। इससे किसी तरहकी हानि नहीं होती पर लाभ होता है।

प्रसूताको दस दिनतक बत्तीसा काढ़ा डालकर औटाया हुआ पानी पीना चाहिए। ये बत्तीसो चीजें पंसारियोंके यहाँ मिलती हैं—जो कि बहुत ही गुणकारी हैं। उन बत्तीस चीजोंमेंसे यदि इन चीजोंका ही पानी बनाकर दिया जाय तब भी कोई हर्ज नहीं—१ अजवायन दो तोला, २-सोंठ एक तोला, ३-लौंग तीन माशा,

४-पीपल तीन माशा, ५-पीपलामूल तीन माशा, ६-जावित्री डेढ़ माशा, ७-जायफल डेढ़ माशा, ८-कमरकस छः माशा, ९-लोध छः माशा, १०-हल्दी छः माशा, ११-अम्मा हल्दी छः माशा, १२-सुपारीके फूल छः माशा, १३-असगन्ध छः माशा, १४;मेदा लकड़ी छः माशा, १५-कत्था तीन माशा, १६-माजूफल तीन माशा, १७-केशर डेढ़ माशा, १८-चिकनी सुपारी एक, १९-सनाय-डेढ़ माशा, २०-मँजीठ तीन माशा, २१-झाड़ी बेरकी जड़ एक तोला, इन सबको जौकुट करके एक पोटलीमें बाँध दे। मिट्टीके बड़े वर्त्तनमें १५-२० सेर पानी भरकर आगपर चढ़ा दे और उसमें उक्त पोटली डालकर पकावे, बाद यही पानी प्रसूताको पिलावे। यदि ये चीजें भी न मिलें या मौकेपर उपस्थित न हों तो पीपल, पीपलामूल, गजपीपल, मोचरस, चीता, सोंठ और गुड़ इन्हीं चीजोंको पानीमें औटाकर पीना चाहिए। ये चीजें भी वैसी ही गुणकारी हैं। अथवा यदि दशमूलका काढ़ा पान करे तो और भी अच्छा हो। यह पूर्व प्रसूततकके उत्पन्न हुए रोगोंका नष्ट कर देता है। दशमूलके काढ़ेमें ये चीजें हैं:—१-शालपर्णी, २-पृष्ठिपर्णी, ३-दोनों कटेरी ४-गोखरू, ५-बेलकी गिरी, ६-अरणी, ७-अरलू, ८-पाढ़, ९-खम्भारी कुमेर), १०-पीपल। दशमूलमें इन दसो चीजोंकी समान मात्रा है। यदि पहलेसे हो इनका अर्क उतारा हुआ हो तो और भी अच्छा है।

बहुत जगहकी यह प्रथा है कि प्रसूताको पानी नहीं दिया जाता। पर वास्तवमें ऐसा करना ठीक नहीं। प्यास लगना ही

पानीकी इच्छा सूचित करता है। इसलिए इस स्वाभाविक माँगको पूर्ण न करना हानिके सिवा लाभ नहीं पहुँचा सकता। यदि प्रसूता को प्यास लगे तो दूध देना चाहिए; किन्तु यदि उससे उसकी तृप्ति न हो तो थोड़ासा पानी दे देनेमें कोई हानि नहीं। हाँ बालक पैदा होनेके २५-३० घण्टेके भीतर अवश्य पानी नहीं देना चाहिए।

दाइयोंकी असावधानीके कारण प्रसूताके प्रसवद्वारसे स्वाभाविकतासे अधिक खून गिरने लगता है। ऐसी दशामें नीचे लिखी दवा बनाकर खिलानी चाहिए:—

दोनों सुपारी, भाँविरी गोंद, कटीरा, गोंद-बबूल, पठानी लोध, कमरकस और गुलधावा इन चीजोंको आठ-आठ तोला, माँजूफल, समुद्रसोख, कायफल, सालव मिश्री, हंसराज, शकाकुल और सफेद मुसली ये सब चार-चार तोला, बंसलोचन एक तोला, छोटी इलायची एक तोला, बादाम पावभर, गरी आधपाव छुहाड़ा और दाख आध-आध पाव घी डेढ़ सेर आटा डेढ़ सेर, और देशी शक्कर दो सेर। गोंदको घीमें तलकर फुला लेना चाहिए। इन सबकी पंजीरी बनाकर उसमें सफेद मुसली और स्याह मुसली एक सेर, दक्खिनी सुपारी, सिरयालीके बीज, गाजरके बीज, बीजबन्द, मँजीठ, कौंचके बीज, घायके फूल, पलासकी गोंद, इन्द्रजौं, तेजबल, पीपलामूल, माई, समुद्रसोख, बायबिडंग, देशी आजवायन, तालमखाना, सोंठ, गोखरू, माँजूफल, दालचीनी, मोचरस, कमरकस, बबूलकी कली, बड़ी इलायची, असगन्ध सब

एक-एक तोला और संगजराहत तीन तोला इन सबको कूट-कपड़-छान करके उसमें डाल दे। बाद यही पंजेरी बलाबलके अनुसार खिलावे। इससे शीघ्र रक्त-स्राव बन्द हो जाता है।

जबतक स्त्री बच्चा पैदा होने बाद पुनः पूर्ववत रजस्वला होकर शुद्ध नहीं हो जाती, तबतक उसे प्रसूता ही कहा जाता है। प्रसवके बाद प्रायः महीने-डेढ़ महीनेमें स्त्रियाँ ऋतुमती होती हैं। बहुतसे लोग सौरमें बारह दिनतक रहनेको ही प्रसूता मानते हैं; किन्तु यह उनकी भूल है। आयुर्वेदमें लिखा हैः—

प्रसूतासार्धमासान्ते दृष्टेवा पुनरार्त्तवे।

अर्थात्—प्रसवके दिनसे पैंतालीस दिन पर्यन्त अथवा पुनः रजस्वला होनेतक स्त्रीकी 'प्रसूता' संज्ञा है।

इसलिए डेढ़ महीनेतक अर्थात् जबतक किसी शास्त्रकारोंके कथनानुसार प्रसूता रहे, उसकी देख-रेख बड़ी ही सावधानीसे करनी चाहिए। सूतिका-गृहको शुद्ध और सुगन्धित रखना चहिए तथा प्रसूताके खान-पानकी ओर पूरा ध्यान रखना चाहिए। पाठिकायें पूछ सकती हैं कि सौर-घरको सुगन्धित किस प्रकार रक्खा जाय? क्या इत्र इत्यादिसे? नहीं, इच्छा हो तो इत्रसे भी सुगन्धित रक्खे नहीं तो केवल कुछ सुगन्धित चीजोंकी धूनी ही कर दिया करे। इन चीजोंकी धूनी कर देनेसे घर सुगन्धित हो सकता हैः—कपूर कचरी पावभर, चन्दनका चूर्ण पावभर, नागरमोथा आधापाव, छरीला आधापाव, अगर-तगर, लालचन्दन,

गिलोय ढाई-ढाई तोला, गुग्गुल पाँच तोला, मँजोठ छः माशा, देवदारू एक तोला, मखाना दो तोला, दालचीनी एक तोला, लौंग और बड़ी इलायची एक-एक तोला इन चीजोंको कूटकर गायका घी, देशी खाँड़ और शहद मिलाकर रख दे और उसमेंसे थोड़ा-थोड़ा आगमें डालकर धुआँ करके सूतिका-गृहको सुगन्धित कर दिया करे।

हमारे यहाँ सूतिका-घरमें बहुधा हर समय भीड़सी लगी रहती है; स्त्रियाँ बारी-बारीसे प्रसूताके पास बैठकर व्यर्थकी बातें किया करती हैं। इन कामोंसे बड़ी हो हानि होती है। एक तो अधिक आदमियोंके रहनेसे सूतिका गृहकी वायु दूषित हो जाती है, जिससे नाजुक बच्चेकी तन्दुरुस्ती बिगड़ जाती है, दूसरे व्यर्थकी बातें सुननेसे प्रसूता शान्ति-लाभ नहीं कर सकती, जिससे बहुतसी लक्षित तथा अलक्षित बुराइयाँ पैदा होती हैं। इसलिए सूतिका घरमें अधिक स्त्रियोंको फालतू कभी न रहने देना चहिए और न तो किसीको व्यर्थकी गप्पें मारनेके लिए ही स्वतंत्रता दे रखनी चाहिए। क्योंकि ये दोनों ही विशेष हानिकार हैं। इस समय प्रसूताका शान्त और सात्त्विक भाव रखना बहुत ही आवश्यक है। इससे बच्चेपर बड़ा ही सुन्दर प्रभाव पड़ता है। कोई यह न समझे कि बच्चे इस वक्त कुछ सीखते ही नहीं।
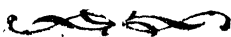
षष्ठम समुल्लास

स्त्री-चिकित्सा

हमारे देशमें लज्जाके कारण स्त्रियाँ अपने रोगोंको छिपाया करती हैं। परिणाम यह होता है कि रोग बहुत शीघ्र भयंकर रूप धारण कर लेता है, तब घरवालोंको मालूम हो पाता है। कितने ही रोग तो ऐसे होते हैं, जिन्हें स्त्रियाँ जानतीं तक नहीं। वे साधारण कष्टका अनुभव करती रहती हैं, पर अज्ञानताके कारण पहले उन्हें मालूम ही नहीं होता कि कोई रोग अपनी जड़ जमा रहा है। ऐसी दशामें यह आवश्यक है कि कुछ खास-खास रोगों-की औषधियाँ लिख दी जायँ, ताकि स्त्रियाँ स्वयं अपनी चिकित्सा कर लिया करें और रोगोंका शिकार अपने-आप ही न बनें। क्योंकि हम पहले ही कह आये हैं कि उत्तम सन्तान पैदा करनेके लिए माता-पिताका स्वस्थ और निरोग रहना बहुत ही आवश्यक है।

सूतिकावस्थामें स्त्रियाँ बहुधा रुग्णा हो जाती हैं। उस समय उत्पन्न होनेवाले रोगोंके साधारणतया लक्षण ये हैं:—मूत्र रुक जाता है और पेट भारी होने लगता है। ये विकार तभी उत्पन्न होते हैं, जब प्रसूताका संयम ठीकसे नहीं किया जाता। ऐसी दशामें कड़वी तूँबी, कड़वी तोरई, (यह वर्षा ऋतुमें ढाक वृक्षके जंगलोंमें बहुत होती है), सरसो, साँपकी केंचुल, इन सबको सरसोके तेलमें मिलाकर प्रसूताको धूनी देनी चाहिए।

प्रसूताको 'प्रसूत' रोगसे सदा बचनेकी चेष्टा करनी चाहिए। क्योंकि यह रोग बड़ा ही भयंकर है। यह रोग जिस स्त्रीको हो जाता है, उसका जीवन ही खतरेमें पड़ जाता है। जरा भी असावधानी करनेसे यह रोग तुरन्त आ घेरता है। आजकल तो प्रायः सभी स्त्रियाँ कुछ-न-कुछ इस रोगमें ग्रस्त हैं। बच्चा पैदा होने-पर जो स्त्री अपना खाना-पीना नियमसे नहीं करती, सर्दी-गर्मीपर ध्यान नहीं देती, वही जन्मभरके लिए अपने शरीरमें इस रोगको पाल लेती है। इस भयानक रोगके साधारणतः लक्षण ये हैं:—

शरीरके अंग-प्रत्यंगमें पीड़ा होती है, भीतर ज्वरका अंश सदा बना रहता है, प्यास अधिक लगती है, पेट, पीठ, पसली, कमर, घुटनोंमें दर्द होता रहता है, हाथ-पैर तथा पेटमें सूजन हो आती है, बारम्बार कै होती है, जी मिचलाता है, हड़फूटन हुआ करती है, आँखोंमें धुँधलापन आ जाता है, कब्जकी शिकायत हमेशा बनी रहती है, मूत्र ठीकसे नहीं उतरता, कभी बहुत पेशाब

होता है और कभी बिलकुल कम, धीरे-धीरे शरीर कमजोर होता जाता है, डकार अधिक आती है, हाथ-पैर और मस्तकमें पसीना होता है तथा मर्मस्थानमें शूल होता है ।

यह रोग सौरमें ही होता है । इसलिए इससे बचनेके लिए सौरमें चालीस-पैंतालीस दिनतक पूर्ण रीतिसे नियमोंके अनुसार ही रहना उचित है। इस भयानक रोगसे बचनेके नियम ये हैं:—

१—सूतिका-गृह साफ-सुथरा और हवादार हो, गन्दगी न रहे; उसमें ठण्ढी हवा भी न जाय ।

२—पीछे बतलायी हुई वस्तुओंकी धूनी नित्यप्रति किया करे।

३—सर्दीके मौसिममें सूतिका-गृहको आगसे गरम रक्खे ।

४—प्रसूताको दशमूलका काढ़ा बराबर देते रहना चाहिए, जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है ।

५—भोजन हल्का और पुष्ट देना चाहिए, तथा अन्यान्य पीछे कही गयी बातोंपर पूरा ध्यान रखना चाहिए।

उक्त प्रकारसे रहनेपर प्रसूत रोगकी उत्पत्ति कभी नहीं हो सकती । इसलिए जीवनको आनन्ददायक बनानेके लिए इनके अनुसार चलना प्रत्येक स्त्रीका कर्त्तव्य है । इतना लिख चुकनेके बाद अब हम प्रसूत रोगके कुछ ऐसे उपाय आयुर्वेद ग्रन्थोंके आधारपर लिखते हैं, जिनसे माताओं और बहनोंका बहुत-कुछ उपकार होना सम्भव है ।

१—दशमूलका काढ़ा घी डालकर पिलानेसे सब प्रकारके तो

नहीं किन्तु कई तरहके प्रसूत रोग नष्ट हो जाते हैं ।

२—ढाई तोला गोखरू कुचलकर आधसेर पानीमें औटावे; जब एक छटाँक रह जाय, तब उसमें छटाँकभर बकरीका दूध मिलाकर पिये । इस प्रकार सात दिनतक प्रातः-सन्ध्या सेवन करनेसे आराम होता है । यदि पेट, पसली आदिमें दर्द हो तो तिलका तेल मलकर रूईसे सेकना चाहिए । प्रसूत रोगमें भात, दही, खटाई, ठण्ढी हवा और ठण्ढे पानीसे बचाना चाहिए ।

३—इस रोगमें एक माशे लोहवानका सत और दो रत्ती कस्तूरी मिलाकर सात गोली बना ले और प्रतिदिन बासी मुँह एक गोली सेवन करनेसे भी बड़ा ही लाभ होता है ।

४—वीर बहूटियोंको पकड़कर एक डिब्बियामें थोड़ेसे चावलके साथ रखकर बन्द कर दे । महीने-दो महीनेके बाद जब वीर बहूटियाँ मर जायँ; तब उन चावलोंको निकालकर किसी शीशीमें रख दे और वीर बहूटियोंको फेंक दे । उसी चावलमेंसे एक चावल प्रतिदिन प्रसूत रोगमें खिलानेसे यह रोग बहुत जल्द नष्ट हो जाता है ।

५—देवदारु, बचकूट, पीपल, सोंठ, चिरायता, कायफल, मोथा, कुटकी, हड़, धनियाँ, गजपीपल, कटेरी, गोखरू, छः माशा, बड़ी कटेरी, अतीस, गिलोय, काकड़ासिंगी, कलौंजी और जीरा इन सबको दो-दो माशे लेकर आधसेर पानीमें औटावे । जब जलकर छटाँक भरके अन्दाजन रह जाय, तब उसमें दो रत्ती भुनी हुई

हींग और तीन रत्ती सेंधा नमक डालकर पिला दे। इस काढ़ेसे खाँसी, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, कम्प, सिर दर्द, तृषा, दाह, तन्द्रा आदि रोग दूर हो जाते हैं।

६—गिलोय, सोंठ, पियावाँसा, प्रसारिणी, शालपर्णी, पृष्टपर्णी बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी और गोखरू प्रत्येक डेढ़-डेढ़ माशे लेकर बीस तोले पानीमें पकावे। जब पाँच तोला पानी रह जाय, तब उतारकर छान ले। बाद उसमें पाँच माशे शहद डालकर पिलानेसे सब तरहके प्रसूत रोग समूल नष्ट हो जाते हैं।

७—प्रसूत रोगमें यह दवा भी बड़ा लाभ पहुँचाती है। प्रसारिणीको पाँच सेर पानीमें औटावे। जब तीन सेर पानी रह जाय, तब उतारकर छान ले। फिर इस क्वाथमें सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, पीपलामूल, चित्रक, सफेद जीरा, कालाजीरा, शालपर्णी, पृष्टपर्णी, मुन्दपर्णी, गोखरू, रायसन, रेंड़ीवृक्षकी छाल, खरेंटी, सेंधा नमक, जवाखार और सज्जी इन सब चीजोंको एक-एक तोला लेकर लुगदी बना ले। ऊपरके काढ़ेमें इस लुगदीको सेर भर घी (गायका) डालकर पकावे। पक जानेपर उताकर छान डाले। इस घीके सेवनसे प्रसूत, संग्रहणी आदि कई तरहके रोग दूर होते हैं। इस घीके सेवनसे प्रसूताकी जठराग्नि प्रज्ज्वलित होकर स्तनोंका दूध शुद्ध हो जाता है। उदर रोग भी इससे नष्ट हो जाता है।

८—सुहाग सोंठ, विषगर्भ तैल अथवा मरीचादि तैल भी इस रोगमें बहुत ही फायदा करते हैं। इनके बनानेकी रीति नीचे लिखी जाती है:—

बैतरा सोंठ पावभर कूट-छानकर रख ले। बाद डेढ़ सेर गायका दुध आँचपर चढ़ाकर औंटावे; जब वह जलकर आधा रह जाय, तब उसमें सोंठका चूर्ण डाल दे। और बराबर चलाता रहे। जब खोवा हो जाय, तब पावभर गायका घी उसमें डालकर भूने। बाद थालीमें निकालकर रख ले। फिर एक सेर चीनीकी चाशनी करके उसमें भुने खोवेको डाल दे और ऊपरसे केशर छः माशे, कस्तूरी डेढ़ माशे, भीमसेनी कपूर तीन माशे, पिस्ता। चार तोला, छिला बादाम आठ तोला छोड़कर लड्डू बना ले। प्रति दिन गरम दूधके साथ एक तोला इसे खा लिया करे।

दूसरी विधि—पावभर बैतरा सोंठका चूर्ण, दही चक्का आध-पाव, छोटी पीपल आधपाव, धतूरेके बीज आधपाव, इन सबको हाँड़ीमें रखकर उसका मुख मजबूतीके साथ बन्द कर दे। उसी गढ़ेमें उसे रखकर ऊपरसे कंडी रखकर आग लगा दे। जब वे कंडे जलकर खाक हो जावें, तब राखको हटाकर फिर पूर्ववत् कंडी रखकर सुलगा दे। इस प्रकार तीन बार करे। पश्चात् हाँडीको खूब सावधानीके साथ निकालकर बाहर कर ले और उसमेंसे दवा निकालकर शीशीमें रख काग लगा दे। यह साधारण मात्रा है। यदि इसको बहुत तीक्ष्ण करना हो तो इसमें सात-सात पुट अदरख, बँगला पानके पत्तेका रस, थूहरके दूधके क्रमसे दे और फिर ऊपरकी भाँति चौदह आँच दे।

तीसरी विधि—बैतरा सोंठका चूर्ण पावभर, आधापाव सज्जी

और छटाँकभर लौंगको थूहरके दूधमें पीसकर लुगदी बना ले और मिट्टीके उतने ही बड़े बर्तनमें इसे रखे, जिसमें यह अँट जाय। बाद ऊपरकी भाँति इसे गढ़ेमें रखकर फूँक दे। जब आधे कंडे जल जायँ तब उसमें और कंडे डालकर मिट्टीसे आगको ढँक देना चाहिए। आग देनेसे आठ पहर पीछे इसे निकाले। बाद इनको थूहरके दूध, बँगला पानके रस और भारंगीके रसमें क्रमसे आठ-आठ पहर घोंटे। (इसमें पानी या छिलका कुछ भी न रहने पावे।) ज्यों ज्यों रस सूखता जाय त्यों त्यों उसमें रस डालता जाय और खरल करता जाय। पश्चात् फिर मिट्टीके बर्त्तनमें रखकर ऊपरकी भाँति फूँक दे। और आठ पहरके बाद उसे बाहर निकाल दे। पीछे उन्हें पीसकर शीशीमें रखकर काग लगा दे। यदि कमरमें दर्द हो अथवा छाती या पेटमें दर्द हो तो छः माशे अदरखके रसमें इसे तीन रत्ती डालकर देना चाहिए। यदि कफकी खाँसी हो तो छः माशे अदरखका रस, छः माशे शहद, आधी गाँठ छोटी पीपल पीसकर उसमें दो रत्ती यह दवा मिलाकर दे। इसी प्रकार सन्निपातमें छः माशे अदरखका रस, एक पीपल और तीन रत्ती यह दवा पीसकर दे तथा पैरोंके तलवेमें अदरखका रस, लहसनका रस और अजवायनको गरम करके मर्दन करे। सर्दी हुई हो तो तीन माशे शहदमें दो रत्ती दवा चटा दे। हिचकी आती हो तो तीन माशे शहद और तीन माशे अदरखके रसके साथ डेढ़ रत्ती यह दवा मिलाकर चटावे। इस प्रकार भिन्न-भिन्न अनु-

पानके साथ यह दवा देनेसे अनेक तरहके रोगोंसे प्रसूताकी मुक्ति होती है।

विषगर्भ तैल—धतूरेकी जड़, निगुंडी, कड़वी, तूँबीकी जड़, अरंडकी जड़, असगन्ध, पमार, चित्रक, सहिजनकी जड़, कागलहरी, करिहारीकी जड़, नीमकी जड़, बकाइनकी छाल, दशमूल, शतावरि, चिरपोटन, गौरीसर, बिदारीकन्द, थूहरका पत्ता, आकका पत्ता, सनाय, दोनों कनेरकी छाल, अज्ञाभारा (अपामार्ग या चिरायता भी इसे कहते हैं) और सीप इन सबको तीन-तीन रुपये भर लेकर कूट डाले। बाद इनके बराबर काले तिलका तेल, उतना ही रेंड़ीका तेल और सबका चौगुना पानी एक बर्त्तनमें रख उसीमें सब चीजोंको छोड़कर मधुर आँचसे पकावे। जब पकते-पकते सब औषधियाँ पानीके सहित जल जायँ—तेल मात्र रह जाय , तब उतार ले। फिर उसमें सोंठ, मिर्च, पीपल, असगन्ध, रास्ना, कूट, नागरमोथा, वच, देवदारु, इन्द्रजव, जवाखार, पांचो नमक, नीलाथोथा, कायफल, पाढ़, भारंगी, नौसादर, गन्धक, पुष्करमूल, शिलाजीत और हरताल इन सब चीजोंको आधे-आधे पैसेभर ले और सिंगीमुहरा टकेभर लेकर महीन पीसकर उक्त तेलमें मिला दे। फिर इस तेलका मर्दन करे। इससे वातके सब रोग दूर हो जाते हैं। यह याद रहे कि प्रसूत रोग वातके ही प्रकोपसे होता है। इसके मालिससे पीठ जंघा और सन्धियोंकी सूजन तथा हड्फूटन, कर्णशूल, गण्डमाला इत्यादि रोग भी बहुत जल्द नष्ट हो जाते हैं।

मरीच्यादि तैल—काली मिर्च, निसोथ, दातूणी, आकका दूध, गोबरका रस, देवदारु, दोनों हल्दी, छड़, कूट, रक्तचन्दन, इन्द्रायनकी जड़, नागरमोथा, वायविडंग, पमार, सिरसकी जड़, कलौंजी, हरताल, मैनसिल, कनेरकी जड़, चित्रक, कलिहारीकी जड़, कुड़ेकी छाल, नीमकी छाल, सतोंपकी छाल, गिलोय, थूहरका दूध, किरमालाकी गिरी, खैरसार, वावची, वच, मालकांगनी, इन सबको दो-दो टकेभर, सिंघी मुहरा चार टकेभर, कड़वा तेल चार सेर, गोमूत्र सोलह सेर इन सब चीजोंको मधुर आँचसे पकावे। जब तेल मात्र रह जाय, तब उतारकर छान ले। और फिर उसी तेलकी मालिस करे तो प्रसूत रोग अच्छा हो जाता है। यह तेल भी वायुका नाश करनेमें एक ही है।

प्रसूत-ज्वर—यह ज्वर स्त्रियोंको प्रसवकालमें असंयमके कारण होता है। इसमें हड़फूटन होती है, प्यास अधिक लगती है, हर वक्त ज्वर लगा रहता है, बारम्बार मल-त्याग करना पड़ता है, शरीर भारी और गरम रहता है। इसके लिए पूर्व लिखित दशमूलका क्वाथ सबसे अधिक लाभदायक है। अथवा, अजमोद, जीरा, बंसलोचन, खैरसार, विजयसार, सौंफ, धनियाँ, और मोचरस, इन सब चीजोंको बराबर-बराबर लेकर दो-दो तोलेकी दस पुड़िया बनाकर रख दे। फिर एक पुड़िया प्रति-दिन आध सेर पानीमें औटाकर जब छटाँकभर पानी रह जाय तब छानकर पिलावे। इस दवाका दस दिन सेवन करनेसे प्रसूत-ज्वर समूल नष्ट हो जाता है।
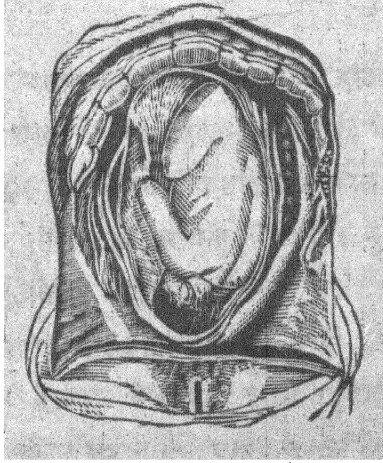
चित्र नं० ८, आठवाँ महीना । पृष्ठ संख्या १२५

यदि गर्भावस्थामें ही ज्वर आवे तो रक्तचन्दन, दारवा, गौरीसर, खस, मुलहठी, महुआ, धनियाँ, नेत्रबाला और मिश्रीका सम भाग लेकर उसका क्वाथ सात दिनतक पिलावे तो ज्वरका आना बन्द हो जाता है। अथवा मुलहठी, लाल चन्दन, खस, गौरीसर, कमलकी जड़ छः-छः माशे लेकर काढ़ा बनावे और उसमें शहद और मिश्री मिलाकर सात-आठ दिनतक पिलानेसे ज्वर दब जाता है।

गर्भिणी स्त्रीके मस्तकमें प्रायः झनझनाहट होती है और मूर्च्छासी हो जाया करती है। ऐसी दशामें गर्भिणीको चारपाईपर चित्त सो जाना चाहिए और सिरके नीचे तकिया न रखना चाहिए। उसे अपने कपड़ोंको भी ढीला कर देना उचित है। मुखपर ठंढे पानीके छींटे लगानेसे विशेष लाभ होता है।

एक रोग गर्भिणीको और होता है। यह प्रायः छठे महीनेसे लेकर बालक उत्पन्न होनेतक होता है। इसमें गर्भिणीकी नसें तनने लगती हैं। इसलिए जब नसोंमें तनाव मालूम हो, तब उसे कपड़ेसे कसकर बाँध देना चाहिए और अफीमके रससे सेंककर फिर नमककी पोटलीसे या बोतलमें गरम पानी भरकर सेंकना उचित है।

मूर्छा रोग—यह रोग आधुनिक समयमें बहुतायतसे पाया जाता है। इसके लक्षण नामहीसे प्रकट हैं। किन्तु दुःखकी बात है कि आजकल लोग इसे भूत, प्रेत, असुर, चुड़ैल समझने लग

गये हैं। यद्यपि यह भाव अब दिनपर दिन कम होता जा रहा है, तथापि इसका प्रचार इतना बढ़ गया था कि अब भी ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत ही अधिक है। इस रोगके लक्षण ये हैं:—

१—सिरमें भारीपन रहता है।

२—आँखोंकी भौहोंमें इतनी पीड़ा होती है, मानों कोई कील ठोक रहा है। बिना कारण ही आँखोंमें आँसू भरे रहते हैं।

३—मन सदा उदास रहता है, कोई काम करनेका जी नहीं चाहता।

४—यदि पासमें कोई न रहे, तो बहुत ही आराम मिलता है। किसीसे बातें करना जवाल मालूम होता है।

५—कंठ रुक जाता है और उसमें गोलासा जान पड़ता है। इसी गोलेके उठनेसे प्रतीत होता है कि मूर्च्छा आनेवाली है।

६—हृदयमें धड़कन हुआ करती है। साँसकी गति भी तेज पड़ जाती है।

७—बायीं पसलीमें दर्द होता है।

८—छातीमें बहुत कष्ट मालूम होता है, मानो वहाँका मांस ही गला जा रहा है।

९—डकारें बहुत आती हैं और पेटमें मरोड़ हुआ करता है। आँतें सदा गड़गड़ाया करती हैं।

१०—शरीरकी सब नसें दुखती रहती हैं। कभी किसी जगह पीड़ा रहती है, कभी किसी जगह।

११—शरीर ऐंठकर तनसा जाता है ।

१२—कभी-कभी सफेद पेशाब बहुत उतरता है ।

१३—किसी-किसी दिन पेटमें अफरा जान पड़ता है और वायु गड़गड़ाकर आँतोंतक आ जाती है। इस समय कण्ठ भी रुकसा जाया करता है। किसी दिन पेट इतना फूल आता है कि गर्भकासा मालूम होने लगता है ।

अच्छी पहचान इस रोगकी यह है कि रोगी देव-मन्दिर आदिमें जानेसे हिचकता है और यदि चला भी जाता है तो उसके अपना कण्ठ घुटतासा और छाती गिरतीसी जान पड़ती है। बाजा इत्यादिके शब्द सुनकर उसे मूर्च्छा आ जाती है अथवा वह चिल्लाने लगता है। हवादार जगहमें बैठनेको जी चाहता है।

यह रोग अधिकतर उन स्त्रियोंको होता है जिनका गर्भ बार-बार गिर जाता है या जल्दी-जल्दी सन्तान होती है या जिन स्त्रियोंको शोक अधिक रहता है । स्पष्ट रीतिसे यों समझना चाहिए कि जिन कारणोंसे निर्बलता आती है उन्हीं कारणोंसे यह मूर्च्छा रोग भी उत्पन्न होता है ।

इसका सबसे उत्तम और सरल उपाय यही है कि गर्भाशयको ठीक करके शुद्ध कर देना चाहिए। यदि रजोधर्म ठीक समयपर न होता हो तो उसका यत्न करना भी आवश्यक है। यह रोग कभी-कभी अविवाहिता कन्याओंको भी हो जाता है, किन्तु बहुधा यह रोग ऐसी स्त्रियोंको होता है, जो ब्याही हुई होती हैं। पति-शोका-

कुला स्त्रीको भी यह रोग हो जाया करता है।

इस रोगमें दूधके साथ पानका रस मिलाकर देना बड़ा ही लाभदायक है। अथवा बादामको खूब महीन पीसकर दूधमें मिला दे और ऊपरसे थोड़ासा शुद्ध गुलाबजल डालकर पिलावे।

गर्भावस्थामें स्त्रियोंके मसूड़े और दाँत अक्सर दुखते हैं। कितनी ही स्त्रियोंका प्रत्येक गर्भमें एक दाँत गिरता जाता है। इसका उपाय यह है कि जब दाँतोंमें दर्द जान पड़े तब रुईसे कान बन्द कर लेना चाहिए। यदि इससे अच्छा न हो तो लौंगके तेलमें रुई भिगोकर दाँतमें रक्खे या मसूड़ोंपर पोत दे। मसूड़ोंपर उसी समय लगाना लाभदायक होता है; जब मसूड़ेमें दर्द हो, अन्यथा नहीं।

यदि मसूड़ोंमें दर्द हो और पेटमें गड़बड़ हो तो फौरन दवा करनी चाहिए। सबसे पहले पेटको शुद्ध कर लेना चाहिए। पहले कहा जा चुका है कि शोधे हुए रेंडीके तेलका जुलाब गर्भिणी और बच्चेके लिए बड़ा ही उपयोगी है। इसलिए जरा भी पेटकी शिकायत मालूम होनेपर उसे यही जुलाब लेकर पेटको साफ और हल्का कर डालना चाहिए। यहाँपर पेट शुद्धिके लिए कुछ ऐसी औषधियोंका लिखना आवश्यक प्रतीत होता है, जिनका सेवन करके गर्भावस्थामें भी पेटको साफ किया जा सके। क्योंकि यह समय इतना नाजुक होता है कि जल्द कोई वैद्य जुलाब देनेका साहस नहीं करता और बिना जुलाबके पेटकी शिकायतें रफा नहीं होतीं।

१—रेंडीका तेल दूधमें मिलाकर पिलाना चाहिए ।

२—दो तोले दाख, एक तोला गुलाबके फूल, दो अंजीर इनको पीसकर चटनी बना ले और तीसरे-चौथे दिन सुपारीभर खा लिया करे । यदि आवश्यकता समझे तो सोते समय थोड़ासा अधिक खा ले ।

३—रोटीके साथ शहद या खाँड़ खानेसे भी पेटकी शिकायत दूर होती है । क्योंकि खाँड़ भी दस्तावर चीज है ।

४—पके अंगूर और भुने हुए सेबसे भी कबज दूर होता है ।

५—सुपारी, बड़ी हड़का छिलका, बबूलकी कोंपल, इन सबको एक-एक तोला लेकर तीन पाव पानीमें औटावे जब छटाँकभर पानी रह जाय तब उतार ले । जितने दस्त लेना चाहे, उतनी ही बार कपड़ेसे इस काढ़ेको छानकर पी ले । जितनी बार छाना जायगा, उतने ही दस्त आवेंगे, यह निश्चय है । यह जुलाब सबसे अच्छा है ।

गर्भिणीकी वायु—पाँच या सात बादामके बीज और एक माशे गेहूँको चोकर प्रति दिन खानेसे वायुका कोप गर्भिणी स्त्रीको कभी नहीं होता ।

यदि मूत्र न उतरता हो तो दाभकी जड़, दूबकी जड़ और काँसकी जड़ इनको थोड़ासा लेकर दूधमें औटावे और फिर उसे पी जाय । इससे गर्भिणीको बिना किसी प्रकारके कष्टके पेशाब उतर जाता है ।

संग्रहणी—यदि भोजन न पचे, खाते ही दस्त हो जाय तो चावलका सत्तू, आम और जामुनके छिलकेके काढ़ेसे खाना चाहिए। इससे बहुत शीघ्र जठराग्नि ठीक होकर अपना काम करने लगती है।

गर्भिणीको वमन—जब गर्भाधान हो जाता है, तब बहुधा स्त्रियाँ वमन करने लगती हैं। इसमें गेरूको आगसे गरम करके थोड़ेसे पानीमें बुझाकर वही पानी पीना चाहिए। या कपूरकचरीको पीसकर मूँगके बराबर गोली बनाकर सेवन करे अथवा वट-वृक्षकी डाँटी जलाकर उसकी राख शहदमें मिलाकर चाटे।

गर्भिणीके पैरोंकी सूजन—यदि पैर फूल आवे तो थोड़ा-थोड़ा चलने-फिरनेका अभ्यास डालना चाहिए।

दूध बढ़ानेका यत्न—यदि स्तनमें दूध कम हो तो भाड़में गेहूँ कहुलवाकर उसीके बराबर अखरोटके पत्ते मिला गायके घीमें उसकी पूड़ी बनावे और सात दिन गायके घीके साथ ही खाया करे। अथवा—गायके दूधमें थोड़ीसी शतावर और खाँड़ मिलाकर पिया करे।

स्तन-रोग

दूध शोधन—माताके दूधमें विकार रहनेसे बच्चोंका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। इसलिए दूधकी परीक्षा कर लेना बालककी रक्षाके लिए अत्यन्तावश्यक है। दूषित दूधकी पहचान यह है:—जिस स्त्रीका दूध पानीमें न डूबे, खट्टा या कड़वा हो, काला या पीला

हो, जिसको गारकर रख देनेपर उसमें मलाईसी न पड़े, या जिसमें चोंटी डालनेसे मर जाय—जीती हुई तैरकर निकल न आवे, ऐसे लक्षणोंसे युक्त-दूध दूषित होता है। शुद्ध दूध पतला और नीलापन लिए हुए होता है। निर्दोप दूध मीठा होता है। और उसमें मलाई पड़ जाती है। इस प्रकार दूधको परीक्षा करनेपर यदि वह दूषित प्रमाणित हो तो उसे औषधियाँ द्वारा शुद्ध करनेकी चेष्टा करनी चाहिए ओर जबतक वह बूर्ण रीतिसे शुद्ध न हो जाय तबतक बालकको स्तन-पान न करावे। किसी अच्छी शुद्ध दूधवाली दाईका दूध पीनेका प्रबन्ध कर दे। दाई ऐसी ही होनी चाहिए जिसकी गोदमें उतने ही दिनोंका बालक हो, जितने दिनके बच्चेको दूध पिलाना हो। दस-पाँच दिन न्यूनाधिककी तो बात दूसरी है, पर अधिक दिनोंका अन्तर रहना ठीक नहीं। कारण यह कि ज्यों-ज्यों दिन बीतता जाता है त्यों-त्यों दूध गाढ़ा होता जाता है। इसलिए यदि बच्चा दो महीनेका हो और दूध पिलानेवाली दाईको छः-सात महीने प्रसविणी हुए होगये हों तो उसका दूध पिलानेसे बच्चा बीमार पड़ जाता है; क्योंकि उतना गाढ़ा दूध पचानेकी शक्ति उसमें नहीं रहती। ईश्वरकी बड़ी ही विचित्र लीला है। वह बच्चे-के बलाबलके अनुसार ही माताके स्तनोंमें गाढ़ा-पतला दूध पैदा करते हैं। जब बच्चा जन्म लेता है, तब माताका दूध बहुत ही पतला होता है, फिर ज्यों-ज्यों उसमें ताकत आती जाती है और पाचन-शक्ति बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों दूध भी गाढ़ा होता जाता है। इस-

लिए इस बातपर ध्यान देना बड़ा ही आवश्यक है। किन्तु इतना करनेसे सब काम समाप्त नहीं हो जाता। जब बच्चेका दूध पीना छुड़ा दिया जाय, तब माताका कर्त्तव्य है कि वह प्रति दिन अपने स्तनोंका दूध निचोड़कर गिरा दिया करे। क्योंकि स्तनमें दूध रह जानेसे स्तन पक जाते तथा और भी अनेक तरहके रोग उत्पन्न हो जाते हैं। जब दूध स्तनमें रह जाता है, तब माताको बड़ा ही कष्ट होता है। अतएव इसके निचोड़नेमें ढिलाई नहीं करनी चाहिए।

अब हम दूषित दूधको शुद्ध करनेका कुछ यत्न बतलाते हैं। मूँगका जूस पीना चाहिए। अथवा भारंगी, दारुहल्दी, बच, अतीस तीन-तीन माशे पानीमें घोटकर पिये। या पाढ़, मूर्वा, मोथा, चिरायता, देवदारु, इन्द्रजव, कुटकी, इनका काढ़ा पिया करे।

थनैला—जो स्त्रियाँ बालकोंको दूध पिलाती हैं, उनके स्तनोंमें कई कारणोंसे गाँठ पड़कर फोड़े हो जाते हैं और स्तन पक जाते हैं। जैसे, बालकके सिरको चोट लग जानेसे गाँठ पड़ जाती है। स्तन गीले रहनेसे फट जाते हैं। रुधिर खराब होनेसे फोड़ा निकल आता है। इसलिए यदि बालकके सिरकी चोट लग जाय तो गरम पानीमें रुई डालकर सहने लायक गरम रहनेपर धीरे-धीरे सेंक देना चाहिए। स्तनोंको गीला न रखना चाहिए। यह रोग बड़ा ही कष्ट-दायक होता है, अतः पहले से ही इसका इलाज करना चाहिए।

यदि थनैला हो जाय तो नागरमोथा और मेथीको बकरीके दूधमें पीसकर लगाना चाहिए। या रेंडीके पत्तेका रस निकालकर

उसमें कपड़ा भिगो-भिगोकर बारम्बार लगाना चाहिए। अथवा गुलाबकी पत्ती, सेवकी पत्ती, मेंहदीकी पत्ती और अनारकी पत्ती बराबर-बराबर लेकर खूब बारीक पीस डाले और आगपर किंचित् गरम करके दिन भरमें चार-पाँच बार स्तनोंपर लगाया करे। या सहिजनके पत्ते पीसकर लेप किया करे।

यदि स्तन तड़क गये हों या स्तनोंमें पीड़ा हो तो ग्लैसरिन लगा देना चाहिए। अथवा घीमें मोम मिलाकर लगा देना चाहिए। अथवा सुहागा, दो तोले, गेहूँका सत सात तोले, पीस-छानकर स्तनपर मल दे। इस दवासे बालकके मुखमें पड़े हुए फफोले भी जाते रहते हैं।

नेत्र-रोग

आँखें लाल रहती हों तो छः माशे बकरीके दूधमें चार रत्ती अफीम पीसकर नेत्रके ऊपर लगाना उचित है; किन्तु यह भीतर जरा भी न जाने पावे, नहीं तो बड़ा कष्ट होगा। या दो रत्ती फिटकिरीको एक तोले पानीमें पीसकर चार-पाँच बूँद आँखोंमें सुबह-शाम टपका दिया करे। इससे भी लालिमा मिट जाती है।

यदि आँखोंसे पानी गिरता हो और किसी-किसी समय धुँधला दिखलायी पड़ता हो तो शामको मिट्टीके नये बर्त्तनमें कुएँका पानी छानकर रख दे और तड़के उठकर शौचादिसे निवृत्त हो, उसी जलसे आँखोंपर खूब छींटा लगावे। कमसे कम दो-तीन सेर पानीका छींटा लगाना जरूरी है। घड़ा प्रतिदिन बदलनेकी आवश्यकता

नहीं। महीने भरके सेवनसे नेत्र निरोग हो जाते हैं और ज्योति भी ठीक हो जाती है। यह दवा हमारी आजमायी हुई है।

रतौंधी होनेपर गायका घी, मिश्री और काली मिर्चका नित्य सबेरे सेवन करना चाहिए। यह रोग निर्बलताके कारण मस्तकमें आयी हुई कमजोरीसे उत्पन्न होता है; अतः मस्तककी पुष्टिका इलाज करनेसे यह रोग दूर होता है। देशी स्याही दवातमेंसे निकालकर तीन-चार दिन अंजन लगानेसे भी रतौंधी बन्द हो जाती है। या पानके रसकी तीन-चार बूँदें आँखोंमें टपका देनेके बाद साफ पानीसे धो डालनेपर भी यह रोग दूर हो जाता है। यह दवा कमसे कम दस-बारह दिनमें काम करती है, घबड़ाकर छोड़ नहीं देना चाहिए।

कान्ति-वर्धक उबटन

पीली सरसो एक सेर, सफेद चन्दनका चूर्ण एक छटाँक, बालछड़ एक छड़, नेत्रबाला आधी छटाँक, आमकी छाल एक छटाँक, केशर रुपयेभर, चिरौंजी तीन छटाँक, इन सबको कूट-छानकर रक्खे और इसे थोड़ासा लेकर दूधमें पीसकर शरीरमें लगाया करे। इस उबटनसे शरीर सुगन्धित रहता है, कान्ति बढ़ती है, स्वच्छता रहती है और शीघ्र कोई चर्म-जन्य रोग नहीं होता।

फोड़ा-फुँसी

रक्त-विकारसे ही शरीरमें फोड़े-फुन्सियोंका निकलना शुरू होता है। इसलिए सबसे उत्तम बात तो यह है कि रक्तको ही शुद्ध करने-

की चेष्टा करनी चाहिए। रक्तके शुद्ध हो जानेपर फोड़े-फुन्सियोंकी जड़ ही कट जाती है। इसे शुद्ध करनेका सबसे सरल और उत्तम उपाय तो यह है कि कोष्ठ-शुद्धिपर विशेष ध्यान रक्खे; क्योंकि पेटकी गड़बड़ीसे ही सारे रोगोंकी उत्पत्ति होती है; भोजन हल्का, शुद्ध और पचनेपर करे। इससे रक्त धीरे-धीरे शुद्ध हो जाता है। अथवा इसे करते हुए चैतके महीनेमें शुद्ध मधुका एक महीना सेवन करे। या उसी महीनेमें नीमका मुलायम पत्ती खाकर ऊपरसे गाय-का धारोत्ण दूध पिये और खट्टी-मीठी तथा तिक्त चीजें न खाय। इस प्रकार महीनाभर नीमकी पत्तीका सेवन करनेसे भी रक्त-विकार दूर हो जाता है।

यदि फोड़ा निकल आया हो तो तूतमलंगा पानीमें फेटकर बाँधना चाहिए। यह परीक्षित दवा है। फोड़ेको बैठानेमें एक ही चीज है। दिन भरमें तीन-चार बार इसकी पुलटिस बदलनी चाहिए। इसके बाँधनेसे दर्द तो रात भरमें ही रफा हो जाती है। कितना ही बड़ा फोड़ा उभड़ता हो, यदि उभड़ते ही इसकी पुलटिस बाँधी जाय तो फौरन वह दब जायगा—बढ़ नहीं सकता और न पीड़ा ही दे सकता है।

यदि छोटी-छोटी पुन्सियाँ निकलती हों तो क्यूटीक्यूरा साबुन लगाकर धोना चाहिए और फिर भेंड़का मक्खन (सौ पानीसे धोए हुए) में काली मिर्च फेटकर लगाना चाहिए। इससे फुन्सियाँ अच्छी हो जाती है और खाज नहीं चलती।

बवासीर

यह रोग खूनी और बादी दो तरहका होता है। खूनीमें पाखाने के साथ खून गिरता है और बादीमें मस्से जोकि गुदा द्वारपर होते हैं, सूज आते हैं। खूनीमें छोटे-छोटे लाल रंगके मस्से होते हैं, उन्हींसे खून गिरता है। मल त्यागनेमें बड़ा कष्ट होता है। कभी-कभी मल त्यागके समय लाल रंगकी भीतरकी आँत भी बाहर निकल आती है। खूनीमें मनुष्य निर्बल बहुत हो जाता है, परन्तु बादीकी अपेक्षा इसमें पीड़ा कम होती है। दोनों तरहके बवासीर होनेके मूल कारण हैं, कब्जा रहना, अधिक बैठना, तिक्त और गरिष्ट चीजें खाना तथा खाने-पीने और मल-त्याग आदिमें व्यतिक्रम करना।

सूजे हुए मस्सोंके लिए अखरोटके तेलमें रुई भिगोकर गुदामें रखना लाभदायक है। इससे मस्से जल जाते हैं और इस रोगसे छुटकारा मिलता है।

गेंदेकी पत्ती काली मिर्चके साथ घोंटकर पीनेसे भी बवासीर अच्छा हो जाता है।

थूहर-वृक्षका दुध ६ छटाँक और हल्दी ३ छटाँक, इन चीजोंको बारीक पीसकर मरहम बना लेना चाहिए। अर्श रोगी मंगलसे शुक्रवारतक, यानी चारो दिन इसीका लेप करे तो नयी पुरानी बवासीर नष्ट हो जाती है। * बवासीरकी योंतो सैकड़ों औषधियाँ

---

* यह नुस्खा कविराज पं० शम्भुदत्त शर्म्माने 'थूहर-वृक्ष' शीर्षक एक लेखमें लिखा था।

वैद्यक ग्रन्थोंमें लिखी हैं, पर परीक्षित न होनेके कारण व्यर्थ उनका यहाँ उल्लेख करना हम उचित नहीं समझते।

अस्तु, खास रोगोंकी कुछ औषधियाँ लिख दो गयीं। अब इस प्रकरणको समाप्त करके आगेके प्रकरणमें बच्चोंके सम्बन्धमें कामकी बातें लिखी जायँगी।

बाल-रोग-चिकित्सा

माताकी लापरवाही या मूर्खताके कारण बच्चे बहुधा रोगग्रस्त हो जाते हैं और कभी-कभी मर भी जाते हैं। इसलिए इस प्रकरण में साधारण घरेलू चिकित्साकी मोटी-मोटी बातें लिख देना माताओंके लिए बहुत ही उपयोगी होना सम्भव है। यद्यपि बालकके रोगोंकी चिकित्सा करना बड़ा ही असाधारण काम है और वह हम लोगोंके समान मनुष्योंका काम भी नहीं है तथापि यह विषय इस पुस्तकका मुख्य अंग होनेके कारण प्राचीन ग्रन्थोंके आधारपर कुछ बातें लिखी जा रही हैं।

सबसे पहले बालकका रोग समझना आवश्यक होता है। आयुर्वेद शास्त्रमें दो खंड हैं; एक निदान खंड है और दूसरेका नाम चिकित्सा खंड है। निदान खंडमें रोग पहचाननेकी विधियाँ, रोगोंके लक्षण आदि हैं और चिकित्सा खंडमें रोगोंके प्रतिकारके उपाय बतलाये गये हैं। आयुर्वेदकी इस प्रणालीसे मालूम होता है कि पहले निदान है और पीछे चिकित्सा। ऐसे भी देखनेसे निदान ही पहली वस्तु मालूम होती है। यदि यही न मालूम होगा कि रोग क्या चीज है, तो फिर इलाज क्या किया जा सकता है? इसलिए माताओंका कर्त्तव्य हैं कि पहले वे बच्चेका रोग खूब सावधानीसे जाननेकी चेष्टा करें। आज-कलकी माताएँ बहुधा बच्चोंके बीमार पड़ते ही दवा देनेकी ओर ध्यान न देकर टोना,

नजर, ग्रह, भूत, प्रेत आदिके भ्रममें पड़ जाती हैं। परिणाम यह होता है कि ठीक उपचार न होनेके कारण वे बच्चेसे हाथ धो बैठती हैं। भला भूख लगी हो और कै होनेकी दवा दी जाय, यह कहाँकी बुद्धिमानी है? हमारे देशमें ऐसे ही अंट-संट यत्न किये जाते हैं। किन्तु यह बात उचित नहीं है। सुश्रुत आदि महर्षियोंने स्पष्ट लिखा है कि किसी प्रकारके असुखका मूल कारण जानकर उसकी दवा करनी चाहिए। सब रोग औषधियोंसे ही शान्त होते हैं।

सुश्रुत संहितामें लिखा है कि अधिकतर अपवित्रताके कारण ही बच्चे रोगके शिकार बनते हैं। कारण यह कि उनका स्वभाव अत्यन्त सुकुमार होता है, अतएव मामूली गन्दगी भी उनके रोगका कारण हो जाती है। इसीसे आचार्योंने इस बातपर बार-म्बार जोर दिया है कि बच्चोंकी सफाईकी ओर पूरा ध्यान रखना चाहिए। सौरमें नीचे लिखो बर्तोपर यदि ध्यान रक्खा जाय तो बच्चे जल्द बीमार नहीं पड़ सकते।

१—गन्दी हवा न जाने दे तथा सौरके घरमें किसी प्रकारकी गन्दगी न करे। शुद्ध वायुको रोके भी न।

२—बहुत ही सावधानीसे नालोच्छेदन किया जाय, ताकि उसमें कोई रोग उत्पन्न होनेकी सम्भावना न रहे।

३—बालक पैदा होनेके बाद ही उसको एक दस्त कराया जाय और उसके अंग-प्रत्यंगकी सफाई बहुत ही सावधानीसे कर डाली जाय।

४—सूतिकाको भोजन पीछेके लिखे अनुसार दिया जाय और बच्चेको बासी दूध कभी न पिलाया जाय।

इन्हीं बातोंपर ध्यान न देनेके कारण बालकोंको बहुधा ये रोग हो जाते हैं:—

उनका शरीर शिथिल पड़ जाता है और नींद नहीं आती। दस्त पहले होने लगते हैं। बार-बार दूध डाल देते हैं; वे स्तन-पान नहीं करते। हिचकी, खाँसी, अतिसार, उल्टी, ज्वर आदि रोग हो जाते हैं। रंग पीला पड़ जाता है, कम्प होता है, गलेमें घुरघुराहट होता है, शरीरमें दुर्गन्ध पैदा हो जाती है। मूर्ख स्त्री-पुरुष इनको भूत-प्रेतका उपद्रव जानकर झाड़फूँक कराने लगते हैं।

बालकको स्वस्थ निरोग रखनेका सहज उपाय यही है कि जन्मते ही उसकी हर प्रकारकी सफाईपर पूरा-पूरा ध्यान रक्खा जाय और नीचे लिखे काढ़ोंसे पाँचवें-सातवें दिन उसे नहला दिया करे।

गोरखमुण्डी और खसको पानीमें पका डाले। बाद ठंढा हो जानेपर (विशेष गलने न लगे) छानकर उसी जलसे स्नान करावे। उसके अंगोंको हल्के हाथसे धो दे, जिसमें मैल न लगी रह जाय।

हल्दी, चन्दन, कूट इनको पीसकर उबटनकी भाँति बालकके शरीरपर लगाकर छुड़ा दे, फिर स्नान करावे।

पीपल, पीपलामूल और कटेरीका क्वाथ बनाकर फिर उसे घीमें

पकावे। जब सब पानी जल जाय और घी रह जाय, तब उसे उतारकर किसी बर्त्तनमें रख ले और वही घी बालकके शरीरमें मलकर उसे स्नान करावे।

यदि बालक रोने लगे, तब समझना चाहिए कि उसे किसी प्रकारका कष्ट हो रहा है। बड़े लड़के तो अपना दुःख-सुख कुछ कह सुनाते हैं, पर छोटे लड़के न बोल सकनेके कारण अपने दुःखोंको रोकर ही जाहिर करते हैं। बालकके दुःखोंको जाननेकी रीति यह है:—

यदि बालक रोता हो, मुखमें झाग आती हो, तो जानना चाहिए कि उसके कपड़ेमें जूँ है और उसीके काटनेसे बच्चा रो रहा है। फिर उसको ढूँढ़कर निकाल डालना चाहिए, और बच्चेके शरीरमें जहाँ-जहाँ उसने काट खाया हो, वहाँ-वहाँ जरा घी मल देना चाहिए। तुरन्त बालक चुप हो जायगा।

यदि बालक बार-बार अपने पैरोंको पेटकी ओर समेटे और पेटको दबानेसे प्रसन्न न हो, रोता ही रहे तो समझना चाहिए कि उसके पेटमें दर्द है। पेट-दर्दको दूर करनेके लिए निम्न-लिखित उपाय काममें लाना चाहिए:—

१—हाथको आगपर सेंक-सेंककर सहता हुआ बालकका पेट सेंके। इस बातका ध्यान रहे कि बच्चेका शरीर बहुत ही कोमल होता है, अधिक गरम हाथ पड़नेसे कहीं जल न जाय।

२—गुलरोगनको जरासा गरम करके पेटपर मल देनेसे भी पेटकी पीड़ा शान्त हो जाती है।

३—नमकको खूब महीन पीसकर गरम करे और उसे बालकके पेटपर मले। खूब महीन नमक रहे, नहीं तो बालकके पेटका चमड़ा छिल जायगा और उसे महान दुःख होगा।

४—छोटी इलाइचीके दो बीज, सौंफके दो दाने, माँके दूधमें पीसकर पिला देनेसे भी पेटका दर्द मिट जाता है।

सोकर उठनेपर यदि बालक रोने लगे, जीभ निकाले और इधर-उधर दूधकी खोजमें माथा हिलावे तो समझना चाहिए कि बच्चा भूखा है।

अधिक देरतक एक ही करवटके बल सोनेसे या किसी वस्तुके चुभने, चींटी अथवा मच्छर काटनेसे भी बच्चा रोने लगता है। इसलिए सबसे पहले इन बातोंका निरीक्षण भली प्रकार कर लेना आवश्यक है।

यदि बालक बराबर रोता ही रहे, चुप न हो तो जानना चाहिए कि उसे कोई दुःख हो रहा है। जहाँ या जिस अंगमें पीड़ा होती रहती है, बालक बार-बार उसीको छूता है और दूसरे-का उस स्थानपर हाथ लगनेसे रोता है।

मस्तकमें पीड़ा होनेपर बच्चा अपनी आँखें मूँद लेता है। गुदामें दर्द होनेपर बच्चेको प्यास अधिक लगती है। साथ ही मूर्च्छा भी हो जाती है। मलकोष्ठमें दर्द होनेपर मल-मूत्र रुक जाता है और

मुख धुँधला पड़ जाता है; साँस अधिक चलती है और आँतोंसे आवाज निकलती है ।

बच्चोंको खानेकी दवा तीन प्रकारसे दी जाती है । दूध पीनेवाले बच्चेको यदि दवा देनी होती है तो दूध पिलानेवालीको दवा दी जाती है, जिससे उसका असर दूधमें आ जाता है और स्तनपान करनेवाला बच्चा निरोग हो जाता है । दूध और अन्न दोनोंसे जो बच्चे निर्वाह करते हैं, उनकी यदि चिकित्सा करनी होती है तो माँ-बच्चे दोनोंको दवा दी जाती है । बालकोंको दवाएँ माताके दूध या शहदमें घिसकर दी जाती हैं, इसका सदा ध्यान रखना चाहिए ।

बच्चोंको बहुधा नीचे लिखे रोग होते हैं:—

नाल पकना—यदि नाल खींचनेके कारण पक जाय तो मोमका मरहम कपड़ेपर लगाकर या कपड़ेको कड़वे तेल या नारियलके तेलमें भिगोकर लगा देना चाहिए । यदि नालमें सूजन हो तो पीली मिट्टीको आगमें गरम करके दूध डालकर बाफ देना उचित है अथवा साफ और नयी रुईसे सेंक दे । अथवा बकरीकी लेंड़ी जलाकर उसकी राखको नाभिपर चिपका देना चाहिए । या हल्दी, लोध, मेहँदी, मुलहठी इनको तेलमें पकाकर नाभिपर लगाना चाहिए ।

मूत्र रुकना

पीपल, कालीमिर्च, इलायची छोटी, और सेंधा नमक—इनका चूर्ण शहदमें मिलाकर चटानेसे बालकोंका रुका हुआ मूत्र खुल जाता है ।

बहुत रोनेपर

पीपल और त्रिफलाके चूर्णको घी और मधुमें मिलाकर चटानेसे बालकका रुदन बन्द हो जाता है।

दूध फटकना—अपने पेटके विकारसे अथवा माताके दूधमें दोष होनेसे बालक दूध पीकर फटक देता है। चक्की पीसकर या रोटी बनाकर अथवा और कोई परिश्रमका धन्धा करके तुरन्त स्तनपान कराना बड़ा ही हानिकारक है। माताको उचित है कि वह अपने शरीरको अच्छी तरहसे शान्त करनेके बाद बच्चेको स्तन-पान करावे। यदि माताको अजीर्ण रहता हो तो उसे शीघ्र पचनेवाला हलका भोजन करना चाहिए और किसी अच्छे पाचक चूर्णका भी सेवन करना चाहिए—ताकि जठराग्नि ठीक हो जाय। काकड़ासिंगी, अतीस, मोथा और पीपल पीसकर शहदमें चाटना उत्तम है। आमकी गुठली, धानकी खील और सेंधा नमक पीसकर शहदमें चाटना भी लाभदायक है। आम या कटेरीके फूलका रस, पीपल, पीपलामूल, चित्रक और सोंठ पीसकर घी और शहदके साथ सेवन करना चाहिए।

यदि बालक दूध न पीता हो तो पहले यह जानना चाहिए कि इसे किसी प्रकारकी पीड़ा तो नहीं हो रही है। कारण जानकर फिर उसका इलाज करना चाहिए।

आँख दुखना—जब बच्चेकी आंखें दुखने लगें तब तीन दिन-तक कोई दवा नहीं करनी चाहिए। कारण यह कि दवा करनेसे

उसका वेग रुक जाता है इससे पीछे बच्चेको अधिक कष्ट भोगना पड़ता है। आँख दुखनेके बहुतसे कारण हैं। गर्मीसे, दाँत निकलते समय, माताकी आँखें दुखनेसे बालककी आँखोंमें दर्द होता है। इसके लिए नीचे दवाएँ लिखी जाती हैं:—

क—बच्चेके कानमें कड़वा तेल डाल दे और तलवेमें भी कड़वा तेल मल दे।

ख—रसोतका पानी आँखोंमें टपका देना चाहिए।

ग—माताको नमकीन तथा खट्टी चीजोंका खाना छोड़ देना चाहिए। चनेकी बनी हुई भी कोई चीज नहीं खानी चाहिए। क्योंकि इससे भी बालकको हानि पहुँचती है।

घ—यदि आँखें दाँत निकलनेके कारण दुखती हों तो शान्तिसे काम लेना उचित है। ऐसे समयमें उठनेवाली आँख जरा देरमें अच्छी होती है। इसलिए अंट-संट दवा करना उचित नहीं है।

ङ—आँवले और लोधको गायके घीमें भून डाले, फिर पानीमें पीसकर लगावे।

च—पोस्तेका फल (ढोंढ़) लेकर उसका दाना निकाल डाले। बाद छिलकेको गुड़के गरम पानीमें भिगोकर सहता हुआ आँखोंपर बांध दे या बार-बार उससे आँखें तर करके योंही छोड़ दे।

छ—अमचूरको लोहेपर पीसकर आँखपर लेप कर दे। इससे आँखकी पीड़ा शान्त हो जाती है।

ज—बकरीके दूधका फाहा लगाना भी लाभदायक है।

खाँसी

यह कई तरहकी होती है। सूखी खाँसी, जुकामकी खांसी, कुकुर खाँसी आदि। इसके लिए नीचेकी दवाएँ काममें लाना चाहिए:—

१—छोटी पीपल, पीपलामूल और सोंठको पीस-कपड़छानकर शहदमें मिलाकर बालकको चटानेसे कास-श्वास रोग बहुत शीघ्र दूर हो जाता है।

२—वंसलोचन शहदमें चटानेसे भी खांसी नष्ट हो जाती है।

३—पीपल, काकड़ासिंगी और मूलीके बीज इन सब चीजोंको शहदके साथ चटानेसे बालकोंकी खांसी अच्छी हो जाती है। अथवा केवल काकड़ासिंगी और मूलीके बीज ही घी या शहदके साथ खांसी रोगमें चटाना चाहिए।

४—अनारका छिलका और नमक पीसकर चटाना भी बालक-की खाँसीको दूर करता है।

५—सूखी खाँसीमें मुलहठीका सत बालकके मुखमें डाल रखना बहुत ही लाभदायक है।

६—काकड़ासिंगी और मिश्री बराबर-बराबर लेकर चूर्ण करे। सेवनविधि यह है—जितने मासका बालक हो उतनी ही रत्ती मधु-के साथ सायं-प्रातः दो बार दे। स्वास, खाँसी और ज्वर छूटकर बालक चंगा हो जायगा।

७—पानके रसमें एक रत्ती जायफल घिसकर देनेसे भी खाँसी अच्छी हो जाती है।

हिचकी

सोना गेरूको पीसकर शहदके साथ चटानेसे बालककी हिचकी बन्द हो जाती है। या सोंठ, आंवला, पीपल, इनका चूर्ण शहदमें मिलाकर चटाना भी हिचकीके लिए बहुत ही लाभदायक है। अथवा पीपल और रेणुका बीजके क्वाथमें भुनी हुई हींग और शहद डालकर पिलाना चाहिए। इससे सब तरहकी हिचकी जाती रहती है, ऐसा धन्वन्तरिजीने लिखा है।

अतिसार

इसको ठेठ भाषामें 'पेट चलना' कहा जाता है। यह रोग सर्दी-गर्मी लगनेसे होता है। यदि दाँत निकलते समय दस्त आते हों तो किसी प्रकारकी भी दवा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि उस समय दवासे दस्तको रोकना बच्चेके लिए बड़ा ही हानिकारक होता है। हाँ, यदि और कारणोंसे दस्त अधिक आते हों तो फौरन इलाज करना चाहिए। इस रोगकी कुछ औषधियां वैद्यक ग्रन्थोंसे नीचे उद्धृत की जाती हैं:—

लोध, मँजीठ, नेत्रवाला, और धायके फूल सम मात्रामें लेकर इनका क्वाथ बालकको पिलाना अतिसारके लिए अत्यन्त लाभ-दायक है। इससे अतिसार शीघ्र नष्ट हो जाता है।

बेलगिरी, धायके फूल, नेत्रवाला लोध और गजपीपलके क्वाथ

में शहद डालकर पिलानेसे भी अतिसार नष्ट हो जाता है।

नागरमोथा, अतीस, इन्द्रजव, नेत्रवालाका क्वाथ बालकके अतिसारको अच्छा कर देता है।

आमकी जड़का स्वरस भी बच्चोंके अतिसारको अच्छा करनेमें एक ही चीज है।

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, कूड़ेकी छाल इनका काढ़ा पिलानेसे भी अतिसारसे बालकका पिंड छूट जाता है और दस्त नियमित रूपसे आने लगते हैं।

यदि अतिसारके साथ ज्वर भी हो तो नागरमोथा, पीपल, अतीस, काकड़ासिंगी इनका चूर्ण शहदके साथ चटाना चाहिए। इस दवासे अतिसार और ज्वरका तो नाश हो ही जाता है—साथ ही खांसी और दूध गिरना भी आनन-फानन बन्द हो जाता है। अथवा हल्दी, दारुहल्दी, मुलहठी, कंटकारीकी जड़ और इन्द्रजवका काढ़ा पिलानेसे भी ज्वरातिसार नष्ट हो जाता है। या धायके फूल, बेल, धनियां, लोध, इन्द्रजवका चूर्ण शहदमें चटावे।

यदि इनके साथ प्यास भी लगती हो तो मोथा, सोंठ, अतीस, इन्द्रजव और खसका काढ़ा पिलाना चाहिए। और यदि केवल प्यास हो, अतिसार या ज्वर न हो—तो पीपल, मुलहठी, जामुनके पत्ते और आमके पत्तेका चूर्ण शहदके साथ चटानेसे बालककी प्यास मिट जाती है। अथवा अनारदाना, सफेद जीरा और नागकेशरके चूर्णमें उतनी ही मिश्री मिलाकर शहदके साथ चटानेसे

भी प्यास लगना बन्द हो जाता है। या घीमें भुनी हुई हींग, सेंधा नमक और पलासपापड़ाका चूर्ण शहदके साथ चटाना चाहिए इससे भी बालकको बढ़ी हुई तृषा नष्ट हो जाती है। मुनक्का और दाखको धो-पोंछकर बीज निकाल डाले। बाद सेंधा नमकके साथ पीसकर प्रातःकाल बालकको चटा दिया करे। इससे भी प्यास मिट जाती है।

बवासीर

गेंदाकी पत्ती पावभर, नीमकी पत्ती पावभर, बकाइनकी पत्ती पावभर, छोटी हड़ एक छटाँक, नमक काला एक छटाँक, सबको पीसकर गोली बनावे, जो सूखनेपर झरबेरीके बराबर हो। एक गोली प्रति दिन सबेरे बासी पानीके साथ सेवन करे। इससे खूनी और बादी दोनों बवासीरका नाश होता है। यह मात्रा बड़ी अवस्थावालोंकी है।

ज्वर

नागरमोथा, हड़की छाल, नीमकी छाल, परवल और गिलोय इन औषधियोंका क्वाथ पिलानेसे बालकका ज्वर नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार गिलोयका चूर्ण या स्वरस शहदमें चटानेसे भी ज्वरका नाश हो जाता है।

कुटकीके चूर्णमें शहद और मिश्री मिलाकर चटानेसे ज्वर छूट जाता है। कुटकीके कल्कका लेप भी बालकके ज्वरको दूर कर देता है और वह निरोग हो जाता है।

त्रिदोष ज्वर

पद्मकाष्ठ, नीमकी छाल, गिलोय और लाल चन्दन इन द्रव्यों-का क्वाथ बालक और उसकी माताको पिलानेसे त्रिदोषके ज्वरका शमन होकर खूब अच्छी भूख लगती है।

गिलोयको आठ पहरतक भिगो रक्खे, बाद उसे पीसकर पिलानेसे बालकके सब तरहके ज्वरका बहुत जल्द नाश हो जाता है।

वात ज्वर

शालपर्णी, गोखरू, सोंठ, नेत्रबाला, छोटी बड़ी दोनों कटेरीकी जड़ और चिरायताका क्वाथ पिलानेसे बालकका वात ज्वर बहुत शीघ्र दूर हो जाता है। यह काढ़ा बालक और उसकी माँ दोनोंको पिलाना चाहिए। लघुपंचमूलके क्वाथका सेवन करनेसे भी वात-ज्वर नष्ट होता है। (लघुपंचमूलमें पाँच चीजें हैं:—शालपर्णी, पृष्टपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी और गोखरू।)

मुनक्का, गिलोय, सिरयाई, खरेंटीका क्वाथ भी वात ज्वरको नष्ट कर देता है।

खस, लाल चन्दन, सिरयाई, गिलोय नीलोफर, पद्मकाष्ठ, फालसा, मुलहठी, गम्भीरी और धनियाँका क्वाथ पीनेसे भी वात ज्वर जड़से साफ हो जाता है।

पित्त ज्वर

सिरयाई, नीलोफर, गम्भीरी, गिलोय, पद्मकाष्ठ और पित्त-पापड़ाका क्वाथ बालकोंके पित्त-ज्वरको दूर भगाता है। नागर-

मोथा, पित्तपापड़ा, खस, नेत्रवाला, पद्मकाष्ठका क्वाथ ठण्ढा करके पिलानेसे प्यास, दाह, वमन और ज्वरका शीघ्र नाश हो जाता है।

बाँसा, पित्तपापड़ा, खस, नीमकी छाल, चिरायता इनके क्वाथका सेवन करानेसे वमन, श्वास-कास और पित्त ज्वर दूर होता है।

अन्य ज्वर

हरड़की छाल, आँवला, पीपल छोटी, चीता इनके सेवनसे सन्निपात ज्वर और कफ ज्वर नष्ट हो जाता है। इन चारों चीजों-का योग बड़ा ही पाचक और दस्तावर है।

काली मिर्च, कायफल, काकड़ासिंगी, पोहकरमूल, छोटी पीपल इन चीजोंमेंसे एक या दोको अथवा सबको लेकर चूर्ण बनावे। बाद उस चूर्णको अदरखके रस और शहदके साथ चटानेसे बालकका कफ ज्वर, अरुचि, श्वास और शूल नष्ट हो जाता है।

फालसा, कमलनाल, धानकी खील और मिश्रीको रातमें भिगो दे। सबेरे कपड़ेसे छानकर शहद मिलाकर पिलानेसे बालकका वात-पित्त-ज्वर, दाह, प्यास, मूर्च्छा, अरुचि, भ्रम रक्त-पित्त शमन होता है।

नागरमोथा, गिलोय, पित्तपापड़ा, पोहकरमूल, परवल, धनिया, चिरायता, लाल चन्दन, खस, खरेटी, नेत्रवालाका क्वाथ पिलानेसे पित्त-कफ ज्वर नष्ट हो जाता है।

बाँसा, कटहलीकी जड़ और पीपलका अवलेह शीत ज्वरको

नष्ट कर देता है। या कटहलीकी जड़, गिलोय, जवासा, कुटकी, चिरायताका क्वाथ भी शीघ्र शीत ज्वरका संहार करता है।

इस बातका ध्यान रहे कि चढ़े ज्वरमें किसी प्रकारकी भी दवा नहीं देनी चाहिए। यदि दवा देनेसे एक-दो दिन पहले रेंडीका तेल देकर दस्त करा दिया जाय तो बहुत उत्तम हो। दस्त हो जानेसे लादकी गर्मी शान्त हो जाती है, ज्वरका वेग भी कम हो जाता है और दवा अधिक तेजीसे रोगका नाश करनेमें समर्थ होती है।

कंजेकी पिसी हुई मींगी एक माशा और काली मिर्च दो रत्ती पीसकर अथवा अतीस डेढ़ माशा और काली मिर्च दो रत्ती ये एक बारकी मात्रायें हैं। यदि शरीर ठण्ढा हो और बुखार न हो तो ठण्ढे पानीके साथ फँका देना चाहिए। सुबह और शाम दोमेंसे एक दवा सेवन करानेसे बालकका बुखार छूट जाता है। यदि शामके वक्त बालकका शरीर गरम हो आता हो तो छटाँकभर पानीमें चार रत्ती सोरा और एक माशा पक्की चीनी घोलकर पिला दे। बाद कम्मलसे शरीर ढँक दे, ताकि पसीना हो जाय। यदि बुखारके साथ आँवके दस्त भी आते हों तो हींग एक रत्ती, अफीम चौथाई रत्ती और काली मिर्च आधी रत्तीकी एक-एक गोली बनाकर सुबह-शाम एक गोली खिलावे। आँव पड़ते समयतक रोटी आदि न खिलाकर चावल और दही खिलाना चाहिए। ऊपरकी मात्रा युवक मनुष्यकी है। बालककी मात्रा इस प्रकार है:—

एक बारकी मात्रा—

चौदह वर्षकी अवस्था वाले बालकको ऊपरकी दवाका $\frac{1}{2}$

सात वर्षकी अवस्थावाले बालकको ऊपरकी दवाका $\frac{1}{3}$

चार वर्षकी अवस्थावाले बालकको ऊपरकी दवाका $\frac{1}{4}$

दो वर्षकी अवस्थावाले बालकको ऊपरकी दवाका $\frac{1}{8}$

एक वर्षकी अवस्थावाले बालकको ऊपरकी दवाका $\frac{1}{11}$

छः महीनेके बच्चेको ऊपरकी दवाका $\frac{1}{16}$

इससे कम अवस्थाके बच्चेको यह दवा नहीं देनी चाहिए।

लार गिरना

बहुतसे बच्चोंके मुखसे लार गिरा करता है, यहाँतक कि कितने ही बालकोंकी छातीपर रुईदार टुकड़ा बँधा रहता है और वह थोड़ी ही देरमें भींग जाता है। ऐसे लड़कोंके लिए दो तोले मस्तगी, दो तोले बड़ी इलायचीके दाने बूककर पावभर चीनीकी चाशनीमें जमाकर रख दे और प्रति दिन एक या दो माशे खिलाना चाहिए। इससे लारका गिरना बन्द हो जाता है।

कर्ण रोग

कमेरा, विजोराका अर्क अदरखका अर्क इन सब चीजोंको

गरम करके कानमें डालनेसे कानकी पीड़ा शान्त हो जाती है।

आकके पीले पत्तेपर तेल पोतकर, उसे तप्त तवेके ऊपर गरम करना चाहिए। बाद उसका अर्क कानमें निचोड़ देना चाहिए। यह दवा भी कानके दर्दको बहुत शीघ्र हर लेती है।

स्त्रीके दूधमें रसोत घिसकर उसमें शहद मिला, कानमें डालने से कानका बहना, बदबू, पीड़ा, कर्णशूलसे होनेवाला सिर-दर्द आदि रोग फौरन अच्छे हो जाते हैं।

लोधको महीन पीसकर कानमें डाल देनेसे कानका बहना और दर्द होना बन्द हो जाता है।

लड़केवाली स्त्रीके दूधकी चार-पाँच बूँदे कानमें टपका देनेसे कानका दर्द आसानीसे मिट जाता है।

यदि कानके इर्द-गिर्द सूजन हो तो वटवृक्षकी जटाको तीन दाने काली मिर्चके साथ पीसकर आगपर गरम कर ले और कपड़ेपर रखकर उसका रस कानमें टपका दे। थोड़ासा कानके आस-पास भी लगा देना चाहिए। दिन भरमें तीन-चार बार डालनेसे कानका रोग दूर होने लग जाता है।

यदि कान बहता हो तो हाइड्रोजन आक्साइड (अंग्रेजी दवा है) से साफ कर डालना चाहिए। कानकी पीड़ामें भी इस दवासे काम लेना बड़ा ही लाभदायक है; क्योंकि इससे कानकी सब मैल फूल आती है और रुईसे बड़ी सरलतापूर्वक बाहर निकल आती है।

बहुतसे बच्चोंके कानमें बहुधा पीड़ा हुआ करती है। इसलिए ऐसे बच्चोंपर सदा इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि लकड़ीसे कानको खोदते तो नहीं; कारण यह कि कान खोदनेसे बहुत जल्द उसमें रोग पैदा हो जाता है।

दाँत निकलना

दाँतोंका निकलना जब प्रारम्भ होता है, तब बालकोंको बड़ा कष्ट होता है। प्रायः सात-आठ महीनेकी आयुमें दाँतका निकलना शुरू होता है। इस समय तरह-तरहके विकार पैदा होते हैं। बहुतसी माताएँ अपनी मूर्खताके कारण इस बातपर ध्यान ही नहीं देतीं कि ये सब उपद्रव दाँत निकलनेके हैं और वे अंट-संट औषधियाँ करनेमें लग जाती हैं। जिसका परिणाम बहुत ही बुरा होता है। दाँत निकलते समय बड़ी सावधानीसे काम लेना चाहिए। जब बालकके दाँत निकलनेवाले होते हैं, तब साधारण-तया ये लक्षण दिखलायी पड़ते हैं:—

१—बालकके मुखसे लार गिरने लगती है और उसके मसूड़े गरम और लाल हो जाते हैं।

२—बच्चा अपनी अंगुलियोंको चबाता है। प्यास अधिक लगती है। इसीसे वह बार-बार दूध पीनेको करता है परन्तु पिलाने-पर पीता नहीं। माताका स्तन मुखमें ले-लेकर छोड़ दिया करता है।

३—रोते समय उसके गालोंका रंग लाल हो जाता है।

४—किसी-किसी बच्चेको दस्त भी होने लगता है।

जब ये लक्षण दिखलायी पड़ें, तो समझना चाहिए कि अब बहुत जल्द दाँत निकलनेवाले हैं। सुगमतासे दाँत निकलनेके लिए उत्तम उपाय यह है कि शहदमें सुहागा और नमक पीसकर मिला दे और उसे मसूड़ोंपर दिनभरमें कई बार चुपड़ दिया करे। अथवा मुलहठी छीलकर बालकके गलेमें बाँध दे, जिसमें वह उसको चूसा करे।

दाँत निकलते समय बालकको खट्टी चीज न खिलावे। इस समय यदि माता स्तन-पान न करावे तो बड़ा ही अच्छा हो। इसके छुड़ानेका सरल उपाय यह है कि माता चार-छः दिन भोजन कम करे जिसमें दूधका उतरना बन्द हो जाय और छः माशे सफेद खरी और चार रत्ती कपूर पानीमें पीसकर स्तनोंपर मल दिया करे। दस-बारह दिन ऐसा करनेसे बालक अपने-आप ही दूध पीना छोड़ देता है। परन्तु गायका शुद्ध दूध बालकको मजेमें पिला दिया करे अन्न कम खिलावे। मजेमें पिलानेका यह मतलब नहीं है कि ऐसा पिला दे जिससे बच्चेको अपच हो जाय—जैसा कि आजकल बहुधा स्त्रियाँ करती हैं। यदि दाँत निकलते समय बालकको दस्त होने लगें तो बहुत ही उत्तम हो। हाँ, यदि अधिक दस्त आते हों तो बेलगिरी और रूमी मस्तगी मिलाकर जरा-जरासा खिला देना चाहिए।

कभी-कभी बालकको इसमें बड़ा कष्ट होता है। मसूड़े लाल होकर फूल आते हैं, गरम रहते हैं, दर्द करते हैं, दूध नहीं पिया

जाता, नष्ट सूखा रहता है, ज्वर हो आता है, हरवक्त चेहरा लाल रहता है, सोते-सोते बालक चिहुँककर रोने लगता है और पेट जोरों-से चलने लगता है। ऐसी दशामें किसी अच्छे डाक्टरसे मसूड़ोंको चिरवा देना बड़ा ही लाभदायक है। इससे बालकका कष्ट बहुत ही कम हो जाता है और दाँत जल्द निकल आते हैं।

इन्हीं दिनों बच्चोंके कानके पीछे गिल्टी भी निकल आती है। उस गिल्टीको गरम पानीमें दूध डालकर धो देना चाहिए। इस समय बालकका आहार भी घटा देना चाहिए।

संग्रहणी

यदि बालकको खिलायी-पिलायी चीज हजम न हो तो आधी छटाँक खानेका चूना परातमें रखकर पतली धारसे उसके ऊपर ढाई सेर पानीका तरेरा दे; ऐसा करनेसे सब चूना पानीमें मिल जाता है। दो घण्टेके बाद जब चूना नीचे बैठ जाय तब उस पानी-को दूसरे बर्त्तनमें निथार ले। आधे घण्टेके बाद फिर दुबारा इस पानीको किसी साफ बर्त्तनमें निथारे—ताकि चूनेका जरा भी अंश पानीमें न रह जाय। फिर यही जल थोड़ा-थोड़ा बालकके दूधमें मिलाकर पिलाया करे। इससे बालककी उल्टी और फटे दस्तोंका आना बन्द हो जाता है।

अजवाइन, सफेद जीरा, सोंठ, मिर्च, छोटी पीपल और कूड़ेकी छालका चूर्ण शहदके साथ चटानेसे भी बालकोंकी संग्रहणी बहुत जल्द नष्ट हो जाती है।

मुखमें छाले

शीतल चीनी और सफेद कत्था पीसकर शहदके साथ चटानेसे मुखके छाले अच्छे हो जाते हैं ।

केलेपर पड़ी हुई ओस चटानेसे भी मुँहमें पड़े हुए छाले बहुत जल्द अच्छे हो जाते हैं।

कपूर और शीतलचीनी पीसकर मुखके भीतरी भागमें लगाना भी बड़ा लाभदायक है ।

यदि बालकके मुखमें सफेद छाले पड़ गये हों और मुखका रंग लाल हो गया हो तथा लार अधिक गिरता हो तो बालकके मुखमें पड़े हुए छालोंके ऊपर छोटी इलायचीके बीज, सफेदा कत्था ओर बंसलोचन पीसकर बुरक देना चाहिए। अथवा दो रत्ती सुहागा और सात रत्ती गेहूँका सत पीसकर मुखमें मल दे ।

चेचक

यदि बालकको आजन्मके लिए इस रोगसे बचाना हो तो माता-पिताका कर्त्तव्य है कि रजोदर्शनसे सोलहवें दिन गर्भाधान करें। सोलहवीं रातमें गर्भाधान होनेसे जो बालक उत्पन्न होता है, उसे प्रायः चेचककी बीमारी नहीं होती। कारण यह कि उस दिनका रज बिलकुल शुद्ध होता है और शीतलारोग माताके रज-विकारके कारण ही बालकोंको हुआ करता है। माताके उदरमें बालक जिस रुधिरसे पलता है, उसीके विकारसे शीतला रोग होता है ।

यह रोग छुआछूतसे भी हो जाता है। यदि घरमें एक बच्चेको यह रोग हो जाय तो घरवालोंका कर्त्तव्य है कि वे घरके और बच्चोंको चेचक-रोगीके पास हर्गिज न जाने दें और सयानी स्त्रियाँ ही स्वच्छताके साथ रोगीकी सेवा किया करें। इसे रोकनेके लिए सबसे अच्छा और सरल उपाय तो टीका लगवाना है। टीका लग जानेपर शीतला निकलनेकी बहुत कुछ आशंका जाती रहती है। ऐसी दशामें यदि यह रोग होता भी है तो अधिक जोरदार नहीं होता।

शीतला रोग साधारणतया दो प्रकारका होता है। यहाँपर भेदोपभेद लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। अतः उस उलझनमें न पड़कर रोगका यत्न बतलाना ही विशेष प्रयोजनीय है।

कचनार वृक्षकी छालके क्वाथमें एक रत्ती सोनामक्खी भस्म बुरककर बालकको पिलानेसे भीतर बढ़ी हुई शीतला शीघ्र बाहर निकल आती है। तुलसीकी पत्तियाँ खिलानेसे भी शीतला बाहर निकल आती है। तुलसीकी पत्तियोंकी धूप भी शीतला रोगीको लाभ पहुँचाती है।

चेचककी बीमारीमें उड़दकी दाल और मीठा नहीं खिलाना चाहिए। माताको भी इन चीजोंसे बचकर ठंढी चीजोंका सेवन करना उचित है। जब चेचकके दाने बालकके शरीरपर दिखलायी पड़ने लग जायँ, तब माता को चार-चार तोला गोला स्वयं खाना चाहिए और यदि बालक दो वर्षका हो तो दो तोला गोला उसे भी

खिलाना लाभदायक है। दो वर्षके ऊपरके बालकको जितने वर्षकी अवस्था हो उतना तोला खिलाना चाहिए। इसके सेवनसे चेचकके दाने अधिकतासे नहीं निकलते।

मोती अथवा मोतीके सीप, कछुएकी खोपड़ी तथा मूँगा इन चीजोंको जलसे पीसकर बालकको पिलानेसे चेचकसे होनेवाली पीड़ा शान्त हो जाती है। उक्त वस्तुओंको लौंगके जलमें घिसकर पिलानेसे छोटी शीतला शान्त हो जाती है। पीछे कही गयी नालमें भरी हुई मेतोका सेवन दस दिनतक करा देनेसे तो बालकको चेचचका भय रही नहीं जाता।

इस बीमारीमें बालकको बहुत स्वच्छ और हवादार स्थानमें रखना चाहिए। कुछ लोगोंकी राय है कि अँधेरे मकानमें रखना चाहिए, जिसमें शीतलाके रोगीपर किसीकी परछाहीं न पड़ने पावे, क्योंकि परछाहीं पड़नेसे बालकके मुखपर दाग पड़ जाते हैं। पर वास्तवमें यह बात ठीक नहीं है। दाग पड़नेका कारण छाया नहीं है, बल्कि घावका देरमें अच्छा होना है। जब खाज चलनेपर बालक उसे खुजला देता है अथवा और किसी कारणसे घाव देरमें अच्छा होता है, तब वहाँ दाग पड़ जाता है। इसलिए दाग न पड़ने देनेके लिए बालकके हाथोंमें कपड़ेकी थैली लगा देना आवश्यक है। यद्यपि इससे कोई विशेष लाभ तो नहीं होता, क्योंकि हाथमें थैली लगी रहनेपर बालक दरेरकर खुजलाता है और घाव कर ही देता है, तथापि इतना फायदा तो अवश्य ही

होता है कि बालक आसानीसे अंगको खुजला नहीं सकता और जहाँ खुजलाता है वहाँ विषैला नाखून नहीं लगा सकता।

खुजलीका निवारण करनेके लिए कबूतरके पंखसे मक्खन या मलाई खुजलीके स्थानपर लगा देना चाहिए। अथवा चूनेके पानीमें नारियलका तेल फेटकर लगा देना चाहिए। इसके लगानेसे दाग नहीं पड़ता और रोगी बालकको आराम मिलता है।

जब शीतलाके दाने फूट जायँ, तब सिर्सा, पीपल, लिसोरा और गूलरकी छालको जलाकर उसकी पिसी हुई राखमें घी मिलाकर फफोलोंपर लगाना चाहिए। इससे दाने बहुत जल्द अच्छे हो जाते हैं।

श्वासके फकीरी नुस्खे

अदरख सेरभर छीलकर टुकड़े-टुकड़े करके एक हँड़ियामें भर दे और उसके ऊपर असली शहद इतना भरे कि अदरख डूब जाय। फिर बर्तनका मुँह बन्द करके जमीनमें गाड़ दे और उसीके ऊपर बराबर आग जलाया करे। यदि जाड़ेका दिन हो तो जहाँ तापनेका कौड़ा हो, उसके नीचे हँड़ियाको गाड़ दे। कुछ दिनके बाद उसमेंसे खुशबू उठने लगेगी, तब हँड़ियाको निकालकर उसी दवाको प्रति दिन सुबह-शाम सेवन करे।

अथवा सेरभर खूब मोटी मूलीको निर्दोष जड़ लेकर टुकड़े-टुकड़े करके एक हँड़ियामें भर दे और उसमें उतना ही खारा नमक डाल दे। फिर हँड़ियाका मुँह बन्द करके शामको दहकते हुए भाड़-

में भड़भूँजेसे गड़वा दे और सबेरे ही हँड़ियाको निकाले । बस वही खारा-मिश्रित मूलीके टुकड़े सुबह-शाम थोड़े-थोड़े खानेसे श्वासका रोग जाता रहेगा । ये दोनों नुस्खे साधुओंके बतलाये हुए हैं ।—(पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी कृत गार्हस्थ शास्त्रसे ये दोनों नुस्खे उद्धृत किये गये हैं । ये दोनों ही बड़ी अवस्थावालोंके लिए हैं, बच्चोंके लिए नहीं)

खुजली

यदि बालकको खुजली हो जाय तो चूनेके साफ पानीमें कड़वा तेल डालकर खूब हिलावे । जब वह गाढ़ा हो जाय, तब रूईके फाहेसे खुजलीपर लगा दे ।

तेलीके कोल्हूका पुराना पाचर जो खूब तेल खाये हुए हो, लाकर उस लकड़ीके छोटे-छोटे टुकड़े करके एक मिट्टीके बर्त्तनमें नीचे छेद करके भर दे । छेदमें कपड़ेकी बत्ती बनाकर लगा दे । बाद जमीनमें एक गढ़ा खोदकर एक बर्त्तन रक्खे और उसके ऊपर लकड़ीसे भरी हुई छेदवाली हँडी रख दे । फिर उस बर्त्तन-का मुँह अच्छी तरहसे बन्द करके उसके ऊपर गोहरी सुलगा दे । इस प्रकार आँच पाकर जब लकड़ीका तेल नीचेके बर्त्तनमें टपक जाय, तब उसे बोतलमें भरकर धर दे और वही तेल खुजलीमें लगावे । यह तेल स्त्री-पुरुष सबकी खुजलीको नष्ट कर देता है; किन्तु अत्यन्त छोटे बच्चोंको यह तेल न लगाना चाहिए; क्योंकि यह कुछ-कुछ चुनचुनाता है ।

मसान

यह रोग अधिकतर सोरमें उत्पन्न होता है। इस रोगकी उत्पत्ति गन्दगीके कारण होती है। इसमें बालककी पसली चलने लगती है, ज्वर भी हो आता है। पसलियोंमें कफ जम जाता है। कभी तो दस्त होते हैं और कभी नहीं होते। बालक अचेत रहता है। यह सर्द और गर्म दो प्रकारका होता है। इस रोगमें दस्त करा देना बड़ा ही लाभदायक है। गर्मसे होनेवाले मसानमें तो कोई डर नहीं रहता, परन्तु सर्दीसे होनेवाले मसानमें भय रहता है। इसकी दवा यह है:—

कबीला, चूना, नीलाथोथा, बड़ी हड़, बहेड़ेका छिलका, और सफेद कत्था इन सबको सम-मात्रामें ले कूट-छानकर गोली बना ले। फिर इसको घीमें मिलाकर बालककी पसलीपर लेप कर दे। अथवा, कंजेका बीज एक, नीलाथोथा एक रत्ती इन दोनों चीजों-को पीसकर सरसोंके बराबरकी गोली बनाकर रख दे और एक गोली प्रति दिन बच्चेको खिलाया करे। या रेंडीका तेल बालकके पेटपर मलकर बकाइनके पत्ते गरम करके बाँध दे।

यदि बालकके शरीरपर लाल चकत्ते पड़ गये हों और ज्वर भी हो तथा वे ऐसे हों कि आज पेटपर दिखलायी पड़ें तो कल जाँघोंपर दिखलायी पड़ें और परसों मुखपर निकल आवें, तो बैतरा सोंठका चूर्ण पावभर, दही आधपाव, छोटी पीपल आधपाव इन सबको मिट्टीकी हाँड़ीमें भरकर उसका मुँह बन्द कर दे। बाद

एक गढ़ा खोदे और उसमें हाँड़ी रखकर चारो ओरसे गोहरी धरके आग लगा दे। जब गोहरी जलकर राख हो जाय तब उस राखको निकालकर दूसरी गोहरी भरकर फिर आग लगा दे। इस प्रकार तीन आँच देकर ठण्ढा हो जानेपर हाँड़ीमेंसे रत्ती-रत्तीभर सब दवा निकालकर शीशीमें रख मजबूतीसे काग लगा दे। फिर यही दवा माताके दूधमें चावलभर दे। यदि रोगका बल अधिक हो तो एक रत्ती अदरखका रस और छः रत्ती शहद मिलाकर तीन दिन-तक दोनों वक्त दे।

पसली

यदि बालककी पसली चलती हो तो तुलसीदलके चार रत्ती रसमें एक माशा शहद मिलाकर देना चाहिए और नीचे लिखे तेलको पेटपर मलकर सेंक देना चाहिए।

तेल बनानेकी रीति—अदरख और लहसुनके दो-दो तोले रसमें आधी छटाँक मीठा तेल मिलाकर मधुर आँचसे पकावे। जब जलकर केवल तेल रह जाय, तब उसे एक शीशीमें भरकर रख दे। जिस बालकको बहुधा पसलीका रोग हो जाता हो उसके पेटपर ऊपरकी रीतिसे मालिश किया करे।

पेट बढ़ना

यदि बालकका पेट बढ़ आवे तो शहदका शर्बत थोड़ा-थोड़ा करके पिलाना चाहिए। कुछ दिनोंतक इसका सेवन करनेसे पेट पचकर ठीक हो जाता है।

चिल्हक

अगर पेशाब करते समय बालक रोने लगे और इन्द्रियको पकड़-पकड़कर नोचे तो जान लेना चाहिए कि पेशाब करनेमें चिल्हक पैदा हो रही है। इसके लिए थोड़ेसे बबूलके गोंदको कपड़ेमें बाँधकर पानीमें भिगो दे। बाद उस पानीमें मिश्री मिलाकर दिन-भरमें पाँच-छः बार पिलावे। अथवा धनियाँको पानीमें भिगो कर रातभर रहने दे और सबेरे छानकर मिश्री मिला मिट्टीके नये बर्तनमें रख और थोड़ा-थोड़ा करके पिलावे। यह इन्द्रिय जुलाब है। इससे गर्मी शान्त हो जाती है और पेशाबके समय होनेवाला चिल्हक फौरन ही शान्त हो जाता है। या पत्थरकी बेर (यह यहूद देशका पत्थर है और इसे 'हजरुल यहूद' कहा जाता है—पंसारियोंके यहाँ मिलती है) को पानीमें घिसकर पिलानेसे भी चिल्हक दूर हो जाती है।

नाकसे रुधिर बहना

शंखपुष्पी (कौड़ेनी) को मिर्चके साथ पीसकर सेवन करनेसे विनाशका फूटना बन्द हो जाता है। बच्चोंको बहुत थोड़ी मात्रामें यह चीज देनी चाहिए; क्योंकि यह बहुत ही तर चीज है।

अनारके फूलका रस और सफेद दूबका रस इन दोनोंसे दिन भरमें दो-तीन बार नास लेनेसे भी रुधिरका गिरना बन्द हो जाता है। अथवा फिटकिरीका पानी सूँघे।

यदि नाकमें कीड़े पड़ गये हों तो पिंडोल मिट्टीकी डली

कूटकर रोगीके मुखपर एक कपड़ा डाल उसीके ऊपर वह मिट्टी रख दे। आँख बन्द कराकर उसके मस्तकपर भी मिट्टी डाल दे। बाद धीरे-धीरे उसके ऊपर पानी छिड़के। जब मिट्टी तर हो जाय, तब पानी छिड़कना बन्द कर दे। इस मिट्टीकी सोंधी महँक नाकमें जानेसे कीड़े बाहर निकल आते हैं। तीन-चार दिन ऐसा करनेसे सब कीड़े निकल जाते हैं और रोगी आराम हो जाता है।

विषूचिका

यदि बालकको हैजा हो जाय तो उसकी दवा बड़ी सावधानी-से करनी चाहिए और सबसे अधिक ध्यान उसकी सफाईपर रखना चाहिए। कै या दस्त होनेपर फौरन उस स्थानको अँगीठीसे तप्त कर देना बहुत ही आवश्यक है। इससे हैजेके विषैले कीड़े मर जाते हैं—बढ़ने नहीं पाते। वमन होनेपर उस स्थानको लीपना बहुत ही बुरा है।

हैजेकी दवाएँ नीचे लिखी जाती हैं—

क—प्याजका अर्क सालभरके बच्चेको पाव तोला पन्द्रह-पन्द्रह मिनटके बाद दस्त-कै बन्द न होनेतक देना चाहिए जब दस्त और कै बन्द हो जाय तब धीरे-धीरे इसे भी दो-तीन खुराक देकर बन्द कर देना उचित है। यदि प्यास न बन्द हो तो एक फूल कच्ची और आधा फूल भुनी हुई लौंगको घिसकर दे देना उचित है। पर यह मात्रा बड़ी अवस्थावालोंकी है, बालकोंको कम मात्रामें देनी चाहिए।

ख—अफीम, हींग, कपूर और कालीमिर्च पीसकर डेढ़-डेढ़ रत्तीकी गोली बनाकर घण्टे-घण्टेपर एक गोली बालकको दे।

ग—कपूरका अर्क पिलाना भी बहुत ही लाभदायक है।

घ—कपूरको सुँघाया करे और माता स्वयं भी सूँघा करे। यदि वह थोड़ा-थोड़ा कपूर खा लिया करे तो और भी अच्छा हो। बालकके पास रहनेमें माताको अपने शरीरपर भी पूरी दृष्टि रखनी चाहिए।

फूली

यदि आँखमें फूली पड़ जाय तो चिरचिटेकी जड़का रस सुद्ध शहदमें मिलाकर आँखोंमें अंजन लगावे। इससे फूली कटकर आँखें निरोग हो जाती हैं।

सप्तम समुल्लास

साधारण उपदेश

माताएँ अपनी मूर्खताके कारण सर्दी आदि रोगोंमें बच्चोंको अफीम दे दिया करती हैं; कितनी तो सुलानेके लिए ही अफीम घोलकर पिला देती हैं; किन्तु ऐसा करना उचित नहीं है। अफीम-से बड़ी अवस्थावालोंको कब्ज हो जाता है, फिर कोमल स्वभावके बालकोंकी तो बात ही क्या। कब्जसे नाना प्रकारके रोग बालकों-को आ घेरते हैं। इससे उनका मस्तक आजन्मके लिए निर्बल और शुष्क हो जाता है।

बच्चेको अपने शरीरसे चिपटाकर कभी न सुलाना चाहिए और न अपने मुखकी ओर बच्चेका मुख करके ही सुलाना उचित है। कारण यह कि शरीरके रोम-रोमसे तथा नाकसे विकारयुक्त वायु निकला करती है, जिससे बच्चेके स्वास्थ्यपर बुरा प्रभाव

पड़ता है। सुलानेका सबसे अच्छा क्रम यह है कि बालककी पीठ माता अपनी ओर रक्खे और करवट सुलानेकी आदत डाले। इसमें भी बालककी पीठको अपने शरीरसे सटा रखना कदापि उचित नहीं है। इस प्रकार सुलानेसे बच्चे निर्भीक स्वभावके होते हैं और रातभर स्तन निचोड़नेकी उनकी आदत नहीं पड़ती।

बिस्तरेपर लिटानेके पहले उसे अच्छी तरहसे देख-भाल लेना चाहिए कि उसपर कोई ऐसी चीज तो नहीं है, जो बालकके शरीरमें चुभ जाय। बालकको तंग कपड़ा भी नहीं पहनाना चाहिए। तंग कपड़ोंसे बालकके फेफड़े, पाकाशय और हृदयको हानि पहुँचती है और दम फूलने लगता है जोकि जल्द मालूम नहीं होता। इससे भोजन भी ठीक नहीं पचता। नाड़ियोंमें स्वाभाविक होनेवाला रक्तका दौरा भी सुगमतापूर्वक नहीं हो पाता। किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि बच्चेको बहुत ही ढीला कपड़ा पहनाया जाय। बहुत ढीला कपड़ा पहनानेसे बच्चोंके हाथ-पैर अक्सर उसमें उलझ जाते है। यदि उसे माताने देख लिया, तब तो ठीक है नहीं तो उसमें फँसकर बच्चोंको बड़ा कष्ट सहना पड़ता है। सोते समय बालकोंका मुख कभी न ढँकना चाहिए। मुँह ढँककर सोना प्रत्येक मनुष्यके लिए हानिकारक है।

चटक-मटकके कपड़े पहनाकर बच्चोंकी आदत बिगाड़ना उचित

नहीं है। हाँ, उनके कपड़े-लत्तेकी स्वच्छताकी ओर पूरा ध्यान अवश्य रखना चाहिए। यह बात देखनेमें आयी है कि बच्चोंके मल-मूत्र त्यागनेपर फूहरी माताएँ उस कपड़ेको बदलतीं नहीं बल्कि उसीको उलटकर फिर सुला देती हैं। ऐसा करना बालकके स्वास्थ्य-को अपने ही हाथोंसे चौपट करना है। बुद्धिमती माताको चाहिए कि वह मल-मूत्र त्याग करते ही उस कपड़ेको हटा दे और उसकी जगहपर दूसरा धोया हुआ साफ कपड़ा बिछा दे। बच्चोंके नीचे बिछानेके लिए इतने टुकड़े रहें, जिसमें हर बार बदलने और धो-कर सुखानेके लिए किसी तरहकी अड़चन न पड़े।

——

बहुधा यह भी देखनेमें आया है कि स्त्रियाँ गोदमें बच्चोंको लेकर हर वक्त चुम्बन किया करती और बालकके कोमल मुखपर अपना मुख दरेरा करती हैं। यह बात बहुत ही बुरी है। पहले तो बेकार गोदमें लेना ही नहीं चाहिए—क्योंकि इससे बच्चोंकी आदत बिगड़ जाती है और गोदसे उतारते ही वे रोने लगते हैं; दूसरे बार-बार बच्चेके मुखके पास मुख ले जानेसे साँसकी गन्दी हवा उसके भीतर जाती है, जिससे उसका स्वास्थ्य बिगड़ जाना मालूमी बात है।

——

बच्चोंका प्यार करनेके लिए स्त्रियाँ मौन बालकसे व्यर्थ ही बातें करती हैं। यह उनका बुरा हौसला है। इससे बालकोंकी

शान्तिमें विघ्न पड़ता है और उनमें व्यग्रता आने लगती है। जो बच्चा बोलता नहीं, उसके सामने वाहियातकी बातें करके उसका ध्यान भंग करनेसे लाभ ? बच्चोंको हमेशा शान्त और अपनी ही तरंगमें तरंगित होने देना चाहिए। जब वे गूँगा करने लगें, तब उनको सबसे पहले नित व्यवहारमें आनेवाली वस्तुओंका ज्ञान कराना उचित है। फिर धीरे-धीरे उनको शिक्षा बराबर देते जाना चाहिए। माताको ऐसे ढंगसे बालकका प्यार करना चाहिए, जिसमें वह इतना ढीठ न हो जाय कि बिलकुल डरे ही न वह माता ही नहीं जिससे बच्चे न डरें। जब बच्चा अच्छी तरह बोलने लग जाय, तब बड़ी सावधानीसे उसे शिक्षा देनी चाहिए। उसके सामने किसीको भी अंट-संट बातें न बकने देना चाहिए। आजकल लोग बोलनेवाले बच्चोंको शिक्षा देना तो दूर रहा, ऐसी बातें करते हैं, जिनसे उनके दिमागमें द्वेष-पूर्ण व्यर्थकी बातें जिन्दगी भरके लिए भर जाती हैं। जैसे, किसी बच्चेसे यह कहना कि "लल्लूने अकेले ही मिठाई खाली, तुम्हें नहीं मिली।" जरा सोचनेकी बात है कि इस बातका प्रभाव अबोध बालकपर क्या पड़ सकता है। यदि उक्त बात न कहकर उससे यह कहा जाय कि लल्लू तुम्हें प्यार करता है इसलिए तुम उससे कभी झगड़ा न किया करो, तो उसे प्रेमकी शिक्षा मिल सकती है और उसके दिमागमें कूड़ा-करकट नहीं भर सकता।

बच्चोंको निर्भीक बनाना चाहिए। भूत, प्रेत, गोगा आदिका

भय दिखलाकर उन्हें डरपोक बनाना अच्छा नहीं है। यदि बच्चे रोने लगें तो उन्हें भय दिखलाकर चुप करानेकी चेष्टा करना बहुत ही बुरा है। चुप करानेका सहज उपाय यह है कि पहले उनके रोनेका कारण जाननेकी चेष्टा करनी चाहिए और फिर उसके अनुसार काम करना चहिए। यदि रोनेका कारण मालूम न हो तो कोई प्रसन्न करनेकी बात कहकर या कोई अच्छी चीज दिखला कर उनके स्वभावको दूसरी ओर फेर देना चाहिए। इस प्रकार बच्चे बड़ी आसानीसे चुप हो जाते हैं, भय दिखलानेकी जरूरत ही नहीं पड़ती।

——

गहने इत्यादि पहनाकर बालकोंको आदत खराब करना उचित नहीं है। उन्हें पहलेहीसे ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिससे स्वभाविक ही वे आभूषणोंसे घृणा करें। गहनोंसे कोन-कौनसी हानि होती है यह नीचे लिखा जाता है:—

१—भारतवर्षमें गरीबी छायी हुई है। चारो ओर अन्नके लाले पड़े हुए हैं। ऐसी दशामें गहने पहनाना बच्चोंके जीवनको खतरेमें डालना है। कितने ही नर-पिशाच गहनेकी लालचसे बच्चोंको जान-से मार डालते हैं। वे बच्चोंकी जान इसलिए ले लेते हैं कि जिसमें उनकी चोरी किसीको मालूम न हो। एक बार तो यहाँतक देखनेमें आया था कि सिर्फ दो-तीन रुपये मूल्यकी रकमके लिए एक बच्चे का गला टीप दिया गया था। कहाँतक कहा जाय ऐसी-ऐसी

हृदय-द्रावक घटनायें तो रात-दिन प्रत्येक मनुष्यके सुनने में आती हैं।

२—गहना पहनानेसे जो माल घिसा जाता है, उसका तो नुकसान होता ही है, साथ ही लगी हुई रकमके सूदका भी नुकसान होता है। यदि वही धन बचाकर धर्म-कार्यमें लगाया जाय, तो कितना हित हो सकता है। शास्त्रकारोंने कहा है कि सन्तानकी वृद्धि अपने माता-पिताके धर्मसे ही होती है। इसलिए उक्त प्रकारसे काम करना बच्चेके लिए सर्वथा लाभदायक हो सकता है।

३—जो लड़के आभूषण पहने रहते हैं, उनकी हर समय माता-पिताको रखवाली करनी पड़ती है। वे स्वतन्त्रतापूर्वक कहीं जाने-आने नहीं पाते। इस रुकावटका उनके स्वास्थ्यपर बुरा प्रभाव पड़ता है। जब वे घूमने-फिरने और खेलने-कूदने ही न पावेंगे, तब उनका हाजमा कैसे ठीक रह सकता है? दौड़ने-धूपने और खेलनेसे ही बच्चोंकी पाचन-क्रिया दुरुस्त रहती है; इसलिए गहने पहनाकर उन्हें कैद कर रखना उचित नहीं है।

४—गहनोंसे बच्चोंका अंग-प्रत्यंग जकड़ासा रहता है। इसलिए सुगमतापूर्वक उनके प्रत्येक अंगका विकास नहीं हो पाता। परिणाम यह होता है कि उनके अंग-प्रत्यंग सुडौल नहीं होते और कितने अंग आजन्मके लिए निर्बल हो जाते हैं। यद्यपि इस निर्बलताको सब लोग नहीं समझ सकते; तथापि जो लोग गम्भीर विचारके हैं, उनसे यह बात किसी भी दशामें छिपी नहीं रह सकती।

५—गहनोंसे बच्चोंकी कोमल रक्त-वहिनी नसोंपर दबाव पड़नेके कारण उनके शरीर-विकासमें बहुत बड़ी बाधा पड़ती है। यद्यपि गहनोंका दबाव बहुत हल्का होता है; किन्तु बच्चोंके लिए वही बहुत हो जाता है।

दूध पीनेवाले बालकोंको सुश्रुतजीने नीचे लिखा घी बनाकर देनेके लिए आदेश किया है। यह घी बहुत ही गुणकारी और बल-बर्द्धक है।

सफेद सरसो, बच, दुद्धी, चिरचिरी, शतावरि, सखिन, ब्राह्मी, पीपल, हल्दी, कूट और सेंधा नमक इन सब औषधियोंको घीमें पकाकर छान डाले और थोड़ा-थोड़ा वही घी प्रतिदिन चटाया करे।

जब बालक दूध पीता हो और मजेमें अन्न भी खाने लग जाय, तब माताको चाहिए कि वह धीरे-धीरे कुछ दिनोंमें स्तनका पीना छुड़ा दे और मुलहठी, बच, पीपल, चीता, त्रिफलाको घीमें पकाकर खिलावे।

छोटे बालकोंको अनार आदि गुणकारी फलोंका रस निकाल-कर पिला देना बड़ा ही लाभदायक है। इससे बच्चोंके शरीरमें रक्त-वृद्धि होती है और उनकी स्वस्थता बनी रहती है। थोड़ा-बहुत

प्रतिदिन फलोंका सेवन करना प्रत्येक मनुष्यके लिए बड़ा ही हित-कर है। यह स्वात्त्विक आहार है। फलोंके सेवनमें आयु बढ़ती है, शरीर स्वस्थ्य रहता है, चित्त प्रसन्न रहता है और मस्तिष्ककी शक्ति बढ़ती है। हमारे पूर्वज केवल फलाहार करके यथेष्ठ शारीरिक और मानसिक उन्नति करते थे।

वास्तवमें फलोंका आहार मनुष्यके लिए बड़ा ही उपयोगी है। फलोंके आहारसे कोष्ठ-विकार कभी हो ही नहीं सकता। रोगी, दुर्बल और वृद्ध मनुष्यके लिए अथवा गर्भिणी स्त्री और छोटे बालकोंके लिए फलोंका सेवन करना बहुत ही आवश्यक है। इसका सेवन करनेसे परिपाक-शक्तिकी वृद्धि होती है।

——

यदि किसी भी कारणसे पाकस्थलीमें उत्तेजना पैदा हो जानेके कारण वमन होती हो तो अनार, नीबू या थोड़े सेवके रसको निकालकर पान करनेसे तत्काल उसकी शान्ति हो जाती है। गर्मीके दिनोंमें सन्तरेका सेवन करना अत्यन्त लाभदायक है। इसीसे शास्त्रकारोंने बच्चोंको जोकि फल खा नहीं सकते, रस निकालकर पिलानेकी विशेष रूपसे अनुमति दी है।

——

छोटे बच्चोंको नींद बहुत आती है। ज्यों-ज्यों उनकी अवस्था बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों उनकी नींद घटती जाती है। बच्चोंको कच्ची नींदमें कभी न जगाना चाहिए। इससे उन्हें बहुत कष्ट होता

और वे रोते ही रहते हैं। कुछ अनुभवी विद्वानोंका मत है कि निद्रा-कालमें ही बालकोंकी वृद्धि होती है, अतः सोये हुए बालककी नींदमें विघ्न डालनेसे उसकी बृद्धिपर गहरा धक्का पहुँचता है।

जब बच्चेकी अवस्था चार सालकी हो जाय, तब उसे इस बातकी अच्छी तरहसे शिक्षा दे देनी चाहिए कि दाँतोंको साफ रखनेसे कोई बीमारी नहीं पैदा होती। बच्चोंके दाँतोंकी सफाईपर विशेष ध्यान रखना चाहिए। बहुतसी माताएँ यह समझती हैं कि दूधके दाँतोंकी सफाई करना जरूरी नहीं है; किन्तु यह खयाल ठीक नहीं। दूधके दाँतोंकी सफाई न रखनेसे उनमें रोग पैदा हो जाता है और नये उगनेवाले दाँतोंको भी वह रोगी बना देता है। इसलिये छोटे बच्चोंके दाँत भी प्रतिदिन बड़ी कोमलताके साथ धोकर मुलायम कपड़ेसे पोंछ देना चाहिए। इसकी आदत बच्चोंको पड़ जानी चाहिए, जिसमें वे अपनेसे अपने दाँत साफ किया करें।

बच्चोंका स्वभाव बड़ा ही अनुकरणप्रिय होता है। माताको यह कभी न समझना चाहिए कि यह तो अबोध बालक है, अभी क्या समझ सकता है। अबोध बच्चे माताके या पासमें रहनेवाले अन्य लोगोंके प्रत्येक कामको बड़े गौरसे सममझनेकी चेष्टा किया करते हैं। इसलिये बच्चोंके सामने कोई भी बुरा काम या बुरी बात कभी न करनी चाहिए।

अच्छी आदतें डालनेके लिए बुद्धिमती माताको नीचे लिखी बातोंपर विशेष रूपसे ध्यान रखना चाहिए।

१—बुरी आदतवाले अथवा गन्दगीसे रहनेवाले बच्चोंके साथ बालकको न रहने दे।

२—दयाकी शिक्षा दे और जीव मात्रपर दया करनेका रहस्य अच्छी तरहसे बालकको समझावे।

३—नियमित रूपसे कार्य करावे, यानी तड़के ही मलत्याग कराना, आँख मुँहको अच्छी तरहसे धोकर साफ करना, ठीक समयपर मल-मलकर स्नान करना, उचित समयपर भोजन-शयन करना आदि। इन बातोंकी ओर यदि पहलेहीसे ध्यान नहीं दिया जाता तो बच्चे आलसी हो जाते हैं; कभी तो वे सबेरे ही शौच हो आते हैं और कभी दोपहरतक शौच ही नहीं होते; कभी स्नान करते हैं और कभी भूल जाते या जान-बूझकर आलस्य-वश नहीं करते; यदि स्नान करते भी हैं तो स्नानकी तरह नहीं; वे समझते हैं कि शरीरका भिगो लेना ही स्नान करना है। माताको चाहिए वह अपने बालकको यह समझा दे कि केवल शरीर भिगोनेका नाम स्नान नहीं है। ऐसे स्नानसे कोई फायदा नहीं होता। शरीरके सब अंगोंको अच्छी तरहसे रगड़-रगड़कर मैल छुड़ा देना चाहिए इस तरह स्नान करनेसे शरीरमें ताकत आती है और कोई रोग नहीं होता। जो लड़के मलकर नहीं नहाते, उनका शरीर बदबू करने लगता है, और लोग ऐसे लड़कोंसे घृणा करते हैं। कोई

अपने पास बैठने नहीं देता—आदि बातें बालकको समझा देनो चाहिएँ।

बालकको जैसी शिक्षा दे, उसीके अनुसार माताको भी काम करना चाहिए। यदि बालककी रुचि पढ़ने-लिखनेकी ओर लगानेकी अभिलाषा हो तो माताको उचित है कि वह गृहस्थीके कामोंसे छुट्टी पाकर स्वयं मनोयोगपूर्वक अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ा करे। यदि बालकको स्वच्छतासे रखना चाहे तो स्वयं भी स्वच्छतासे रहे। कहनेका उतना असर बालकपर नहीं पड़ सकता, जितना कि करनेका। गन्दगीसे रहनेवाली माता यदि अपने बच्चेको सफाई से रहनेकी शिक्षा दे और चाहे कि बच्चा सफाईसे रहा करे तो यह उसकी मूर्खता है। उस बातकी शिक्षाका प्रभाव बालकपर कुछ नहीं पड़ सकता, जिसे माता स्वयं नहीं करती।

——

सबेरे उठकर ईश-प्रार्थना करनेकी बालकको शिक्षा देनी चाहिए। प्रार्थनाका अभ्यास पड़ जानेसे बालकोंका बड़ा ही उपकार होता है। उसको यह समझाना चाहिए कि प्रार्थना क्या है, वह क्यों की जाती है आदि। माताओंकी जानकारीके लिए यहाँ प्रार्थनाके सम्बन्धमें कुछ लिख देना आवश्यक है। 'ब्रह्मविद्या' एक लेखके आधारपर नीचे कुछ बातें लिखी जा रही हैं:—

किसी वस्तुकी याचना करना या किसी अभावका अनुभव करके उसकी पूर्त्तिके लिए सहायता चाहना ही प्रार्थना है। साधा-

रणतया यह तीन प्रयोजनोंको लेकर उठती है:—

१—केवल संसारी लाभके लिए या स्थूल अभावोंकी पूर्त्तिके अर्थ होती है। जैसे—अन्नादि प्राप्तिके लिए, वस्त्रके लिए, धनके लिए, रोग निवृत्तिके लिए आदि।

२—अन्तःकरणकी शुद्धिके लिए और आध्यात्मिक उन्नतिके अर्थ होती है। जैसे—काम-क्रोध-लोभ-मोह आदिपर जय पानेके लिए। आत्मा क्या है, उसका स्वरूप कैसा है, सृष्टिका असली रहस्य क्या है इत्यादि गूढ़ विषयोंको बुद्धि द्वारा समझने और साक्षात् अनुभव करनेके लिए प्रार्थना होती है।

३—प्रार्थना करनेवाला जगन्नियन्तासे कुछ नहीं चाहता, केवल वह सत्-चित्-आनन्द स्वरूपके ध्यानमें और प्रेममें निरन्तर लीन रहना चाहता है।

उक्त तीनों प्रार्थनाएँ, स्वार्थ, परमार्थ सिद्धिके लिए दो प्रकारकी कही जा सकती हैं। अब यह बात विचारणीय है कि प्रार्थनाका कुछ फल भी प्राप्त होता है या नहीं; या यों कहना चाहिए कि प्रार्थनासे मनोर्थ-सिद्धि होती है या नहीं। इसका उत्तर संक्षेपमें यही दिया जा सकता है कि मनोर्थकी सिद्धि होती भी है और नहीं भी होती। प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि एक मनुष्य धनके लिए प्रार्थना करनेमें तन्मय होता है और अचानक किसी-न-किसी रूपमें उसके घरमें धन-राशि लग जाती है। सार्वजनिक संस्थाओंमें आर्थिक अभाव इतना हो जाता है कि उसके संचालक सब यत्न करके

हारकर यह निश्चयसा कर लेते हैं कि अब संस्था टूट जायगी; फिर ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं, 'हे प्रभो ! इस संस्थाको उबारो।' अनायास ही कहीं-न-कहींसे सहायता मिल जाती है।

साथ ही यह भी देखा गया है कि कितने ही लोग प्रार्थना करते-करते अपने शरीरको सुखा डालते हैं, पर फल कुछ भी प्राप्त नहीं होता—बाहरी जगतमें दिखलायी नहीं पड़ता, आन्तरिक जगत्में कुछ फल प्राप्त होता हो तो नहीं कह सकते। गोदसे प्यारा शिशु उठा जा रहा है, प्रार्थना निष्फल जाती है।

इसलिए यह विचारना आवश्यक है कि किस अवस्थामें प्रार्थना सफल होती है और किसमें निष्फल। सफलता और असफलता प्रार्थीकी अवस्थापर निर्भर है। पुण्य-कर्मी, प्रबल धारणा-शक्ति-सम्पन्न और निष्काम पुरुषकी प्रार्थना कभी निष्फल नहीं जाती। आपत्तिकालमें सकाम प्रार्थना करनेवाले पापी और कुकर्मी मनुष्यकी प्रार्थना सदा निष्फल जाती है। इसके अतिरिक्त जो मनुष्य सृष्टिके नियमोंको, उसके तत्त्वों और अधिष्ठातृ देवोंको जानते हैं, वे बिना प्रार्थनाके भी अपने प्रयोजनको सिद्ध कर सकते हैं।

प्रार्थनामें इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि ईश्वर, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है। वह प्रत्येक प्राणीके भले-बुरे कामोंको सदा देखता है। हजारों यत्न करके भी कोई मनुष्य अपने बुरे कामोंको ईश्वरसे नहीं छिपा सकता।

सन्तान-विज्ञान

ईश्वरका ध्यान नियमित रूपसे करनेवाले मनुष्यके हृदयमें शान्ति आती है, चित्त प्रसन्न रहता है, आत्मिक शक्ति बढ़ती है, हृदयमें पवित्रता आती है, बुराइयाँ दूर होती हैं, दुःख-सुखमें विषाद और हर्ष नहीं होता, बुद्धिमें शक्ति पैदा होती है और संसार में यश फैलता है ।

इसीसे बालकोंको प्रार्थना करनेकी शिक्षा देना बहुत ही आवश्यक है ।

बाल्य-विज्ञान

बाल्य-विज्ञान क्या है ?

यह तो सभी जानते हैं कि बच्चों और जवानोंमें बड़ा अन्तर होता है। इसमें सन्देह नहीं कि जिन वस्तुओंसे जवानका शरीर बनता है, उन्हींसे बालकका भी। उसके भी माँस, हड्डी, त्वचा तथा रक्त होता है, जैसा कि हमारे। उसके अंग-प्रत्यंगोंकी गठन वैसी ही होती है, जैसी कि युवा पुरुष की। पर इस एक बातमें समता होनेके सिवा शेष सब बातों में, उन दोनोंमें बड़ा अन्तर होता है। बच्चेका शरीर छोटा, कोमल और निर्बल होता है; किन्तु जवानका शरीर बड़ा, कड़ा, और सबल होता है। कच्ची और पक्की अवस्थाओंमें जो भेद होते हैं, वे ही साधारणतः उन दोनोंमें पाये जाते हैं।

बच्चे और जवानके मन और मस्तिष्कमें भी बड़ा अन्तर होता है। बच्चेके मनमें उतनी शक्ति कदापि नहीं हो सकती, जितनी जवानके मनमें होती है। वस्तुओंको ग्रहण करना, किसी बातमें ध्यान लगाना, चित्तको एकाग्र करना तथा स्मरण-शक्ति इत्यादि मानसिक शक्तियाँ बच्चोंमें अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था में होती हैं। फिर ज्यों-ज्यों बालक बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों उसके शरीरके

साथ-साथ इन शक्तियोंका भी विकास होता जाता है । इन शक्तियोंके विकासके क्रम तथा समयका निश्चय करना ही बाल्य-विज्ञानका विषय है ।

बाल्य विज्ञानकी उपयोगिता

यह अत्यन्त आवश्यक है कि बच्चोंके माता-पिता तथा शिक्षकोंको उनकी भिन्न-भिन्न मानसिक अवस्थाओंका ज्ञान रहे । जैसे किसी जहाजके कर्णधारके लिए जहाजके सारे कल-पुर्जोंकी अभिज्ञता आवश्यक है, वैसे ही शिक्षकोंके लिए अपने विद्यार्थियों-की मानसिक शक्तियोंका ज्ञान होना आवश्यक है । शिक्षक और हैं क्या, बालक-रूपी जहाजोंके कर्णधार हैं । उनका कर्त्तव्य है कि वे उन सब जहाजोंको, अनेक प्रकारकी विद्यारूपी सामग्रीसे लादकर, संसार-सागरके अनेकानेक भाँवरों, चट्टानों, तथा जोखिमोंसे बचाते हुए शान्ति, सुख और सदाचारके द्वीपपर पहुँचा दें । पर यदि उनमें उन जहाजोंके कील-काँटों, उनकी गमन-शक्ति तथा सागरकी जोखिमोंकी जानकारी नहीं है, तो वे अपने कर्त्तव्यका पालन किस तरह कर सकते हैं ? न-जानें कितने बहुमूल्य जहाज, मूर्ख मल्लाहों-के हाथमें पड़ जानेसे, अपनी यात्राके प्रारम्भमें ही सदैवके लिए सागरके गर्भमें विलीन हो गये । न-जानें कितने घास-फूससे लदे, समुद्रमें इधर-उधर भटकते रहे । बहुतोंके कल-पुर्जोंका ऐसा दुष्प्र-योग किया गया कि वे यात्रा करनेमें बिलकुल बेकाम हो गये ।

सचमुच, वह शिक्षक, जो बालकोंके पूरे ज्ञानके बिना ही उन्हें शिक्षा देता है, उतना ही अपराधी है, जितना कि वह मल्लाह, जो जहाजोंका बिलकुल ज्ञान न रखते हुए भी सारे जहाजकी रक्षाका भार अपने ऊपर लेता है ।

बाल्य-विज्ञानका ज्ञान न होनेसे शिक्षकोंको अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है । हम बहुधा समझ बैठते हैं कि जैसा हमारा दिमाग है, वैसा बच्चोंका भी । इसलिए यदि हम एक बातको एक दफे देखकर समझ सकते हैं, तो बच्चोंको भी उसी प्रकार समझ लेना चाहिए । जैसे हम किसी विषयपर अपना ध्यान गड़ाये घण्टों बैठ सकते हैं, वैसे ही हम समझते हैं कि बच्चे भी कर सकते हैं । पर जब हम वास्तवमें ऐसा नहीं पाते तो बच्चोंको दोष देते हैं और उन्हें डाँटते-डपटते हैं । इस प्रकार हम अपनी भ्रान्त धारणाओंके लिए बच्चोंके साथ व्यर्थ अन्याय करते हैं ।

शिक्षकोंके मनसे बालकोंके सम्बन्धकी ऐसी अनेक भ्रान्त धारणाओंको दूर करने और शिक्षाके मार्गको सरल तथा सरस बनानेके लिए ही बाल्य-विज्ञानकी सृष्टि हुई है । वैसे तो यह मनो-विज्ञानका ही एक विभाग है, पर मनोविज्ञानका फेरा इतना विस्तृत है कि उसके विद्वानोंका ध्यान इसकी ओर बहुत कम गया और यही कारण है कि अभीतक इस विषयने पूरी उन्नति नहीं की । पर शिक्षकोंके लिए इसकी उपयोगिता देखकर शिक्षा-शास्त्रके आचार्योंने इसकी ओर ध्यान दिया और इस सम्बन्धमें उन्होंने

जो अनुसन्धान किये, वे बहुत ही उपयोगी ठहरे। तब तो और लोगोंका ध्यान भी इस ओर गया और मनोविज्ञानके पण्डितोंने भी इसपर लेखनी उठाई। यूरोपकी भाषाओंमें आज दिन इस विषयकी अनेक उत्तमोत्तम पुस्तकें हैं। इसे अंग्रेजी में (Paidology) भी कहते हैं।

मानसिक क्रियाओंके जाननेकी विधि

जिस प्रकार मनुष्योंकी मानसिक क्रियाएं मनोविज्ञानका विषय है, उसी प्रकार बालकोंकी मानसिक क्रियाएं बाल्य-विज्ञानका विषय है। अब प्रश्न यह है कि ये क्रियाएँ किस प्रकार जानी जाती हैं? वास्तवमें एक व्यक्तिके लिए दूसरेकी मानसिक क्रियाओंका जानना असम्भव है। पर अपनी-अपनी मानसिक क्रियाओंको, यत्न करने-पर हम जान सकते हैं कि जिस समय हमारे मनमें किसी प्रकारकी क्रियाका उदय होता है, और जबतक उसका अवसान नहीं होता, तबतक यदि हम उसके निरीक्षण करनेका प्रयत्न करें, तो हम उसे जाननेमें कदापि सफल नहीं हो सकते। कारण, जैसे ही हमारा ध्यान उस क्रियाका निरीक्षण करनेकी ओर जायगा, सौमें निन्नानबे फी सैकड़ा वह अवश्य बन्द हो जायगी। मन एक साथ दो काम नहीं करता। जबतक उसमें किसी विशेष प्रकारकी क्रिया जारी है, तबतक वह उसका निरीक्षण नहीं कर सकता। निरीक्षणकी ओर उसके लगते ही उसकी क्रिया चली जाती है। अतएव मानसिक क्रियाओंके निरीक्षणका एकमात्र उपाय यही है कि मनमें जबतक

किसी प्रकारकी क्रिया हो रही हो, तबतक उसे निरीक्षण करनेका उपाय न करे; पर जैसे ही उसका अवसान हो, वैसे ही उसपर विचार करना आरम्भ कर दे और यह सोचे कि वह किस प्रकारकी थी। इसी प्रकार मनो-विज्ञान-सम्बन्धी अनेक बातें प्रकट हुई हैं और इस विधिको अन्तरदर्शन (Introopection) कहते हैं।

अन्तर्दर्शनसे हम अपनी मानसिक क्रियाएँ भले ही जान लें, पर उनके द्वारा बच्चेकी मानसिक क्रियाओंका जानना असम्भव है। हाँ, यदि कोई बालक अपनी मनोवृत्तियों तथा क्रियाओंका निरीक्षण करके बाल्य-विज्ञानपर एक पुस्तक लिखे, तो ऐसा हो सकता है। पर अभीतक ऐसे बालकोंकी शृष्टि नहीं हुई, और न भविष्यमें होनेकी आशा है। तो फिर क्या किया जाय? बस, एक उपाय है। बालकोंका हर समय निरीक्षण किया जाय। देखा जाय कि वे भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें किस प्रकार खाते-पीते, उठते-बैठते, पढ़ते-लिखते, तथा सोचते-विचारते हैं। उनको जब क्रोध आता है, तब वे क्या करते हैं? किसी बातके जानने या स्मरण करनेमें उन्हें क्या करना पड़ता है, इत्यादि बातें ध्यान-पूर्वक देखी जायँ। इस प्रकार जब हम बालकोंकी भिन्न-भिन्न अवस्थाओंमें उनके भिन्न-भिन्न कार्योंके ढंगोंको जान लें, तब हम उनकी अपने कार्योंसे तुलना करके यह जान सकते हैं कि किस प्रकारकी मानसिक क्रियाओंके फल-स्वरूप हैं। पर इस बातका सदैव ध्यान रखना चाहिए कि ऐसा करते समय हम बालकोंकी मानसिक क्रियाओंको ठीक अपने

मनकी क्रियाओंके सदृश न समझ बैठें। यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि बालकोंकी मानसिक क्रियाएँ होती उसी प्रकार की हैं, जैसी कि जवानोंकी, पर बिलकुल वैसी ही नहीं होती। बाल्य-विज्ञानके अन्तर्गत सभी बातें प्रायः इसी प्रकार जानी गयी हैं।

बाल्य-विज्ञानकी अवधि

बाल्य-विज्ञान किस अवस्थातकके बालकोंसे सम्बन्ध रखता है, यह वर्षोंकी संख्यामें बतलाना कठिन है। परिपक्व युवावस्थामें पदार्पण करनेके पहले प्रत्येक बच्चेमें जो शारीरिक तथा मानसिक परिवर्त्तन हुआ करते हैं, उनका अनुसन्धान करना बाल्य-विज्ञानके अन्तर्गत है। जबतक कोई व्यक्ति लड़का या लड़की है, तभीतक वह बाल्य-विज्ञानका विषय है; युवा युवती होते ही वह उसकी सीमासे बाहर हो जाता है। साधारण तौरसे १६ वर्षकी अवस्था-तक बाल्य-काल समझना चाहिए। १६ वर्षसे लेकर २४ वर्षतक (कम या अधिक) किशोरावस्था होती है।*

बाल्य-विज्ञानका खास सम्बन्ध यों तो बालकके प्रत्येक शिक्षक का है, पर माताका सम्बन्ध सबसे अधिक है। क्योंकि माताका स्थान शिक्षकोंमें सबसे ऊँचा और पहला है। इसलिए माताका कर्त्तव्य है कि वह बच्चेके सुधारके लिए सदा उसकी मानसिक क्रियाओंपर लक्ष्य रखे और उसे समझनेकी चेष्टा करे। जब

---

* 'माधुरी' की फाइलसे उद्धृत।

बालक थोड़ा-थोड़ा बोलने लग जाय, तब उसके सामने उत्तमोत्तम कथा-कहानियोंका कहना प्रारम्भ कर देना उचित है। यह बात पहले लिखी जा चुकी है कि समझदार बच्चोंकी तो बात ही क्या, अबोध बालकके सामने भी गन्दी बात जवानसे नहीं निकालनी चाहिए। जो माता पहले तो बालकके सामने गन्दे शब्द निकालकर उसे उन गन्दे शब्दोंको याद करा देती है और पीछे जब वह बालक उन शब्दोंका प्रयोग करने लगता है, तब उसपर जोरोंसे बिगड़ती है, वह माता बड़ी भूल करती है। इससे एक तो बालककी आदत बिगड़ जाती है और दूसरे डाँट-फटकारसे बच्चा इस असमंजसमें पड़ जाता है कि दूसरोंके मुखसे सुनी हुई कौनसी बात ग्रहण करनी चाहिए और कौनसी नहीं। इस असमंजसका प्रभाव कोमल-मति बालकपर बहुत ही बुरा पड़ता है।

——o——

उत्तम सन्तानपैदा करनेके लिए व्यायामकी आवश्यकता

जीवनको सुखी और स्वस्थ रखनेके लिए स्त्री-पुरुष दोनोंको व्यायाम अवश्य करना चाहिए। व्यायाम किये बिना शरीर स्वस्थ नहीं रह सकता और शरीर अस्वस्थ रहनेसे पहले तो सन्तानोत्पत्ति होती ही नहीं और यदि होती भी है तो रुग्ण और अल्पायु। उत्तम सन्तान पैदा करनेकी इच्छा रखनेवालोंके लिए व्यायाम एक बड़ी महत्त्वपूर्ण और प्रयोजनीय वस्तु है। दुःखकी बात है कि हमारे देशमें स्त्रियोंके व्यायामकी प्रथा बिलकुल ही लुप्त हो गयी है। यही कारण है कि हमारी गृह-देवियाँ अपनी रक्षा स्वयं न करके दूसरोंके आश्रित रहती हैं। भारतका प्राचीन इतिहास इस बातका साक्षी है कि पहले भारतवर्षकी देवियाँ कितनी साहसी और निर्भीक थीं। महाराज दशरथ हार गये होते, यदि महारानी कैकेयी अर्द्धांगिनी-धर्मका पालन करते हुए उनके रथका सम्भार न कर सकी होतीं, झाँसीकी महारानी लक्ष्मीबाईके वीरत्त्वसे सारा संसार भलीभाँति परिचित है। किन्तु क्या आज एक भी स्त्री हमारे देशमें ऐसी है जो आपत्तिकालमें कैकेयीकी भाँति अपने पतिकी सहायता कर सके? क्या ऐसी भी कोई स्त्री है जो देशकी स्वतंत्रताके लिए महारानी लक्ष्मीबाईकी तरह वीरतापूर्वक शत्रुओंका मुकाबला कर

सके ? सम्भवतः यही उत्तर मिलेगा कि,—नहीं।

यदि गम्भीरताके साथ विचार किया जाय कि हमारी गृह-देवियाँ इस प्रकार पौरुषहीन क्यों हो गयीं, तो पता चलेगा कि उनमें न तो विद्या है न शक्ति ही है। यही कारण है कि आज विधर्मी उनपर दिन-रात आक्रमण कर रहे हैं, उनके सबसे प्यारे सतीत्व-धनका अपहरण कर रहे हैं और वे बेचारी निस्सहाय होकर सब कुछ सहन कर रही हैं। यदि उनमें अपनी रक्षा करनेकी बुद्धि होती, यदि उनके शरीरमें धर्मपर आक्रमण करनेवालेका सामना करनेके लिए बल होता तो किसकी हिम्मत पड़ती जो उनकी ओर आँख उठानेका साहस करता ? किन्तु यह बात तब तक स्वप्नवत् ही रहेगी, जबतक स्त्रियाँ व्यायामका महत्त्व न समझ जायँगी और व्यायाम करके अपने आत्म-रक्षार्थ शरीर-बल न बढ़ावेंगी।

इसके लिए पुरुषोंको चाहिए वे व्यायामका महत्त्व अपने घरकी स्त्रियोंको समझावें और उसपर उन्हें आरूढ़ करें। पुरुष-प्रोत्साहनके बिना स्त्रियोंका इधर ध्यान देना असम्भव है। कारण यह कि इस प्रथाका लोप हो जानेके कारण उनमें संकोचकी मात्रा इतनी अधिक हो गयी है कि वे व्यायाम कर ही नहीं सकतीं। अधिकांश स्त्रियाँ तो व्यायामका नाम सुनते ही दिल्लगी समझ बैठेंगी और सोचेंगी, "भला स्त्रियाँ कसरत करेंगी, कैसा अन्धेर है! अब घोर कलियुग आ गया, इसीसे ऐसी उल्टी बातें लोग कहने लगे हैं।" जिस बात

की या कामकी मनुष्यकी आदत नहीं रहती, उसके करनेमें उसे स्वाभाविक ही बड़ा अनुकुस और संकोच मालूम होता है।

स्त्रियोंके व्यायामकी बात सुनकर कितने ही लोग हँसेंगे और कहेंगे कि क्या दंड-बैठक करना स्त्रियोंको शोभा देगा? असलमें तो दंड-बैठक करनेके लिए कहा ही नहीं जा रहा है और यदि कहा भी जाय तथा वे इसे करने भी लगें तो इसमें कुशोभाकी कौनसी बात है। इसपर कुछ लोग यह कह सकते हैं कि जब दंड-बैठकके लिए नहीं कहा जा रहा है, तब वे व्यायाम ही कौनसा करेंगी? ऐसा कहनेवालोंको यब मालूम ही नहीं है कि व्यायाम किसे कहते हैं और वह कितने प्रकारका होता है।

व्यायामका अर्थ—"नाना प्रकारके अंग-संचालन द्वारा प्रत्येक अंगपर जोर डालकर परिश्रम करना और उन्हें सुदृढ़ बनाना। यह व्यायाम दो तरहका होता है। एक नियमित व्यायाम और दूसरा अनियमित व्यायाम। व्यायामके नियमोंको ध्यानमें रखकर जो व्यायाम किया जाता है उसे नियमित व्यायाम कहते हैं और उसके विपरीत जो व्यायाम होता है, उसे अनियमित व्यायाम कहते हैं। लोहार हथौड़ा या घन लेकर लोहा पीटनेमें बहुत अधिक परिश्रम करता है, पर यह उसका अनियमित व्यायाम है। इस व्यायामसे उसका शरीर स्वस्थ और बलवान नहीं होता। पहलवान दंड-बैठक करके मुद्गर फेरकर तथा कुस्ती लड़कर परिश्रम करता है; यह उसका नियमित व्यायाम है। इससे शरीर सुडौल होता है,

और अंग-प्रत्यंग बलवान होता है। इस विभिन्न परिश्रमके दो कारण प्रधान हैं। एक तो यह कि अनियमित व्यायाममें प्रतिदिनका नियम नहीं रहता, कभी परिश्रम होता है और कभी नहीं होता तथा कभी बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है और कभी बिलकुल ही कम ; किन्तु नियमित व्यायाम नियम-पूर्वक प्रतिदिन होता है तथा परिश्रममें बहुत अधिक अन्तर नहीं पड़ता उसके किंचित् न्यूनाधिक होनेका बात दूसरी है। दूसरा कारण परिमाणकी विपरीतताका यह है कि अनियमित व्यायाममें परिश्रम करनेवालेका ध्यान बल-संचयनकी ओर नहीं रहता बल्कि काम पूरा करनेकी ओर रहता है ; "गले पड़ी ढोल बजाये सिद्ध" इस कहावतके अनुसार उसे तो मर-जीकर काम पूरा करनेकी धुन रहती है ; किन्तु नियमित व्यायाम करनेवाला मनोयोगपूर्वक बल संचयनकी ओर ही ध्यान रखता है ; उसका परिश्रम करनेका एक मात्र उद्देश्य ही होता है, बल-संचय करना। यही कारण है कि दोनों प्रकारके व्यायामका एक दूसरेसे विपरीत परिणाम होता है। क्योंकि मनोयोग ही तो प्रधान वस्तु है ; इसीके द्वारा तो मनुष्य शक्तिको खींचकर अपने शरीरमें भरता और असाध्यसे असाध्य कामोंको साध्यकर दिखलाता है। जिस काममें बल-संचयकी ओर लक्ष्य ही नहीं है, काम पूरा करनेकी ओर मनका झुकाव है, उसके करनेसे बलका संचय क्योंकर हो सकता है, उससे तो बस काम ही पूरा हो सकता है ; क्योंकि उसीपर मनका झुकाव रहता है।

इस मनोयोगकी कितनी बड़ी महिमा है तथा इसमें कितनी शक्ति है, इसका उल्लेख पीछे विस्तारपूर्वक किया जा चुका है; अत: अब यहाँ उसकी पुनरावृत्ति करनेकी आवश्यकता नहीं है।

व्यायाम करते समय इच्छा-शक्तिको अपने अंगोंकी ओर लगाना चाहिए। ऐसी धारणा रखनी चाहिए कि हमारे शरीरमें बलका संचार हो रहा है। इच्छा-रहित व्यायाम लाभकारी नहीं होता, यही कारण है कि बहुतसे लोगोंको व्यायामके लाभोंसे वंचित रह जाना पड़ता है। जिस अंगको जितना मजबूत बनाना हो, व्यायाम करते समय उस अंगमें उतनी ही अधिक इच्छा शक्ति लगानी चाहिए।

दस वर्षकी अवस्थातक किसी प्रकारका व्यायाम करना उचित नहीं है; इस अवस्थातक जो स्वाभाविक व्यायाम दौड़ने-धूपने और खेलने-कूदनेमें हो जाता है, वही यथेष्ट है। ग्यारहवें सालसे सोलह वर्षकी अवस्थातक स्वच्छ वायु-सेवन और दौड़नेकी कसरत की ओर ध्यान देना चाहिए। इस अवस्थातक दंड-बैठक करना अच्छा नहीं है। क्योंकि सोलह वर्षतक शरीरकी नस नाड़ियाँ और हड्डियाँ बहुत कोमल रहती हैं; अन्य प्रकारके व्यायाम (जैसे, दंड-बैठक आदि) से उन्हें रूढ़ नहीं बनाना चाहिए। सोलहके बाद दंड-बैठक द्वारा कसरत करना उत्तम है। यह व्यायाम विधि पुरुषोंके लिए है। स्त्रियोंके लिए आगे चलकर बतलाया जायगा। दंड-बैठक ५० से १००—१२५ तक करना चाहिए।

यह संख्या पूर्ण युवकके लिए है। कुश्ती लड़ना सबसे उत्तम व्यायाम है; क्योंकि इससे हड्डी-हड्डीपर यथेष्ट और उचित जोर पड़ता है। वृद्धावस्थामें दंड-बैठकका व्यायाम नहीं करना चाहिए। इस अवस्थामें अंग-प्रत्यंग ढीले पड़ जाते हैं, अतः व्यायामसे उनको हानि पहुँचती है। हाँ अपनी शक्तिके अनुसार प्रातः-संध्या टहलकर परिश्रम कर देना वृद्धोंकी स्वस्थताके लिए भी अत्यन्तावश्यक है।

प्रारम्भ करते ही अधिक व्यायाम नहीं करना चाहिए। इससे ज्वर उत्पन्न हो जानेकी बहुत बड़ी सम्भावना बनी रहती है। व्यायाम थोड़ेसे शुरू करके धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। यह नियम स्त्री-पुरुष दोनोंको ध्यानमें रखना चाहिए।

तेलकी मालिश भी एक प्रकारका व्यायाम है। इससे खूनमें गर्मी पैदा होती है। कड़वे तेलकी मालिश सर्वोत्तम है। इसकी रगड़से शरीरके छिद्रोंका मल निकल जाता है और चमड़ेपर रहने-वाले कीड़े मर जाते हैं।

व्यायाम करनेका सबसे अच्छा समय प्रातःकाल है। शौचादि से निवृत्त होकर व्यायाम करना चाहिए। कुछ लोग स्नानके पहले व्यायाम करते हैं और कितने ही लोग स्नानके बाद। स्नान करनेके बाद व्यायाम करना अधिक उत्तम है। यदि व्यायामके बाद स्नान करना हो तो कमसे कम एक घण्टा ठहकर स्नान करना उचित है। साधारण मनुष्यके लिए आधा घण्टा व्यायाम

करना जरूरी है। भोजन करनेके बाद किसी प्रकारका व्यायाम नहीं करना चाहिए।

इतना लिख चुकनेके बाद अब हम स्त्रियोंके व्यायामपर विचार करना चाहते हैं। स्त्रियोंको किस प्रकारका व्यायाम करना चाहिए। इसपर विचार करना आवश्यक है। स्त्रियोंका स्वाभाविक व्यायाम है घरका काम-काज करना, जैसे चक्की चलाना, कूटना आदि। इससे बहुत-कुछ कसरत स्त्रियोंकी हो जाती है। इसी कसरतके कारण देहातकी स्त्रियाँ हृष्ट-पुष्ट और निरोग रहती हैं तथा शहरमें रहनेवाली स्त्रियाँ यह कसरत न करनेके कारण निर्बल और रुग्णा रहती हैं।

किन्तु इतना ही व्यायाम स्त्रियोंकी स्वस्थताके लिए यथेष्ट नहीं है। उन्हें उचित है कि वे धन्धेमें होनेवाले व्यायामके अतिरिक्त थोड़ी देरतक नियमित रूपसे केवल शरीर स्वस्थ रहनेके उद्देश्यसे व्यायाम किया करें।

स्त्रियोंका व्यायाम पुरुषोंके व्यायामसे भिन्न होना चाहिए। भिन्न क्यों होना चाहिए, विस्तार-भयसे इसपर यहाँ विचार नहीं किया जायगा; पर इतना तो अवश्य कहा जायगा कि दोनोंके कार्योंमें विभिन्नता होनेके कारण व्यायाम-प्रणालीमें विभिन्नता रखना आवश्यक है। हमारी राय है कि स्त्रियाँ पुरुषोंकी भाँति दंड-बैठक न करके तथा मुद्गर न फेरकर यदि निम्नलिखित तरीके-से व्यायाम करें, तो उनकी तन्दुरुस्तीके लिए बड़ा ही लाभ हो सकता है:—

जिस प्रकार बालकोंको दस वर्षकी अवस्थातक व्यायाम करनेके लिए इस प्रकरणमें बतलाया गया है, उसी प्रकार बालिकाओंको भी इस अवस्थातक वही व्यायाम करना चाहिए। हाँ, बालकोंकी अपेक्षा बालिकाओंका दौड़ना-धूपना कम अवश्य होना चाहिए। कारण यह कि उन्हें और काम भी सीखना रहता है। बालकोंको शिक्षा ग्रहण करनेके लिए जितना समय मिलता है उतना बालिकाओंको नहीं; इसलिए उन्हें अधिक समय व्यायामकी ओर लगाकर और कामोंसे अनभिज्ञ नहीं रहना चाहिए। ग्यारहकी अवस्थासे नीचेके व्यायामोंको शुरू करना चाहिए।

क—सबेरे शौचादिसे निवृत्त होकर स्त्रियोंको किसी एकान्त और हवादार कमरेमें नियमित रूपसे व्यायाम करना चाहिए। सीधी खड़ी होकर दोनों हाथ ऊपर उठाओ; इस प्रकार उठाओ, मानो तुम ऊपरकी कोई चीज पकड़नेके लिए प्रयत्न कर रही हो। इस समय दोनों पैर जुड़े रहें। पूरे तनावके साथ दो मिनटतक हाथ ऊपर उठाये खड़ी रहो; बाद धीरे-धीरे कड़ाईके साथ दोनों हाथके पंजोंको कन्धेपर लाओ। फिर बल डालते हुए उन्हें छातीकी सीधमें ले जाओ और समेटकर पंजोंको छातीपर लाओ; पश्चात् दोनों हाथ नीचे गिराओ और तनावके साथ ही पीछेकी ओर ले जाकर सीधमें लाओ। इस प्रकार चार-पाँच बार करनेसे भुजाएँ सुडौल और बलयुक्त हो जाती हैं।

ख—दोनों पैर सटाकर एँड़ियोंको ऊपर उठाओ और पैरोंके

पंजोंपर शरीरका सारा भार लाद दो। पैरोंको खूब तना रक्खो। फिर पंजेसे ही पाँच-सात कदम आगे जाकर पीछे लौट आओ। लेकिन जाने और लौटनेमें पैरोंका तनाव जरा भी कम न होने पावे। दो-तीन बार प्रतिदिन ऐसा करनेसे पैर मजबूत हो जाते हैं और जंघाओंमें चिकनाहट आ जाती है। दो-तीन बारका मतलब यह न समझो कि दिन भरमें दो-तीन बार ऐसा करने लिए कहा जा रहा है, बल्कि व्यायामके समयमें बतलाये क्रमोंसे कई बार करनेके लिए कहनेका तात्पर्य है।

ग—साँस खींचकर छाती जितनी फूल सके उतनी उसे फुलाओ। बाद कुछ देरतक यानी जितनी देरतक साँसको रोक रखनेमें कष्ट न हो, उतनी देरतक रोके रहो और छोड़ दो। इस प्रकार तीन-चार बार करो। इससे छाती चौड़ी हो जाती है। प्रत्येक अंगका व्यायाम करते समय यह धारणा रक्खो कि मेरे अमुक अंगमें शक्ति आ रही है। जैसे, साँस खींचकर छातीकी कसरत करते समय यह सोचो कि सीना चौड़ा और पुष्ट होता जा रहा है; हाथकी कसरत (नं० क) करते समय यह सोचो कि मेरे हाथोंमें खूब ताकत भर रही है; इसी प्रकार अन्यान्य अंगोंके लिए समझो।

घ—सीधी खड़ी हो जाओ और दाहिने हाथका मुट्ठ बाँधकर दाहिनी ओर उसे जमीनतक झुकाओ; इसी प्रकार बायें हाथको भी बायीं ओर झुकाना चाहिए। दस-बारह बार करते जानेसे

कमर पतली, पुष्ट और लचकदार हो जाती है तथा पेटमें चर्बी नहीं बढ़ने पाती ।

ङ—चौरस जमीनपर बैठकर दोनों पैर सामनेकी ओर फैला दो । बाद झुककर दोनों हाथसे पैरके दोनों अंगूठे पकड़ो । थोड़ी देरके बाद छोड़ दो । ऐसा करनेसे पेटमें कोई बीमारी जल्द नहीं पैदा होती । सम्भव है पहले-पहल तुम पैरोंके अँगूठे न पकड़ सको; इसलिए इसे त्याग न दो । अभ्यास करनेसे १५-२० दिनमें ही तुम आसानीसे अँगूठे पकड़ने लग जाओगी । पेटमें दर्द होता हो और यह क्रिया की जाय तो तुरन्त ही पेटकी पीड़ा शान्त हो जाती है ।

च—प्रतिदिन कमसे कम दस-बारह बार गर्दनको चारो ओर फेरना चाहिए । इससे कण्ठमें कोई रोग नहीं होता, आवाज रसीली हो जाती है और गर्दनमें अपने-आप ही सुन्दरता आ जाती है ।

छ—शान्तिके साथ बैठकर हवाकी ओर मुख करके पाँच मिनटतक साँस खींचो और छोड़ो । इसमें इतनी धीरतासे काम लो कि श्वास-प्रश्वासकी आवाज दूसरेको कौन कहे स्वयं तुम्हें भी सुनायी न पड़े और न हृदयपर उसका धक्का लगने पावे । इस क्रियासे फेफड़ा शुद्ध रहता है, अतः शरीरके रक्तमें कोई विकार उत्पन्न ही नहीं हो पाता ।

स्त्रियोंको खूब तड़के उठकर शौच और व्यायामसे निवृत्त हो

जाना चाहिए। गर्भिणी स्त्रियोंको अधिक व्यायाम नहीं करना चाहिए, किन्तु कुछ अवश्य करना चाहिए। इसपर पीछे काफी प्रकाश डाला गया है। गर्भाधान होनेके पन्द्रह दिन पहले व्यायाम घटा देना उचित है और गर्भ धारण कर चुकनेपर एक महीनेतक बड़ी सावधानीसे बहुत कम व्यायाम करना चाहिए। बाद चार महीनेतक बचाकर व्यायाम किया जा सकता है; पाँच महीनेका गर्भ हो जानेपर फिर व्यायाम कम कर देना उत्तम है।
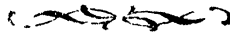
व्यायामसे लाभ

व्यायाम करनेसे स्त्रियोंका स्वास्थ्य कभी बिगड़ने नहीं पाता और किसी प्रकारका रोग होनेकी बहुत ही कम सम्भावना रहती है। शरीर हल्का और सबल रहता है। भोजन अच्छी तरह हजम होता है।

मुख और शरीरकी कान्ति हमेशा बनी रहती है। समयसे पहले बुढ़ापा पास नहीं फटकने पाता। कसरत न करने तथा संयम न रखनेके कारण आजकल युवावस्थामें ही स्त्रियोंके चेहरेपर वृद्धावस्था झलकने लगता है, कपोल चिचुक जाते हैं, आँखें नीचे धँस जाती हैं, मस्तकपर शिकन पड़ जाती है और अंग-प्रत्यंगमें शिथिलता आ जाती है। यदि स्त्रियाँ नियमित रूपसे व्यायाम करें और संयमसे रहें तो ऐसा कभी नहीं हो सकता।

तन्दुरुस्ती ठीक रहनेसे प्रसव-वेदना बहुत ही कम होती है तथा हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर सन्तान पैदा होती है। सुखी जीवन बनानेके लिए तन्दुरुस्तीका ठीक रहना सबसे अधिक आवश्यक है। तन्दुरुस्तीपर ही दुनियाका सुख-दुख निर्भर है। पहले तन्दुरुस्ती, पीछे और सब। अमित धन हो, सुन्दर और शिक्षित परिवार हो, घरमें दास-दासियोंकी भरमार हो, पर एक तन्दुरुस्ती न हो तो सारी वस्तुएँ फीकी पड़ जायँ। धनका उपभोग कौन कर सकता है? तन्दुरुस्त या स्वस्थ मनुष्य। परिवारका आनन्द कब

मिल सकता है ? तन्दुरुस्ती ठीक रहनेपर । क्यों ? इसलिए कि तन्दुरुस्ती ठीक न रहनेके कारण मान लो मस्तकमें पीड़ा, पेटमें कब्ज और मरोड़ है, अधिक परिवारके कारण सिरपर काँव-काँव मचा है; ऐसी दशामें अस्वस्थ मनुष्यको परिवारका सुख कैसे मिल सकता है। उसके दिलमें तो बड़ी झुँझलाहट पैदा होती है। वह यही चाहता है कि यदि ये दुःखदायी प्राणी मर जाते तो शान्तिके साथ सोनेमें कोई बाधा तो न उपस्थित होती। कहाँतक कहें, संसारका बड़ेसे बड़ा सुख भी तन्दुरुस्तीके पीछे है; स्त्रियोंको पति सबसे प्यारा है। संसारमें स्त्रीका जितना प्यार स्वामी कर सकता है, उतना और कोई नहीं कर सकता। तन्दुरुस्ती एक ऐसी वस्तु है कि उससे हाथ धो बैठनेपर प्यारे पतिकी निगाहोंसे भी उतर जाना पड़ता है। जो पति प्राणोंसे अधिक समझता रहता है, वही सेवा-सुश्रुषा और दवा-दारू करते-करते परेशान होकर घृणा करने लगता है। यह बात स्त्रीके लिए ही नहीं, प्राणीमात्रके लिए है। जिस प्रकार पतिकी दृष्टिसे रुग्णा पत्नी उतर जाती है, उसी प्रकार स्त्रीकी दृष्टिसे रोगी पति भी गिर जाता है। इसपर पटना-निवासी एक रईस मित्रकी आँखों देखी दुर्दशाका वर्णन पढ़नेसे पाठक-पाठिकाओंको बहुत कुछ शिक्षा मिल सकती है।

पटना जिलेमें एक रईस थे। नाम बतलाना ठीक नहीं है, दो-तीन वर्ष हुए उनका देहान्त हो गया। उन्होंने व्यापारके द्वारा आठ-दस वर्षके भीतर पन्द्रह-बीस लाख रुपया पैदा किया। जिस

तरह व्यवसायमें उनकी प्रवृत्ति थी, उसी तरह वेश्या-गमनकी ओर भी। हाँ, इतना जरूर था कि वेश्यागामी होते हुए भी वह अपनी स्त्रीको बहुत चाहते थे। उनकी स्त्री भी एक सच्ची हिन्दू ललनाकी भाँति ही उनपर भक्ति रखती थी। वह मेरे मित्र थे, अतः उनकी सारी भीतरी बातें मालूम हैं। मैं बहुत समझाता कि उनकी यह आदत छूट जाय, यहाँतक कि कई बार रंज होकर मैंने उनसे बोलनातक बन्द कर दिया था; किन्तु उनका स्वभाव इतना सरल और प्रेमी था कि वह बिना मुझे प्रसन्न किये हिलते ही न थे। जब मैं किसी प्रकार भी प्रसन्न न होता तो वह रोने लगते और कहते,—"मैं अपनी आदत छोड़नेकी चेष्टा तो बहुत करता हूँ, नहीं छूटती तो तुम्हीं बतलाओ क्या करूँ। यदि तुम न बोलोगे तो सच मानो—कल मुझे इस संसारमें न पाओगे।" उनके कथनमें धमकी या बनावट नहीं, सत्यता रहती थी; इसीसे बोलनेके लिए मुझे विवश हो जाना पड़ता था।

दुर्भाग्यवश उन्हें गर्मी हो गयी। उस समय उनकी अवस्था तीस वर्षकी थी। मैंने कहा,—चलो यह अच्छा हुआ। उचित दंड मिला। बिना औषधि ही व्याधि कटी। पर मैं यह नहीं समझ सका था कि इस रोगका परिणाम इतना भयंकर होगा। बहुतसी औषधियाँ हुईं, रोग बढ़ता ही गया। इसी बीच और भी कई भयानक रोगोंका एक साथ आक्रमण हो गया। वह एक जगहके मनुष्य हो गये। छः महीनेतक तो उनकी स्त्रीने खूब सुश्रुषा की।

बाद उसकी ओरसे कुछ लापरवाही होने लगी। घरके और लोग पहलेहीसे हाथ खींचे बैठे थे। लगातार ग्यारह महीनेतक वह बीमार रहे। कितनी यातना सहकर उनका प्राण निकला, उसका कारुणिक वर्णन करके पाठक-पाठिकाओंका दिल दुखाना नहीं चाहता। तन्दुरुस्ती नष्ट होनेपर उनकी लाखोंकी सम्पत्ति किसी काम न आयी, इस बातकी शिक्षा उक्त घटनासे अच्छी तरह मिल सकती है।

व्यायामसे शरीरमें बल बढ़ता है और भीरुता दूर होती है। मौका पड़नेपर दुष्टोंके नीच शब्दोंका जवाब लात-घूसेसे देनेका साहस होता है। जल्द किसी नीचकी बुरी निगाह डालनेकी हिम्मत नहीं पड़ती। इससे भोग-विलासकी रुचि नहीं बढ़ती और सदा तबियत मस्त रहती है।

कसरतके द्वारा स्त्रियाँ अपने रूप-यौवनको अधिक दिनोंतक कायम रखकर अपने पतिको प्रसन्न रख सकती हैं और पतिकी प्रसन्नतासे स्वयं भी प्रसन्न रहती हैं।

——

स्वस्थ रहनेके सरल उपाय

स्वस्थ रहनेके लिए सबसे बड़ी आवश्यकता है—प्रसन्न रहनेकी। मनुष्यके मनोविकार, वृत्तियाँ, इच्छाएँ, बुरे-भले विचार जिस तरह बदलते रहते हैं, उसी तरह शरीरके अवयवोंमें भी परिवर्त्तन होता रहता है। प्रोफेसर एल० मर्गेटने वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध करके बतलाया है कि भय, चिन्ता, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष और उदासीनतासे पसीनेमें, थूकमें, श्वासमें, तथा खूनमें जहरीले पदार्थ पैदा होते हैं और इसके विपरीत प्रेम, दया, आनन्द, सन्तोष, आरोग्य तथा प्रसन्नतापूर्ण विचारोंसे बलवान बनानेवाले तत्त्व उत्पन्न होते हैं।

इसीसे इस पुस्तकमें स्थल-स्थलपर उत्तम सन्तान पैदा करनेके लिए माता-पिताको उक्त बातपर सदा ध्यान रखनेके लिए चेतावनी दी गयी है। बच्चोंकी माँके क्रोधित होनेपर उसका दूध जहरीला हो जाता है और उस समय दूध पीनेसे कितने ही बालकोंको मूर्छा आ जाती है। शास्त्रकारोंने आदेश किया है कि भोजन करते समय खूब प्रसन्न-चित्त रहना चाहिए। उनके कथनका असली रहस्य यही है कि भोजनके समय क्रोध, चिन्ता, दुःख आदि करनेसे उत्तमसे उत्तम बलकारक भोजन भी विष हो जाता है।

यदि प्रारम्भसे ही स्वास्थ्य-रक्षाके खास-खास नियमोंका पालन किया जाय और बालकोंमें आरम्भसे ही इन नियमोंपर

चलनेकी आदत डाली जाय, तो जीवन विशेष सुख और शान्तिसे व्यतीत हो सकता है। बचपनमें जिस बातकी आदत पड़ जाती है, वह कभी नहीं छूटती। स्वास्थ्य-रक्षाके साधारण नियम ऐसे नहीं हैं, जिनका सरलतापूर्वक पालन न किया जा सके, किन्तु जब मनुष्यकी आदत कुछ और ही ढंगकी हो जाती है, तब वेही सरल नियम पहाड़से मालूम होने लगते हैं।

अब हम स्वास्थ्य-रक्षाके कुछ उपायोंका उल्लेख यहाँ करेंगे, जिनका पालन करना आलसी मनुष्यके लिए तो अवश्य ही दुरूह है, पर और किसी भी मनुष्यके लिए कठिन नहीं है—

१—रहनेका स्थान खूब हवादार होना चाहिए; किन्तु दूषित और गन्दी हवा जरा भी न आने पावे। गन्दी हवा और गन्दा पानी ही नाना प्रकारके रोगोंका घर है।

२—अपना प्रत्येक कार्य नियमित समयपर करना चाहिए। स्वास्थ्यके लिए अनियमित समयपर काम करना पूरा घातक है। ऐसे आदमी कभी स्वस्थ नहीं कहे जा सकते जो एक दिन तो तड़के मल-मूत्र त्यागकर निवृत्त हो जाते हैं और दूसरे दिन दोपहर-को टट्टी जाते हैं। इसी प्रकार उनका प्रत्येक कार्य होता रहता है। ऐसे मनुष्य सम्भव है कि ऊपरसे देखनेमें हृष्ट-पुष्ट और पूर्ण स्वस्थ दिखलायी पड़ें, पर वास्तवमें वे कदापि स्वस्थ नहीं हैं।

३—शुद्ध सादा और थोड़ा भोजन करना चाहिए। ठूँस-ठूसकर खानेसे स्वस्थता कभी नहीं रह सकती। भोजन धीरे-धीरे और

खूब चबा-चबाकर करना चाहिए। एक ग्रासको चालीस बार कुचलकर निगलना, पेटमें अमृत डालनेके समान गुण करता है। इससे कई लाभ होते हैं। एक तो यह कि थोड़े आहारसे अधिक रक्त तैयार होता है और उस रक्तमें किसी प्रकारका दोष नहीं रहता और दूसरा लाभ यह होता है कि दाँत मजबूत होते हैं। इस प्रकार चबाकर भोजन करनेसे पाचन-क्रिया बहुत ठीक काम करती है; मलकी रुकावट कभी नहीं होती, चित्त प्रसन्न रहता है, अच्छी भूख लगती है, पेटमें कभी शिकायत नहीं पैदा होती।

४—भोजन करनेके पहले और पीछे हाथ, पैर तथा मुखको धोना बड़ा ही हितप्रद है।

५—मल-मूत्रके वेगको कभी न रोको। हमेशा पेट साफ रक्खो। कब्ज कभी मत होने दो। यदि कभी इसकी शिकायत जान पड़े तो फौरन यत्न करो।

६—दाँत, मसूड़े और जीभकी हमेशा सफाई रक्खो तथा कोई ऐसी चीज न खाओ जिससे मुखमें जलन पैदा हो। हाँ, काली मिर्च आदि खानेकी बात दूसरी है; पर लाल मिर्चको भूलकर भी मुखमें नहीं डालना चाहिए।

७—प्रति दिन सवेरे उठते ही मल-मूत्र त्याग करके मुखकी सफाई कर डालनी चाहिए। स्नान हमेशा ठण्ढे पानीसे तड़के कर लेना बहुत ही लाभदायक है। शरीरकी त्वचाको मैल-मिट्टी

और पसीनेसे बिलकुल साफ रक्खो। नदीके स्वच्छ जलमें स्नान करना सबसे उत्तम है।

८—अपने काम और मौसमके अनुसार हमेशा साफ और ढीले कपड़े पहनो तथा हर मौसममें खुली हवामें मुख खोलकर सोनेके अभ्यासी बनो।

९—प्रतिदिन नियमित रूपसे थोड़ा समय धूपमें बिताओ और सूर्यसे शक्ति लिया करो।

१०—सदा प्रसन्नचित्त रहो और चिन्ता आदिसे दूर रहो। किसीकी बुराई मत करो और सृष्टिकी प्रत्येक वस्तुसे कुछ-न-कुछ शिक्षा लेनेकी चेष्टा रक्खो।

११—ब्रह्मचर्य्यसे रहा करो। वेश्या-गामी और पर-स्त्री-गामी न बनो। इसी प्रकार जो स्त्रियाँ स्वस्थ रहना चाहें वे पराये पुरुषको बुरी निगाहसे न देखें।

१२—नशेकी चीजोंसे सदा दूर रहो। नशीली चीजोंके सेवनसे फेफड़े खराब हो जाते हैं।

१३—भोजन करते समय जितना कम जल पी सको, उतना ही अच्छा। भोजन करनेके घण्टा आध घण्टा बाद इच्छाके अनुसार जल पिया करो।

१४—प्रतिदिन शुद्ध गो दुग्धका सेवन किया करो। एक मनुष्यके लिए २४ घण्टेमें सेरभर दूध पीना अत्यन्त आवश्यक है।

१५—थोड़ासा छाछ (मट्ठा) का सेवन करना बड़ा ही लाभ-

दायक है। वैद्यक-ग्रंथोंमें इसकी बड़ी प्रशंसा लिखी है। स्वास्थके लिए यह बड़ी ही उपयोगी वस्तु है।

१६—अपनी सुविधाके अनुसार ताजे और आरोग्य फलोंका सेवन किया करो।

१७—सबेरे कुछ रात शेष रहते ही उठनेकी आदत डालो। शय्यासे उठते ही परमात्माका ध्यान किया करो। बाद शौचादि-से निवृत्त होकर व्यायाम करो। व्यायाम उतना ही करो, जितनेसे थकावट न मालूम हो।

१८—चटपटी, मसालेदार और बाजारकी बनी हुई चीजें (मिठाई-पूड़ी आदि) कभी मत खाओ।

१९—मुँहसे कभी साँस मत लो। यदि इसकी आदत पड़ गयी हो तो शीघ्र इस दोषसे अपना पिंड छुड़ाओ। मुँहसे साँस लेना बड़ा ही हानिकारक है। कारण यह कि मुँहके रास्तेसे जो हवा भीतर जाती है, वह छनकर नहीं जाती। अतः वायुमें उड़नेवाले अनेक सूक्ष्म तथा विषैले जीवाणु एवं समन्वित धूलि-कण या ऐसा ही कोई दूसरा मल शरीरके भीतर चला जाता है जोकि नाना प्रकारके रोग उत्पन्न करनेका कारण होता है; किन्तु नासिका द्वारा साँस लेनेसे उक्त चीजें नासिका-द्वारमें ही अटक जाती हैं। मुख द्वारा श्वासन-क्रिया करनेवालोंके फेफड़ेमें रोगोंको उत्पन्न करनेवाले नाना प्रकारके परमाणु एकत्र हो जाते हैं। नासिकाके छेद्रोंमें प्रकृति ने बहुतसे बालोंकी रचना की है। ये बाल हवामें समन्वित धूलिके

कणोंको रोग-जनक जन्तुओंको तथा ऐसे ही दूसरे कचरेको फेफड़ों में जानेसे रोकते हैं। यह रुका हुआ कचरा, जब मनुष्य वायुको बाहर निकालता है, तब बाहर निकल जाता है। जो लोग नासिकाके भीतरके बालोंको कटवाते हैं, वे भारी भूल करते हैं। इतना ही नहीं, नासिकामें एक गुण और भी बड़ा विचित्र है; वह यह कि शीतकालमें जब बिलकुल ठंडी हवा चलती है, तब वह उसे गर्म करके फेफड़ेमें पहुँचती है। इससे फेफड़ेको किसी तरहकी हानि नहीं पहुँचती; किन्तु मुख द्वारा श्वासन-क्रिया करनेसे ठंढी हवा ज्योंकी त्यों फेफड़ोंमें जाकर हानि पहुँचाती है। ठंढी हवा पहुँचनेसे कभी-कभी फेफड़ोंमें सूजन हो आती है। हवाको शुद्ध करनेके लिए नासिका एक प्राकृतिक यंत्र है, इसका सदा ध्यान रखना चाहिए।

२०—काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मात्सर्य आदि विकारोंको प्रतिक्षण दूर रखनेके लिए सतर्क रहना चाहिए और दया, परोपकार आदि गुणोंको धीरे-धीरे अपने हृदयमें भरनेका प्रयत्न करना चाहिए।

२१—भोजन करनेके बाद थोड़ा टहलकर चारपाईपर लेटा करो; किन्तु तुरन्त ही नींदमें अचेत न हो जाओ।

२२—डाक्टर उडलीका कहना है कि,—"आरोग्यता प्राप्त करनेके दो मार्ग हैं— (१) ग्राम्य-जीवन, उद्यान-भ्रमण, नियमित व्यायाम और स्वच्छ वायुका सेवन; (२) सादा तथा हलका भोजन और निर्मल जल।" ऐसा कौन मूर्ख मनुष्य होगा, जो

आरोग्य प्राप्तिके लिए इन प्राकृतिक नियमोंको छोड़कर वैद्यों और डाक्टरोंकी तरह-तरहकी औषधियोंका सेवन करके धन और आरोग्यका नाश करेगा।

२३—ऋतुके अनुसार प्रत्येक मनुष्यको आहार-विहार करना चाहिए। यह सौभाग्य भारतवर्षको ही प्राप्त है कि यहाँ ठीक समयपर गर्मी पड़ती है, ठीक समयपर वर्षा होती है और ठीक समयपर सर्दी पड़ती है। पाश्चात्य देशोंमें यह बात नहीं है। वर्षमें छः ऋतुएँ होती हैं, जिनका क्रम इस प्रकार है:—*

फाल्गुन और चैत—बसन्त ऋतु
वैशाख और ज्येष्ठ—ग्रीष्म ऋतु
आषाढ़ और श्रावण—वर्षा ऋतु
भाद्रपद और आश्विन—शरद ऋतु
कार्तिक और मार्गशीर्ष—हेमन्त ऋतु
पौष और माघ—शिशिर ऋतु

कुछ आचार्योंने चैत्र-बैशाखको वसन्त ऋतु मानकर छः हो ऋतुओंका उल्लेख किया है; पर इस विपरीततामें कोई खास बात नहीं है, अतः कुछ लिखनेकी आवश्यकता नहीं।

ऋतुके अनुसार आहार-विहार करनेके लिए उनका ज्ञान होना

---

* पं० हनुमानप्रसादजी शर्मा वैद्यशास्त्रीके 'अनुचर्या' शीर्षक लेखके आधारपर लिखित।

अत्यन्तावश्यक है, इसलिए प्रत्येक ऋतुका संक्षेपमें परिचय करा देना जरूरी है।

वसन्त

वसन्त ऋतुका दूसरा नाम ऋतुराज है। इस ऋतुमें दिशाएँ निर्मल हो जाती हैं तथा सृष्टिकी प्रत्येक वस्तु ही नया रूप धारण करती है। यह ऋतु स्निग्ध है, अतः कफकी वृद्धि होती है और उसके द्वारा अन्य रोगोंको उत्पत्ति होती है। इस ऋतुमें कफका शमन करनेवाली वस्तुओंका सेवन करना लाभदायक है।

पौष और माघमें शीतके कारण कफका सञ्चय होता है और वही सञ्चित कफ वसन्त ऋतुमें सूर्य्य तापसे कुपित हो पाचक अग्निको दूषित कर रोगको उत्पन्न करता है। इसलिए इस ऋतुमें वमन विरेचन द्वारा कफको बाहर निकाल देना चाहिए। वसन्त ऋतुमें चटपटे, रूखे, कड़वे कसैले और हलके पदार्थोंका सेवन करना हितकर है : खट्टी, मीठी, चिकनी और कष्टसे पचनेवाली वस्तुओंका सेवन कदापि न करना चाहिए।

इस ऋतुमें गेहूँ, चावल, मूँग, परवल, बैगन, शहद, जीरा, अदरख, मुली आदि खाना तथा सोंठ, मिर्च, पीपर, पीपलामूल, त्रिफला, असगन्ध और हल्दीका सेवन करना विशेष लाभदायक हैं।

ग्रीष्म

बैशाख और ज्येष्ठमें गर्मी बहुत अधिक पड़ती है। इस ऋतुमें शीतल पदार्थोंका खाना और शीतल स्थानमें रहना उत्तम है। यह

ऋतु रूखी है, इसलिए पदार्थोंमें तीक्ष्णता पैदा करती है, कफका नाश करती और पित्तको शमन करनेवाली वस्तुओंका सेवन करना विशेष उत्तम है।

गायका औटाया हुआ मिश्री मिला दूध, भात, जौ, गेहूँ, सत्तू, खाँड़, तरबूज, खरबूजे, कच्ची ककड़ी, परवल, करेला, चौलाई, पका केला, कसेरू, सिंघाड़ा, शर्बत, गुलाबजल, गुलकन्द, सेव, मुरब्बा, मीठा दही, मक्खन, घी, इत्यादिका सेवन करना इस ऋतुमें विशेष गुणदायक है। इसी प्रकार सुगन्धित द्रव्योंसे स्वास्थ्य को बहुत लाभ पहुँचता है, जैसे,—खस, चन्दन आदि।

गर्मीके दिनोंमें अधिक परिश्रम, गर्म स्थानमें रहना, धूपमें घूमना तथा खट्टे, कड़वे, खारी चटपटे, सूखे पदर्थोंका सेवन बिलकुल ही न करना उत्तम है। उपवास भी नहीं करना चाहिए।

वर्षा

आषाढ़ तथा श्रावणके महीनेमें गर्मीका संचित वायु कुपित होता है। इसीसे इन महीनोंमें वातजन्य रोग उत्पन्न होते हैं। इन महीनोंमें वातको शमन करनेवाले पदार्थोंका सेवन करना चाहिए। इस ऋतुमें खट्टे-मीठे (खटमिठ), नमकीन रसोंका सेवन करना लाभदायक है। गरम दूध, घी, तेल, पुराना चावल, जौ, दही आदि पथ्य हैं।

उष्ण, रूखा, मट्ठा, घाम, मिहनतके कार्य, दिनमें सोना,

नदीके जलमें स्नान, स्त्री-प्रसंग, ये सब बातें आचार्यों ने हानिकर बतलायी हैं, अतः इनसे दूर रहना चाहिए।

शरद

भाद्रपद और आश्विनमें वायु कुपित होती, अग्नि मन्द होती और दाह उत्पन्न होती है। इन महीनोंमें बल भी क्षीण हो जाता है। त्रिदोषका कोप होता है, इसलिए इन महीनोंमें त्रिदोष-नाशक वस्तुओंका सेवन करना जरूरी है।

इन महीनोंमें हलका भोजन करना चाहिए। कभी-कभी गर्मी सर्दी आदिका भी अनुभव होने लगता है; इसलिए समयानुसार खाने-पीनेका भी परिवर्त्तन करते रहना चाहिए। दही, पुराने चावलोंका भात, गेहूँ, उर्द, सरसो, राई, बैंगन, खीरा, परवल, घेवर, मालपुआ, खिचड़ी, खीर आदिका सेवन करना लाभदायक है।

हेमन्त

कार्त्तिक और अगहनमें सूर्यकी ज्योति तीव्र होती है। इस ऋतुमें पित्त कुपित होता है। पिछले महीनोंका संचित पित्त सूर्यकी गरमीसे तप्त होकर इन्हीं महीनोंमें कुपित होता है। यही कारण है कि इन महीनोंमें अधिकतर पित्तजन्य रोग पैदा होते हैं। इसलिए पित्त-नाशक वस्तुओंका सेवन इस ऋतुमें अवश्य करना चाहिए। पित्त-प्रकृतिवाले मनुष्यको जुलाब लेना चाहिए। जुलाब लेनेसे पित्तजन्य रोगोंके उत्पन्न होनेकी आशंका नहीं रहती।

इन महीनोंमें घी, चीनी, मिश्री, जौ, गेहूँ, मूँग, चावल, गरम

दूध, आँवला, परवल, धनियाँ, कमलगट्टा, मुनक्का, नारियल, गुड़-मिश्रित हड़का चूर्ण, गोभी आदि वस्तुएँ विशेष लाभ पहुँचाती हैं।

शिशिर

पौष और माघ ये दोनों महीने शीतल, स्निग्ध, प्रायः सब पदार्थोंको स्वादिष्ट करनेवाले तथा अग्निको प्रज्ज्वलित करनेवाले हैं। इन महीनोंमें कफ संचय होता है और बलकी वृद्धि होती है। शीत होनेसे वायुका कोप होता है। इसलिए इन महीनोंमें चिकने, रूखे, खट्टे और नमकीन रसोंका सेवन ही लाभलायक है। सुश्रुताचार्यका कथन है,—

"ये दोनों महीने ठण्ढे और रूखे हैं। इन महीनोंमें सूर्य-ताप मन्द रहता है। हवा तेजीसे चलती है। सर्दीके कारण वायु कुपित होता है। वही वायु सर्दी लगनेसे कोष्ठके भीतर पिंडिकासा हो जाता है और शीघ्र रसको सोख लेता है। इस ऋतुमें मधुर, अम्ल, लवण तथा रस-युक्त पदार्थोंका ही भोजन करना चाहिए।"

इन महीनोंमें पौष्टिक, बलवर्द्धक, घी, दूध, मक्खन, मलाई, खाँड़के बने हुए पदार्थ अत्यन्त लाभदायक हैं। गेहूँ, उर्द, नये चावलोंका भात, शुद्ध और उत्तम बनी हुई मिठाइयाँ, पाक, बादाम अखरोट, चिरौंजी, आदि पदार्थोंका सेवन मनुष्यको अपनी शक्तिके अनुसार करना चाहिए। सूर्यकी धूप तथा आगका सेवन करना उत्तम है। व्यायाम करना बड़ा ही गुणकारी है।

इस ऋतुमें बर्फ, सत्तू, अत्यन्त वायु सेवन, खट्टे, कड़वे,

कसैले, शीतल तथा वातकारी पदार्थ नहीं खाना चाहिए। कसेरू, सिंघाड़े, उर्द, आलू आदिका सेवन करना हानिकारक है।

ऋतुके अनुसार आहार-विहार करनेमें एक बातका ध्यान और रखना चाहिए। वह यह कि कभी-कभी ऋतुके विपरीत समय रहता है, जैसे मौसम तो वर्षाका है, किन्तु हवाकी अधिकतासे तथा अन्यान्य कारणोंसे सर्दी काफी पड़ने लगती है। ऐसी दशामें आहार-विहारमें परिवर्तन करना आवश्यक होता है।

——o——

परिशिष्ट

पिछले प्रकरणोंमें जिन-जिन बातोंकी ओर पाठक-पाठिकाओंका ध्यान आकर्षित किया गया है, उनके अतिरिक्त एक बात और भी बड़ी ही महत्त्वपूर्ण है, जिसका जानना प्रत्येक गृहस्थाश्रमीके लिए विशेष प्रयोजनीय है। वह है सन्तान-निग्रह। वर्त्तमान समयमें इस महत्त्वपूर्ण विषयसे अधिकांश लोग उदासीन देखे जाते हैं बल्कि यों कहना अधिक उचित होगा कि लोग इसे जानते ही नहीं। कुछ दिन हुए महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधीने अपने 'यंग इण्डिया' नामक साप्ताहिक पत्रमें इसपर कई निबन्ध लिखे थे। उन लेखोंका प्रभाव जनतापर चाहे और कुछ न पड़ा हो, किन्तु इतना तो अवश्य हुआ कि उन्हें पढ़कर लोगोंको इसकी आवश्यकता भलीभाँति मालूम हो गयी।

सन्तान-विज्ञान

यद्यपि महात्माजीका तो यह कहना था कि जबतक भारत स्वतंत्र न हो जाय तबतक किसी भी भारतवासीको स्त्री-प्रसंग करना ही नहीं चाहिए; क्योंकि देशमें गुलाम पैदा करना भी घोर पाप है। किन्तु हमारा कहना यह नहीं है। महात्माजीके शब्दोंका आदर करते हुए देशकी आधुनिक परिस्थितिको देखकर हम तो इतना ही कहना उचित समझते हैं कि प्रत्येक मनुष्यको अपनी आर्थिक स्थिति और स्वास्थ्यपर ध्यान रख सन्तान पैदा करना उचित और सुखदायक है।

पहले हम आर्थिक स्थितिका सन्तानोत्पत्तिसे क्या सम्बन्ध है, इसपर प्रकाश डालना चाहते हैं और उसके बाद स्वास्थ्यपर विचार करेंगे। बहुधा देखनेमें आता है कि हमारे देशमें प्रायः लोग अधिक बच्चे पैदा करनेके कारण ही दुखी और चिन्तित रहते हैं। इस दुःखका कारण है आमदनीसे अधिक खर्चका होना। जिस मनुष्यके खर्चके लिए यथेष्ट आमदनी न होगी उसका चिन्तित रहना स्वाभाविक है। क्योंकि कोई भी मनुष्य अपने बच्चोंको तथा आश्रित रहनेवाले स्त्री आदि प्राणियोंको अन्न-वस्त्रसे दुःखी नहीं देखना चाहता। किन्तु जब आमदनीमें कुछ भी वृद्धि नहीं होती और बच्चे पैदा हो जानेसे खर्च बढ़ जाता है, तब चिन्ता करनेके सिवा कोई चारा नहीं रह जाता। इसीलिए प्रत्येक मनुष्यको जान-बूझकर अपने जीवनको दूभर नहीं करना चाहिए। हर मनुष्यको उतनी ही सन्तान पैदा करनी चाहिए जितनीका पालन-पोषण,

शिक्षा-दीक्षा सरलतासे की जा सके। उत्तम तो यह हो कि यदि कोई मनुष्य दो बच्चोंका खर्च चलानेका सामर्थ्य रखता हो तो वह एक बच्चा पैदा करे। कारण यह कि गृहस्थोंके निर्वाहमें स्वाभाविक खर्चके अतिरिक्त भी बहुत तरहके खर्च अनायास ऐसे सिरपर आ जाते हैं, जिनका अन्दाजा लगाया नहीं जा सकता। जैसे बीमारी आदि। कब कौनसा बच्चा कितनी बार महीने या सालमें बीमार होगा और उसकी दवा-दारूमें कितना व्यय होगा, इसका अनुमान कौन लगा सकता है। अतः उत्तमतापूर्वक निर्वाह तो इस रीतिसे हो सकता है कि दो बच्चेका खर्च चलानेकी शक्ति रखनेवाला मनुष्य एक ही सन्तान पैदा करे। यदि यह न हो सके तो वह दो सन्तानतक पैदा करे; किन्तु ऐसा काम भूलकर भी न करे कि शक्ति तो है दो बच्चेका निर्वाह करनेकी और चार-छः-दस बच्चे पैदा कर डाले। इससे एक तो बच्चोंका पालन उचित रीतिसे नहीं होता; जिससे घरमें नाना प्रकारकी बीमारियाँ अपना डेरा डाल देती हैं; दूसरे मनुष्यको सदा चिन्तित रहना पड़ता है और प्राणोंसे प्यारे बच्चे भी कुसमयमें भार-स्वरूप हो जाते हैं; तीसरे चारों ओर कुकीर्त्ति फैलती है और मान-मर्दन करके लोगोंका मुहताज बनना पड़ता है। इनके कारण मनुष्यका मानस बिलकुल दुर्बल हो जाता है, मनुष्यके स्वाभाविक धर्म, स्वाभिमान, शान्ति आदि—कोसों दूर भाग जाते हैं और पग-पगपर अपमानित होना पड़ता है। फिर उसके हृदयमें क्षणिक वैराग्यकी लहरें

उत्पन्न होकर इस बातपर पश्चात्ताप करनेके लिए विवश करने लगती हैं कि यदि विवाह न हुआ होता तो अच्छा था। परिणाम यह होता है कि ऐसे लोग कभी-कभी तंग आकर आत्महत्या तक कर डालते हैं और जन्म-जन्मान्तरके लिए अपने सिरपर घोर पाप-का भार लाद लेते हैं।

उक्त विषयको स्पष्ट करनेके लिए एक उदाहरण दे देना अधिक उपयुक्त होगा। मान लीजिए एक आदमीकी मासिक आमदनी सौ रुपया है और घरमें तीन प्राणीका खर्च है। अब उसका व्यय किस प्रकार होना चाहिए, यह देखना है। प्रत्येक मनुष्यको अपनी आमदनीका कमसे कम दसवाँ हिस्सा बचत कोषमें डाल देना चाहिए। ऐसे संग्रहसे समय-कुसमयमें मनुष्यको बहुत बड़ी सहायता मिल जाती है और संग्रह करनेमें कोई कठिनाई भी नहीं पड़ती। नीचे आमदनी और खर्चका विवरण दिया जाता है:—

आय	व्यय
१००) आय हुई एक मासमें	१०) स्थायी कोषमें
	३५) भोजनकी सामग्री
	१२) मकान भाड़ा
	१५) फुटकल खर्च
	८) नाई, धोबी, वस्त्र आदि
१००)	८०) कुल खर्च
	२०) बचत
	१००)

इस प्रकार हर महीनेमें अपने खर्चका अन्दाजा लगा लेना

चाहिए और बचतके रुपयेमेंसे उसी काममें खर्च करना चाहिए जो बहुत जरूरी हो और अचानक आ पड़े। किन्तु स्थायी कोषको अपने दिलमें खर्च हुआ ही समझते रहना उचित है। यदि इतनी किफायतसारीसे काम करनेवाला आदमी सौ रुपये मासिककी आमदनीमें दो बच्चेतक पैदा कर ले तो कोई हर्ज नहीं। इसके विपरीत आचरण करनेवाला मनुष्य स्वाभाविक नियमोंका उल्लंघन करनेवाला कहा जाता है और सदा दुःखी रहता है।

दूसरी बात है स्वास्थ्य। धन-दौलत खूब हो, आमदनी भी भरपूर हो, किन्तु स्त्री-पुरुषका या दोमेंसे किसी एकका स्वास्थ्य उत्तम न हो, तब भी अधिक सन्तान उत्पन्न करना उचित नहीं है। क्योंकि अस्वस्थतामें जो बच्चे पैदा होते हैं, वे निर्बल, रुग्ण और अल्पायु होते हैं। इसके अतिरिक्त अस्वस्थतामें बच्चा पैदा होनेसे माताका जीवन भी संकटपूर्ण हो जाता है इसलिए प्रत्येक मनुष्यको अपनी आय और तन्दुरुस्तीपर ध्यान रखकर ही अपने संसारको बढ़ाना चाहिए। अन्यथा स्वर्णमय संसार यमपुरीके समान हो जाता है और हाथ मल-मलकर जीवनपर्यन्त पश्चात्ताप करना पड़ता है।

इस समय देशमें स्वतन्त्रताका आन्दोलन चल रहा है। परमात्माकी कृपा हुई तो बहुत जल्द देश स्वतन्त्र भी हो जायगा। किन्तु उस स्वतन्त्रताकी रक्षा वीर, साहसी और बुद्धिमान पुरुषों-द्वारा ही हो सकती है। कायर और बुद्धिहीन जनता न तो कभी स्वतन्त्र रह सकी है और न स्वतन्त्रताकी रक्षा ही कर सकी है।

ऐसी दशामें भारतके प्रत्येक मनुष्यको इस पुस्तकमें बतलाये हुए नियमोंपर चलकर ही सन्तानोत्पत्ति करना चाहिए। क्योंकि तभी भविष्यमें होनेवाले बच्चे ऊपरके गुणोंसे युक्त होंगे और प्राप्त की हुई आजादीकी रक्षा कर सकेंगे।

योगिराज अरविन्द घोषने १०-१२ वर्ष पहले कहा था कि संसारमें महान परिवर्तन बहुत ही शीघ्र होनेवाला है, और उस नये युगका गुरु सदाकी भाँति इस बार भी भारतवर्षको ही बनना पड़ेगा। योगिराजका उक्त कथन अक्षरशः सत्य होता दिखलायी पड़ रहा है। संसारके इतिहासमें भारतीय स्वातन्त्र्य-युद्ध बेजोड़ है, यही सत्यताका प्रत्यक्ष प्रमाण है। अबतक किसी भी देशने रक्तपात और घोर युद्ध किये बिना आजादी नहीं प्राप्त की थी। किन्तु भारत अहिंसाके बलपर प्रबल राक्षसी सत्ताकी जड़ हिला रहा है। इससे यही सिद्ध होता है कि इतने दिनोंकी दासताके बाद भी भारत-वासियोंमें नवीनता और विशेषता मौजूद है।

अतएव भारतवासी स्त्री-पुरुष इस पुस्तकको पढ़कर स्वयं अपना कर्त्तव्य निश्चय करें, इतना कहकर अब हम विदा होते हैं।